


G.L. SAH

श्रीमती विश्वास

[जीवन की नाना परिस्थितियों के भीतर से झाँकनेवाली
एक समुज्वल नारी का अध्ययनपूर्ण सामाजिक उपन्यास]

लेखक
श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

प्रकाशक
साहित्य-प्रकाशन,
मालीवाड़ा, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य-प्रकाशन,
मालीवाड़ा, दिल्ली।

१९५५
[प्रथम संस्करण]
मूल्य : चार रुपया

भूमिका

इस उपन्यास को पढ़ कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। हिन्दी काल्पनिक-साहित्य में "मिसेज विश्वास" का एक विशिष्ट स्थान होगा—इसमें मुझे सन्देह नहीं। लेखक ने इस नारी-रत्न के चरित्र-चित्रण मे अपूर्व सफलता पाई है। कहानी रोचक और हृदयग्राही है, साथ ही भारतीय आदर्शों की भी इसमें पूरी झलक मिलती है। इसके सभी पात्र—मिसेज विश्वास, सतीश, गिरीश, भाभी, मुन्ना, अविनाश, विमल, भीखू—सजीव हैं, हमारे बीच हैं हम उनसे पुरिचित हैं। वे केवल कल्पना की सृष्टि नहीं हैं।

इस उपन्यास के पढ़ने में अनेक स्थलों पर काव्य का रस मिलता है। श्री वाजपेयी जी की लेखन शैली अत्यन्त मनोरम है। इस उत्तम रचना पर उनको अनेक बधाइयाँ !

पटना
१२-५-५५

अमरनाथ झा

उपन्यास से पूर्व

जब सघन तमिस्रा में, झाड़ियों के झुरमुट से, मक्खी जितनी जुगनू की रश्मि भी झलक उठती है, तब मैं सोचता हूँ कि यह मृत्यु के अन्तर को चीर कर प्रस्फुटित हुआ जीवन-संकेत है ! जब भयंकर हाहाकार एवं मर्मान्तिक उत्पीड़न हृदय की सीमाओं में समा नहीं पाते और आँखों के संकुचित मार्ग से मोती की तरह झलक उठते हैं तब भी मैं सोचता हूँ कि ये जीवन को व्यक्त कर रहे हैं ! अहर्निशि जन-जन के कोलाहल में जब श्रम, संघर्ष, बुद्धि और मानवात्मा की अन्तश्चेतना के अनन्त स्वर मेरे कर्णरन्ध्रों मे टकराते और मेरी व्यस्त जीवन-धारा को एक ओर फेंक सहसा दृष्टिगत हो ही जाते हैं, तब भी मैं सोचता हूँ, यह जीवन है। और जब असफलताओं की सीढ़ियाँ कालान्तर में सफलता के पद-चिह्नों का स्पष्टीकरण बन जाती हैं, तब भी मैं सोचता हूँ कि यह जीवन की व्याख्या है।

आज हिन्दी कथा-साहित्य के आँगन में कथाकारों का जो लम्बा 'क्यू' लगा है, उसमें मैं कहाँ हूँ, इतना जानता हूँ। आगे बढ़ने के लिए मेरे पीछे खड़े बन्धु जो हल्ला मचा रहे हैं, और मेरे जो अनेक अग्रणी कुछ ऐसी विचित्र स्थिति में है कि न स्वयं आगे बढ़ते हैं, न मुझे आगे बढ़ने का अवसर देना चाहते हैं, संघर्ष के नाम पर जिनके हाथ में 'डिसआनर्ड' चेक है, मेरे हृदय में उनके लिए भी कम सम्मान नहीं है। वस्तुस्थिति की उपेक्षा में उनकी हठधर्मी का जो हिंसात्मक बलप्रयोग है, उस पर मैं क्या करूँ, मुझे तरस आ ही जाता है। इसलिए नहीं कि मुझे अपने प्रति कोई असन्तोष है, इसलिए भी नहीं कि प्रतिस्पर्धा की

जलन से मैं आक्रान्त हो गया हूँ, वरन् इसलिए कि साहित्य, कला और संस्कृति के उत्थान-मार्ग में यह एक बहुत बड़ी बाधा है।

मैं बाधाओं का सहर्ष स्वागत करता हूँ! जो मेरी कहानी इसलिए नहीं पढ़ते कि उनको कहानी पढ़ने का समय नहीं है, जो इसलिए नहीं पढ़ते कि Superiority-ComPlex के शिकार हो चुके हैं और जो विदेशी कहानियों को मुट्ठी में लेकर राष्ट्र-भारती के पावन किन्तु कोमल शरीर पर कंकड़ की तरह मारना चाहते हैं, उन सबसे मुझे कहना है कि पहले देख लो, परख लो और तब कुछ कहो, तो मैं उस पर विचार करूँगा। और दलबन्दी, प्रचार प्रदर्शन और सुनी-सुनाई, घिसी-पिटी धारणाओं एवं मान्यताओं को लेकर यदि आप अपने विवेक का संयम भूल जाना चाहते हैं, तो मुझे केवल यह कहना है कि भविष्य सोया नहीं है, सोता भी नहीं है और वह सदा जागता ही रहेगा।

कलाकार श्री शैलेन्द्रकुमार दत्त और कवि श्रीबैजनाथ गुप्त! एक सन्ध्या को, रेस्ट्रा में, चाय पीते समय आप लोगों ने जो एक सादी और ताज़ी नोट-बुक दी थी, पता नहीं था, वह ऐसी वाचाल होगी और कालान्तर में एक कथा कहेगी!—लीजिए, आप लोग भी सुनिए और मुझे छुट्टी दीजिए! अच्छा, धन्यवाद— नमस्कार!

त्रिवेदी-भवन, लाटूशरोड,
कानपुर, जून, ५५

—लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

मुझे बदल दे,
नवावरण दे,
ताकि मैं अपने
आत्म-विश्वास को,
एक बार फिर से,
अमिट होता देख लूँ,
अमर होता देख लूँ !

डायरी का एक महत्वपूर्ण, किन्तु क्रम-विशृङ्खलित जीवन-पृष्ठ ! जिस पर न दिनाङ्क अङ्कित है, न मास ही। इनकी न तो कल्पना की जा सकती है और न अनुमान ही लगाया जा सकता है।

: १ :

फिर तूफ़ान आ गया। दिशाएँ बवण्डर से धूमिल होकर भारी एवं बोझिल हो उठीं। विषाद की एक गहरी कालिमा प्रकृति के मुख पर चित्रित हो उठी। पक्षी इधर-उधर शरण के लिए दौड़ पड़े। घने अन्धकार से वातावरण अवरुद्ध और आच्छादित हो उठा। ऐसा प्रतीत हुआ, जीवनव्यापी अनन्त हाहाकार—आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, चारों ओर—सर्वत्र, विद्रूप अट्टहास कर रहा है—ह...ह...ह...ह !

सन्ध्या। मैं नीचेवाले ड्राइङ्ग-रूम में आया और धम्म से, एक ओर सोफ़े पर जा गिरा। थकान ज्यादा थी। उद्देश्यहीन जीवन और अनियमित गति-मति के कारण मन अवसाद से भरकर डूबने लगा।

ड्राइङ्गरूम की वह अलस उदासी काटने लगी। फिर वही ड्राइङ्ग रूम—नीरव, शुष्क और प्राणहीन, चेतनारहित ! कठोरता उसकी ईंट-ईंट में जैसे समा गई हो। कब इस जीवन से मुक्ति मिलेगी ? फिर वही गहरी निराशा की काली बदली और फिर वही भयङ्कर तूफ़ान......तूफ़ान का वेग......क्रुद्ध दिशाएँ और विषादपूर्ण वातावरण...... !

मैं सिहर उठा, काँप उठा। नहीं, तूफ़ान नहीं, मानव-जीवन की प्रच्छन्न, छलनामयी स्मृतियों की गहरी प्रतिक्रिया का एक सजीव चित्र, एक तीव्र झटका, एक असंतुलित, विशृङ्खलित—अस्त-व्यस्त—जीवन का कटु नग्न स्वरूप···और मायावी जीवन का एक तन्द्रिल स्वप्न···

मैं सोच रहा हूँ, आखिर मैं इस प्रकार अग्निशिखाओं को अपने जीवन के जीर्ण-शीर्ण आवरण में समेटने, भर लेने का जो दुर्दमनीय प्रयास कर रहा हूँ, क्या वे मुझे जलाकर, मिट्टी में न मिला देंगी? लेकिन नहीं, मानव-सुलभ केन्द्रित शक्ति का अबाध प्रमाद···शैल शिखर से निकलती वेगाकुल सरिता का निर्विरोध, उद्धत, उद्दाम प्रवाह···

× × ×

स्वप्न?—नहीं, स्वप्न से भी महान्, मोहक, रुचिर, भव्य किन्तु करुणामय भी···!

मैं मानता हूँ, मैंने ग़लतियाँ कीं। मैंने क्यों कीं, मैं स्वयं नहीं जानता। मुझे न करनी चाहिए थीं, यह आज जानते हुए अपनी तब की अज्ञानता पर बरबस लज्जा का बोध इसलिए नहीं करता कि आज फिर अनेक बातें जानते हुए भी—अनजान में—उनकी पुनरावृत्ति करता चलता हूँ! ऐसा क्यों है, इसका भी उत्तर आप मुझसे न पा सकेंगे।

बस, ऐसा लगता है, एक गतिमान प्रवाह है, नियति-संचालित एक प्रवेगमय तूफ़ान है, झंझावात से आन्दोलित एक विक्षुब्ध वातावरण है, जिसमें मैं तृणवत्—नियति के संकेत पर—उड़ता चलता हूँ!—कहाँ, कौन जाने!—विवश हूँ, असमर्थ हूँ और परवश भी!

व्यथा और करुणा मानव-जीवन के एकान्त क्रोड़ में दुबकी, छिपी, बैठी मिलेंगी। मृगशावकों की भाँति अनुकूल समय और वातावरण पाकर वे चटुल कुलाँछें मारने लगेंगी; निकल कर ही दम लेंगी, आन्दोलित कर देंगी···और?—और ऐसा लगेगा जैसे कहाँ अनजान बनकर

एक महा अम्बुधि में डूबा जा रहा हूँ। तूफ़ान ने कहाँ से लाकर यहाँ इस सख्त चट्टान पर, शिला पर पटक दिया है !

जी नहीं, आप मुझसे यह भी न जानें कि मैं आज क्या हूँ, कहाँ हूँ ! मैं भले ही कुछ लगाता रहूँ, पर जान पड़ता है कि जहाँ तब था, वहाँ से भी खिसक कर नीचे—बहुत नीचे—आ गिरा हूँ। ज्ञानोपार्जन से लोग ऊपर जाते हैं पर ज्ञान-भार से दब कर मैं नीचे कैसे और क्यों आ गया, इसका विश्लेषण भी आप करें, तो उसे भी अब मैं मिथ्या ही स्वीकार करता हूँ। मुझसे यह न होगा···न होगा ! अब मुझे आप बिलकुल न उलझाएँ, व्यथित न करें !

उलझनों, स्मृतियों से आप खिलवाड़ करें, मैं न उलझूँगा, मैं खिलवाड़ भी नहीं करूँगा। बस, मैंने भर पाया। मैंने एक निश्चय कर लिया है। मुझे अब आप छोड़ ही दीजिए। मुझे इसी तरह पड़ा रहने दीजिए। मुझे दुखाइए नहीं, ज़रा भी, आह !

बौना होकर यदि मैं चाँद छूने की चेष्टा करूँगा, तो आप मेरी बुद्धिमानी में शङ्का करेंगे। साधारण-सा मनुष्य होकर यदि मैं उन्हें अपनी कलम में लपेटने का साहस करूँगा, तो निश्चय ही मेरा मज़ाक बनेगा। मैं तुला लेकर बैठ गया हूँ और पहले अपने को ही तौलना प्रारम्भ किया है। हिसाब-किताब कुछ समझ नहीं सका, सब कुछ भूल गया हूँ। तब मैं भला आपको अपना लेखा-जोखा समझाने का अधिकारी कैसे मान सकता हूँ ?—नहीं मान सकता, जी नहीं, किसी तरह नहीं !

सब, ठीक उसी तरह जैसे वायु का एक मन्द, मादक झोंका आकर निकल जाता है और कुछ क्षण तक रजनीगन्धा की भीनी-भीनी सुवास मन-प्राण को, अणु-अणु को मुखरित करती रहती है।

× × ×

पहाड़ की उन मीठी-मीठी बातों, रातों और घातों को नहीं भूल

सकता ! चेष्टा करने पर भी शायद नहीं भूल सकूँगा। कारण, भूलने की चेष्टा करन का अप्रत्यक्ष रूप से तात्पर्य उसकी स्मृति को और अधिक तरो ताज़ा—सरसब्ज़—करने से होता है।···इसलिए हो सकता है, जब मैं अपने आपको भूल जाऊँ, तब उस बेख़ुदी के आलम में उन्हें भी भूल जाऊँ ! पर अभी तो मैं अपने को—अपने आपको—पहचान रहा हूँ। इसलिए उन्हें भी, स्मृति-कोष में, अन्धे की लकड़ी की भाँति, बड़ी सावधानी से, सुरक्षित किये हुए हूँ !

इधर स्वास्थ्य कुछ गिर गया था। एक दिन क्लब में नगर के मित्र हेल्थ-ऑफ़िसर डॉक्टर रामकुमार माथुर ने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए जब यह कहा—'अच्छा तो यह होगा, आप कुछ समय के लिए मसूरी चले जाइए या किसी अन्य हिल-स्टेशन पर ! वायु-परिवर्तन से आपको बड़ा लाभ होगा।' तब अनायास ही मेरी मसूरी जाने की इच्छा बलवती हो उठी।

लौट कर घर आया तो देखता हूँ—भाई साहब एक कुर्सी पर बैठे 'सूरसागर' देख रहे हैं। कमरे में सन्नाटा है। एक व्यक्ति कोने की ओर छाने में झोला डाले हुए बैठा है। भाई साहब उससे बोले—'अभी उत्तर लिखे देता हूँ। दो मिनट ठहरो।' शायद वह कहीं से, किसी का, पत्र लाया था और उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा था। अब भाई साहब मेरी ओर देख कर बोले—"आज बड़ी देर कर दी सतीश !"

मैंने कहा—"जी, क्लब में हेल्थ-ऑफ़िसर मिल गये थे······"

मेरी बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि भइया बीच में ही, चश्मा उतारते हुए बोल उठे—"कौन, वो रामकुमार बाबू ?"

"जी, आपको भी पूछ रहे थे और··· ?"

"और क्या ?"

"कह रहे थे कि अच्छा हो तुम कुछ समय के लिए मसूरी चले जाओ

या किसी अन्य हिल-स्टेशन पर !"

"बात तो ठीक कही उन्होंने। तुम कभी गये भी नहीं । इधर तुम्हारी तन्दुरुस्ती भी कुछ बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती !—चले जाओ, क्या बुरा है ? रामलाल को ले-लो खाना बनाने के लिए और भीखू सेवा करने के लिए साथ चला जायगा !" एक क्षण के अन्दर भाई साहब ने अपना निर्णय ही नहीं दिया, बल्कि सारी व्यवस्था भी कर दी।

नवयुवक। सम्पन्न परिवार। सुविधाएँ थीं। विचार आया और धारणा को कार्यरूप में परिणत करने की व्यवस्था में लग गया। किन्तु आज ?···आज धारणा और विश्वास, संस्कार और दृष्टिकोण बिलकुल बदल गये हैं।···ऐसा लगता है, अभाव की प्रतिक्रिया ही जीवन का वह स्फुलिंग है, जिसके द्वारा कर्मठ और समयचेत्ता व्यक्ति, ग़लतियों से नसीहत लेकर, महानता की महामहिम, गरिमामयी उन्नति-शिखा को छू अपने को कृतार्थ कर लेता है।

मेरा मित्र अविनाश उन दिनों मसूरी में ही था। इस सम्बन्ध में उससे पत्रव्यवहार हो चुका था।

होल्डाल, ट्रंक, अटैची, सूटकेस, बरफ़ से भरा थरमस, फल और नींबू आदि से भरी डोलची के अतिरिक्त रामलाल और भीखू को साथ ले, भाई साहब और भाभी के चरणों की धूलि मस्तक पर लगा, मुन्ना को चूम-पुचकार कर, मैं मसूरी-यात्रा के लिए चल पड़ा।

स्टेशन पर आकर, चलने से कुछ समय पूर्व, मैंने अविनाश को इस आशय का तार भी दे दिया—मैं कल प्रातःकाल दस बजे तक मसूरी पहुँच रहा हूँ।

अब ट्रेन आगे खिसक रही है—पहिले धीरे, फिर तेजी से और फिर अधिक गति के साथ।—और मेरी दृष्टि अब भी उस पीले बोर्ड

पर लगी हुई है जिस पर गहरे काले अक्षरों में लिखा हुआ है—कानपुर।

···और अब वे काले अक्षर धुन्ध की पृष्ठिभूमि में शनैः-शनैः विलीन होकर आँखों से बिलकुल ओझल हो गये—बिलकुल, जैसे कहीं खो गये हों।



: २ :

जीवन में शैलश्रृंग देखने का यह पहला अवसर था। अपने से बड़े वृद्ध-जनों से सुना करता था कि पहाड़ बहुत भारी, बहुत ऊँचे, बड़े विस्तार में होते हैं; लेकिन उनसे इनकी वास्तविकता का चींटी भर परिचय न मिल सका था। आज देखता हूँ—ये इतने ऊँचे हैं कि बादल इनके पास से छूते हुए चले जाते हैं। ये बादल से भी ऊँचे हैं। आकाश की नीलिमा उन पर ऐसी छाई हुई है, जैसे यह सारा संसार एक शामियाने के अन्दर आ गया हो और यह आकाश उसके ऊपर स्वच्छ चाँदनी की तरह तना हुआ हो।—और ये पत्थर?—ये इतने बड़े हैं कि संसार की कोई भी शक्ति इनका कन्धा तक नहीं हिला सकती! पता नहीं, ये कब से इसी तरह, सजग प्रहरी की भाँति खड़े, देश की रखवाली कर रहे हैं! कितने युग बीत गये, बचपन और जवानी कितनी इनकी बीत गई, क्या ये प्रारम्भ से ही ऐसे सपुष्ट वृद्ध रहे हैं!—एक हँसी खेल गई।···और इनका वक्ष कितना बलिष्ठ है कि इनके रोओं को जड़ बनाकर पेड़-के-पेड़, जंगल-के-जंगल, खड़े हो गये हैं! जितने ये ऊँचे हैं, उससे अधिक गहरे हैं और इनकी गहराई भी अद्भुत है। एक गहराई समाप्त नहीं होने पाती कि दूसरी प्रारम्भ हो जाती है।···अरे! यह मैं क्या देख रहा हूँ? अपने गाँव के, नगर के, घरों में सूर्य को सदा सामने ही उगता हुआ देखता था, यहाँ देख रहा हूँ कि यह हमारी ऊँचाई से कितना नीचे है। मगर मैं यह क्या कह गया? हमारी ऊँचाई है कहाँ?—हम पहाड़ पर चल रहे हैं, इस लिए यह ऊँचाई तो उसी की है!

हमारी ट्रेन आगे बढ़ रही है। कभी-कभी उसमें ऐसे मोड़ आते हैं, कि सबसे पीछेवाले कम्पार्टमेण्ट दाँई आँख के सामने रेंगते हुए जान पड़ते हैं।···अच्छा, ये पहाड़ कभी आपस में बातें नहीं करते? इनके

होंठ कभी खुलते नहीं ? और ये हँसते भी नहीं ? लेकिन मैंने उस दिन समाचारपत्र में पढ़ा था कि नैनीताल में सरोवर के उत्तरवाली चोटी नीचे ढह गई।—तो जान पड़ता है ये कभी-कभी हँसते हैं।...और ये जो कहीं-कहीं इनसे पानी टपक रहा है, तो क्या इनके जीवन में भी कभी कोई दुःख आता है ? इनको भी रोने का अवसर मिलता है ? या ऐसा है कि प्रातःकाल का समय है, ये अपना मुँह धो रहे हों और इसलिए यह पानी टपक रहा हो।...नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। ये तो जड़ हैं। लेकिन मैं यह क्या देख रहा हूँ ?—यहाँ तो अच्छा खासा झरना झर रहा है। अच्छा, तो यह बात है ! कहने मात्र को ये जड़ हैं। हृदय इनका झरने की तरह आँखों से झरता रहता है। खूब ! और यह हरियाली ? ऐसा जान पड़ता है कि कठोरता और मुलामियत इन पर्वतों ने एक साथ पाई है। मगर यह तो पुष्प का गुण है कि सुगन्ध निस्सरण के साथ-साथ सँभल कर न चलो, तो निकट ही निकला और उगता हुआ कण्टक धोती, पायजामा और पेण्ट का स्वागत करबैठेगा। कहने को पहाड़ जड़, मूक, वधिर, पंगु और उसमें इतने गुण हैं ? और ये पहाड़ी मकान दूर से ऐसे जान पड़ते हैं कि श्वेत चादर पर किसी ने लाल रंग के छींटे डाल दिये हों। इतनी दूर से इन मकानों के आगे खड़े हुए आदमी भुनगे से रेंगते हुए जान पड़ते हैं—अद्भुत। यहाँ आने पर यह प्रतीत हुआ कि आँखें भी मनुष्य को कितना धोखा देती हैं। अच्छा, इन पहाड़ों को जाड़ा कभी नहीं लगता ? इनके ऊपर बर्फ़ की ठंडक भी कोई प्रभाव नहीं डालती। इनको नमूनिया नहीं होता कभी ? क्या पागलपन है ? मैं यह भूल ही जाता हूँ कि ये जड़ हैं, यद्यपि यह स्वीकार करने को जी नहीं चाहता कि ये जड़ हो सकते हैं। जड़ पदार्थ भी कहीं इतने सुन्दर होते हैं ?

अच्छा प्रश्न है—एकदम मूर्खता से भरा हुआ। सुन्दरता सदा जड़ होती है, निर्मम, कठोर। न विनय की वह कभी परवाह करती है, न

शील और सौजन्य की ही ?

अब लक्सर से हमारी गाड़ी देहरादून पहुँची और देहरादून से हम कार द्वारा मसूरी आ गये। ट्रेन में हमारे साथ जो लोग थे, उन में से एक ऐसा परिवार भी हमारे साथ चल रहा था, जिसके आदमी से, भीखू की कुछ झपड़ हो गई थी। मैं लैवेटरी में से सुन रहा था।

अभी-अभी कुछ समय पहले साथ चलने वाले परिवार के महाशय शायद नीचे की बर्थ पर फैले हुए मेरे बिस्तर पर पैर रखकर ऊपर की बर्थ पर चढ़ रहे थे। क्योंकि पहले से ही वे वहीं लेटे थे। जूते के तल्ले का दाग देखकर भीखू कुछ भुनभुनाने लगा। उसकी देहाती भाषा के ये शब्द मेरे कानों में आये थे—"माफ़ कीन्हों बाबसाहेब, आप यो नहीं समझ्यो कि जइसे अपनि चीज, वइसे दुसर्‌यो केरि! जूता पहिने ऊपर चढ़ि गयो औ यो न देख्यो कि इनका चदरा यहितना मैला ह्वै जाई। सरकार देखिहैं, औ बेगड़िहैं, तो का आप बचाय लेहौ ?"

इस पर वे महाशय जामे से बाहर हो गये। भीखू को दुत्कारते हुए बोले—"क्या बकता है! ऐसे चदरे-वदरे हमारे नौकर बिछाया करते हैं।"

"हाँ, तबहीं तो दुई चारि नौकर आपके इर्द-गिर्द हाथ बाँधे ठाढ़ि रहति देखाई देत हैं। कासी जी ते आय रहे हौ। दस घण्टा बीतिगे। पान, सिगरट, चाह, लैमन, आपके वरे नौकरै-चाकर तो लीन्हें आवति हैं।"

बाबूसाहब ने ताव में आकर कहा—"क्या कहा? फिर तो कहना जरा!"

यह सारी चख-चख 'वाशबेसिन' में हाथ धोता और टावल से मुँह पोछता हुआ मैं चुपचाप सुन रहा था। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही थी कि भीखू ने उत्तर बड़ा अच्छा दिया है। मुस्कराता हुआ

मैं बाहर आया और मेरे मुँह से निकल गया—"क्यों लड़ रहे हो भीखू ? क्या बात है ? बिस्तर ही तो ख़राब हो गया। झाड़-झूड़ कर ठीक कर लो। तुम्हारे लिए जैसे हम वैसे ही बाबूसाहब।"

मैंने देखा—बाबूसाहब तो कुछ नहीं बोले, लेकिन उनकी श्रीमतीजी की आँखें मेरे ऊपर आ पड़ीं।—और ऐसा जान पड़ा कि प्रसन्नता की पहली मुहर उनके मुख पर बरबस झलक ही पड़ी हो। मैं सोचता था—बाबूसाहब कुछ कहेंगे, लेकिन वे एक सिनेमा-मैगज़ीन को चाट रहे थे। इसलिए उनको इधर ध्यान देने की फ़ुरसत नहीं थी।

रास्ते की बात ठहरी। फिर हमारी यात्रा रेल की थी। क्षणिक सम्बन्ध अपना उचित मूल्यांकन करा ही कहाँ पाते हैं ? लक्सर से जब हमारा कम्पार्टमेण्ट देहरादून जाने वाली गाड़ी में जोड़ दिया गया और हम पहाड़ की ओर बढ़ने लगे, तो बाबूसाहब की एक छोटी कन्या की तबीयत कुछ ख़राब हो गई और उसको मिचली आने लगी। बड़ी ग़नीमत हुई कि उनकी श्रीमतीजी पहले से चेत गईं। नहीं तो कम्पार्टमेण्ट का फ़र्श उसके वमन से गन्दा हुए बिना न बचता। 'वाश बेसिन' के पास ही उसका अन्त हुआ। हाथ-मुँह धुलाकर वे उसे बर्थ पर ले आईं। मेरे थरमस में बरफ़ पड़ी हुई थी और डोलची में दो नींबू। बच्ची को फिर मिचली तो नहीं आ रही है, यह जानने के लिए उसकी माँ ने पूछा—"अब कैसा जी है किरन ?"

किरण बोली—"कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि फिर उल्टी हो जायगी माँ ! और सर में भी दर्द मालूम पड़ता है।"

उस समय पंखा फर-फर चल रहा था और बाबूसाहब, नींद के खर्राटे में पड़तो बोलते हुए-से जान पड़ते थे।

भीखू ने थरमस खोला और एक प्लेट में बरफ़ के चार-पाँच टुकड़े रख दिए।

मैंने कहा—"भीखू नींबू भी तो हैं ?"

"हाँ मालिक, वहौ देइत है।" और इतना कहकर उसने डोलची से नींबू निकाल कर काटा और उसका आधा भाग उस पर रखकर किरण को देते हुए कहा—"एक टुकड़ा मुँह माँ धरि लेव बिटिया औ यहिका रसु तिनुकु-तिनुकु चूसत जाव ! अबहीं तबीयत ठीक होति है।"

श्रीमतीजी ने पहले भीखू की ओर देखा, फिर मेरी ओर—"क्षमा कीजिएगा, आपको समझने में हमसे भूल हो गई। उन्होंने सचमुच आपको ठीक तरह से समझा नहीं। मुझे बड़ा खेद हो रहा है। अगर ऐसी सभ्यता हम सब लोगों की बन जाय, तो यह सारा संसार एक दिन स्वर्गतुल्य हो उठे।" अब भीखू की ओर घूमकर कहा—"उनकी ओर से मैं तुमसे माफ़ी माँगती हूँ, भीखू ! किरन बेटी, लो, बरफ़ का टुकड़ा मुँह में रख लो और नींबू चूसो। ··· ये बाबूसाहब, देखो इधर, ये जो साथ चल रहे हैं, तुम्हारे चचा जी हैं।"

मेरी दृष्टि पुनः ऊपर की बर्थ पर जा पड़ी, तो क्या देखता हूँ—सिगरट बाबूसाहब ने मुँह में खोंस रक्खी है और लाइटर से उसे जलाने की चेष्टा कर रहे हैं। मगर मालूम नहीं, लाइटर को क्या हो गया है कि जल ही नहीं रहा। यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"अरे भीखू, माचिस तो देना बाबूजी को।"

जब भीखू बाबूसाहब को माचिस देने लगा तो उनके मुँह पर मुस्कराहट दौड़ गई। बोले—"शुक्रिया, शुक्रिया ! यह लाइटर कुछ ख़राब हो गया जान पड़ता है।"

अपनी प्रकृति से लाचार हूँ। मेरे मुँह से फिर निकल गया—"लाइटर तो नहीं ख़राब है। जान पड़ता है, मसाला ही ख़तम हो गया है।"

इस पर अचानक उनको और साथ ही किरण की माँ को हँसी आ गई और भीखू ने अपना मुँह फेर कर कहा—"आपौ बैठि जाव

मालिक !"

मैं ज्योंही अपनी सीट पर बैठने के लिए आगे बढ़ा, त्योंही मेरे पैर में एक ठोकर लगी। भीखू ने फ़ौरन उस सूटकेस को रास्ते से हटा कर बर्थ के नीचे खिसका दिया। मैंने देखा—उस पर अंगरेज़ी के श्वेत अक्षरों में लिखा है :

रुचिनाथ, एम० ए०

और छोटी अटैची पर :

रुचिता, बी० ए०

: २ :

अविनाश से पत्रव्यवहार करके उसी के साथ, बँगले के एक भाग में ठहरने का प्रबन्ध पहले से कर लिया था। पर जब उसके यहाँ पहुँचा, तो मालूम हुआ—वह आज ही प्रातःकाल दिल्ली चला गया है। बहुत क्रोध आया उसकी लापरवाही पर! फिर यह सोचकर, मन मसोस कर, समझौता कर लिया कि यह हिन्दुस्तानी प्रगति है। यहाँ सब चलता है। उसे आज ही जाना था? क्या मेरा टेलीग्राम उसे नहीं मिला? यदि जाना ही था, तो मेरे ठहरने की व्यवस्था करके जाता! उसका नौकर बैठा-बैठा मूँगफली छील रहा था। मैंने पूछा—"क्यों, कल कोई तार-वार नहीं आया?"

मूँगफली के छिलकों को गमछे से छिपाता हुआ वह अदब के साथ उठ कर खड़ा हो गया और बोला—"तार? तार आया तो था मालिक, लेकिन जब वो चले गये तब आया! क्या आपने ही भेजा था तार?"

मस्तिष्क में जैसे जलती हुई मशाल किसी ने छुआ दी हो। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप उस दिन मैंने अपनी डायरी में लिखा—बुद्धिवादी कहते हैं, भविष्य को सदा अपनी मुट्ठी में समझो। मैं पूछता हूँ, भविष्य की जो घटनाएँ मनुष्य को अपने जबड़ों के नीचे रख कर चने की तरह चबा डालती हैं, उन पर मनुष्य का क्या वश है?

फिर वहाँ से चुपचाप लौट पड़ा। चार सीढ़ी नीचे उतरा ही था कि बँगले के उसी नौकर ने दौड़कर, पास आकर, हाथ जोड़ते हुए कहा—"हुजूर, मुझसे ग़लती हुई। माफ़ कीजिए। आप ऊपर चलिए। ड्राइंगरूम में बैठिए। मेमसाहब आपकी याद कर रही हैं।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेरे मुँह से निकल गया—

"मुझको ? मैं ? मेमसाहब ? तुम भूल रहे हो ! मुझे तुम्हारी ममसाहब नहीं जानतीं। वे किसी दूसरे को बुला रही होंगी !"

"नहीं साहब, ऐसी बात नहीं। तार उन्हीं के पास है। उसी को देखकर ...आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं ... चलिये वो आपकी राह देख रही हैं। उन्होंने आपको बुलाने के लिए ही मुझे भेजा है। आप नहीं चलेंगे, तो वो मुझ पर ख़फ़ा होंगी ... चलिए कुछ सोचिए नहीं ...... चलिए......आइए ...." तब मुझे लाचार होकर उसके साथ चलना ही पड़ा। मैं अभी उस नौकर के साथ ऊपर चढ़ता हुआ एक कमरे के सामने पहुँच ही रहा था कि द्वार पर मैंने एक 'नेम-प्लेट' देखा, जिसमें हिन्दी में लिखा हुआ था :

'श्रीमती विश्वास'

और उसके नीचे एक कोने में खटके के अन्दर इतना और लिखा था : अन्दर हैं।

एक क्षण के लिए मैं वहाँ ठिठुर कर खड़ा हो गया कि इतने में क्या देखता हूँ, एक महिला बाहर आ गई हैं। मैंने सोचा—शायद यही श्रीमती विश्वास हैं।

उन्होंने मुस्कराहट के साथ नमस्कार करते हुए कहा—"मुझे श्रीमती विश्वास कहते हैं ! आप ? शायद अविनाशबाबू के मित्र हैं ?"

प्रतिनमस्कार करते हुए मैंने कह दिया—"जी हाँ।"

"कोई बात नहीं !—वे तो एक आवश्यक कार्य से दिल्ली गये हैं। कुछ समय भी लग सकता है।...फिर भी यह आपका ही स्थान है !... आप चैन से ठहरिए...।" इतना कह कर वह चुप हो रहीं।

उनके साथ मेरा यही पहला साक्षात्कार था।...आह ! आँखों में वह विलक्षण मोहिनी शक्ति। उनकी जब-जब मुझ पर दृष्टि पड़ती थी, लगता था, बार-बार श्याम घटाएँ घिर-घिर कर वायु के साथ आँख-

मिचौनी खेल रही है···।

अब उन्होंने प्रश्न किया—"कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं ? क्या काम करते हैं ? कितनी जगह चाहिए ? साथ में आपके कौन-कौन हैं ?"

मैंने अपना सब कुछ, सरल, स्वाभाविक ढंग से कह सुनाया। वे मेरा परिचय पाकर ऊपर से बहुत प्रसन्न दिखलाई पड़ीं। हल्के स्लेटी रंग के चश्मे को, जिसे अब तक वह हाथ में लिए हुए थीं, लगाती हुई बोलीं—"अच्छा तो आप प्रोफ़ेसर हैं और टूटा-फूटा कुछ लिख भी लेते हैं। पर वह टूटा-फूटा क्यों ? सम्पूर्ण और गौरवपूर्ण क्यों नहीं ?" इतना कह कर वह मुस्करा उठीं।

मैंने देखा—रामलाल और भीखू, जो कुछ दूरी पर खड़े थे, कौतुक-पूर्ण ढंग से हम लोगों की वार्ता सुनने को उत्सुक हो उठे हैं। क्योंकि वे थोड़ा-थोड़ा खिसकते हुए हमारे निकट आ पहुंचे थे।

तब वह मुझ अनजान, किन्तु सद्यः परिचित आगन्तुक को अन्दर ले गईं—अपने ड्राइंगरूम में। एक कुर्सी की ओर संकेत कर के बोलीं—"तशरीफ़ रखिए।"

मेरे साथ वे भी, टेबिल के दूसरी ओर पड़ी, कुर्सी पर बैठ गईं और बोलीं—"यह बँगला मेरा ही है।"

जब मैंने उनका कुछ अधिक परिचय पाना चाहा, तो वह बोलीं—"मेरे पति बहुत बड़े बैरिस्टर थे। बहुत पैदा किया, बहुत खोया भी···" फिर यह भी उन्हीं से मालूम हुआ कि उन्होंने देशाटन भी खूब किया है। इधर वर्षों से अकेली रहती हैं और एकान्तता की पीड़ा से, जलन से, सूख रही हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे स्रोतहीन सरिता ग्रीष्म-काल में अपना दम तोड़ कर अपना अस्तित्व तक समाप्त कर लेती है। उनका इस प्रकार रहना उन्हें कभी-कभी बड़ी बेचैनी पैदा कर देता है। वह रोना चाहती हैं, पर उनकी आँखों से आँसू ही नहीं निकलते। वह मर जाना चाहती हैं, पर उन्हें जुकाम तक नहीं होता।

उन्होंने बतलाया—उनका आधा बँगला अभी यात्रियों के लिए खाली पड़ा है। आधे हिस्से में वे स्वयं रहती हैं। किराये की छोटी और ओछी बात पर विवाद करके समय नष्ट करना व्यर्थ है। यदि दोनों ओर ऐक्य है, दोनों सुलझे हुए हैं, तो सब कुछ हल समझिए।··· "किराया जो चाहे दे दीजिएगा, चाहे जब दे दिया कीजिएगा। न मात्रा का बन्धन है, न समय का प्रतिबन्ध।" इतना कह कर श्रीमती विश्वास हँस पड़ीं और बोलीं—"एक बात और, न देने की तबीयत हो, तो उसमें भी मुझे एतराज न होगा।"

मैं उलझन में पड़ गया। यह एकात्म क्या है? यह तदाकार तद्रूप और तन्मय होना क्या है? मानव से मानव और जीव से जीव कैसे ऐक्य स्थापित करता है? और उसका प्रयोजन क्या है? तो क्या जीवन के प्रत्येक व्यापार की उत्पत्ति प्रयोजन के बीज से ही होती है? यानी जो कुछ भी है, वह है प्रयोजन, फल और परिणाम? और जानें उस क्षण कितने मूक प्रश्नचिन्ह नेत्रों के सामने बन-बन कर बिगड़ गये, उजड़ गये। ऐसा लगा, मानो जीवन भी तो एक विराट प्रश्न-चिन्ह है। इसके अतिरिक्त वह और है ही क्या···?

जैसे जीवन में अनायास वर्षा हो गई है। मीठा, भीना सौरभ मेरे मस्तिष्क में हौले-हौले भर रहा है।

मैंने अपना सामान एक हिस्से में रखवा दिया। रामलाल और भीखू अपने कार्य में लग गये। तत्काल ही चाय तैयार करनी थी, किन्तु स्टोव में, समय की बात, तेल न था। यह जान कर वे प्रसन्नतापूर्वक अन्दर गईं और अपने आप में उलझती तुरन्त बाहर आ गईं। उनके पीछे-पीछे उनका सेवक एक दूसरा स्टोव लिए चला आ रहा था। बोलीं—"तुम्हारा क्या नाम है?"

"भीखू।"

"और तुम्हारा जी?"

"रामलाल !"

"ठीक, देखो रामलाल, इसका नाम है रामू ।" फिर रामू से बोलीं—"स्टोव दे दो।"

रामू ने स्टोव रामलाल को दे दिया। अब वे रामलाल से बोलीं—"देखो रामलाल, इसे अपने यहाँ रख लो। तुम्हें सुविधा होगी। मेरे पास कई स्टोव हैं। मैं उनसे काम चला लूँगी। साहब को तकलीफ़ न होने पाये। यह भी उन्हीं का घर है। और किसी चीज की जरूरत हो तो बैरा से ले लेना। संकोच न करना। हाँ !"

मैंने उनकी बातें सुन लीं। अनायास जैसे बिजली लपक जाती है, ऐसा ही कुछ प्रभाव मन-प्राण पर पड़ा। उर्वर भूमि पर बीज पड़ते ही जिस प्रकार अनगिनत पीले-पीले अंकुर खड़े हो जाते हैं, शान्त, संकुल सरोवर में एक कंकड़ डाल देने से जिस प्रकार अनन्त लहरियों की सृष्टि हो जाती है और रात आते ही जिस प्रकार असंख्य नक्षत्रों की दुनियाँ बस जाती है, ठीक उसी प्रकार मेरे भावप्रवण मस्तिष्क में, चाय पीते समय, उनकी एक-एक बात, क्रम-क्रम से, चक्कर लगा गई और विचारों, उड़ते बादलों को सँभालना मेरे लिए दुष्कर हो गया।

...और दिन पर दिन बीतते जा रहे हैं।

उदारता, सदाशयता और विनम्रता की इस देवी पर मेरा आश्चर्य, विस्मय—शंकालु प्रश्नों के रूप में—क्षण-प्रतिक्षण, उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। कभी मन में आता था, क्यों न जी खोलकर उनकी प्रशंसा करूँ, आरती उतारूँ। लेकिन फिर यही सोचकर रह जाता था, कि प्रत्येक नई रचना, घटना और सृष्टि के पीछे प्रकृति का एक-न-एक प्रच्छन्न अभिप्राय अवश्य रहता है। श्रीमती विश्वास की सज्जनता के पीछे कोई मूक अभिप्राय अवश्य है। वे मुझसे कोई-न-कोई आकांक्षा अवश्य रखती हैं। मेरा उनका कभी का कोई परिचय नहीं; केवल एक बार मुझे सिर से पैर तक देख कर, मेरा एक-आध कथन

सुनकर, जो नारी मुझे अपने सौजन्य के कोमलतम आकर्षण में बाँध लेना चाहती है, वह कहीं पर अवश्य ही रिक्त है। मैं उसका पूरक बनाया जा रहा हूँ।

इस प्रकार नाना रूप और भंगिमाओं में अनेक प्रकार के प्रश्न मेरे मन में उठने लगे। लेकिन, सबसे बड़ी उलझन की बात यह थी कि जब श्रीमती विश्वास मुझे कोई सन्देश भेजतीं, खाद्य-सामग्री भेजतीं, चाय और मिष्ठान्न आदि तैयार करा कर दो-दो, चार-चार तश्तरियों में सजा कर अपने बैरे को सिखा-पढ़ा कर मेरे पास भेजा करतीं, तब-तब मैं सारी शंकाओं को एक साथ भूल जाता था। यहाँ तक कि जब कभी वह सामने होतीं, तो ठगा-सा रह जाता और मुझसे यह भी न कहते बनता—"आइए, बैठिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप तो अपने आतिथ्य-सत्कार के बन्धनों से मुझे इतना खींच रही हैं कि मैं नहीं जानता, उनसे कैसे मुक्त रह पाऊँगा।" और संकोच के साथ जब मैं उनसे स्पष्ट कहता—"कैसे आपके इस सौजन्य का बदला चुकाऊँगा? शायद आप नहीं जानतीं कि प्रतिदान के नाम पर मेरे पास कुछ नहीं है।" तब वे ह···ह···ह···करके हँस पड़तीं—"आप अजीब किस्म के आदमी हैं। इतना भोला व्यक्ति तो कभी मेरे जीवन में आया ही नहीं। कैसे आप ये सब बातें कह जाते हैं! मैं तो हैरान रह जाती हूँ। आप तो प्रतिदान की बात करते हैं। मैं पूछती हूँ, प्रतिदान तो आदान का होता है। मेरे पास ही आदान के लिए क्या रक्खा है? फिर, क्या सौजन्य का कोई भी कार्य केवल प्रतिदान के निमित्त होता है? सौजन्य का कोई प्रतिदान हो भी सकता है?···आप यह क्यों नहीं सोचते, कि प्रतिदान भी तो एक आदान होता है। आपके पास प्रतिदान के लिए कुछ नहीं है, तो क्या आदान से भी आप रिक्त हैं?"

ऐसी-ऐसी बातें श्रीमती विश्वास अनायास कह जातीं कि मैं सोचता रह जाता क्या उत्तर दूँ इन बातों का! जल्दी कोई उत्तर मुझे

सूझता भी नहीं था। परिणाम यह होता, कि जब कभी मैं कोई बात करता भी, तो उस पर, वे घुमा फिरा कर ऐसे ढंग से बोलतीं कि मैं अवाक् और निरुत्तर रह जाता। बँगले का सारा वातावरण एकदम नीरव रहता था; या तो पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ता, अथवा श्रीमती विश्वास का कलहास ! रात-दिन कभी रेडियो से संगीत ध्वनित हुआ करता, कभी श्रीमती विश्वास की गुनगुन संगीत-लहरी और कभी हँसना, किलकना अथवा कोई बात बैरा से डाँट कर कहना और फिर क्षण भर बाद फुसफुसाना।

उनकी एक सफ़ेद बिल्ली बँगले भर में इधर-से-उधर चक्कर काटा करती। मैं जब चाय पीने बैठता और ठीक ऐसे ही समय श्रीमति विश्वास के चप्पलों की आवाज़ सुनाई पड़ती और वह कमरे में आने को होतीं, तभी एक मिनट पूर्व वह सफ़ेद बिल्ली, जिसका नाम 'टेनर' था और केवल सफ़ेद होने के कारण जिसे श्रीमती विश्वास ने दस रुपये में ख़रीदा था, इसीलिए उसका नाम 'टेनर' पड़ गया था, मेरे दरवाज़े के पास आकर मूँछों पर जीभ फेरती हुई बोल उठती—'म्याऊँ !' और तभी क्षण भर बाद श्रीमती विश्वास आ बिराजतीं। मेरी समझ में नहीं आता था, कि इस 'टेनर' को यह कैसे मालूम हो जाता था कि अभी थोड़ी देर बाद श्रीमती विश्वास यहाँ आयेंगी। मैं सोचता रह जाता था कि श्रीमती विश्वास के आने की पूर्व-सूचना देने में यह 'टेनर' कितनी पटु है और तभी उसकी 'म्याऊँ' का भाव स्पष्ट हो जाता। उसका परिणाम यह होता कि सदा ही एक-न-एक बिस्किट वह मुझसे पा जाती और श्रीमती विश्वास बोल उठतीं—"आप इसकी आदत ख़राब किये दे रहे हैं। अब यह मेरे पास आकर इसी तरह बिस्किट के लिए ज़िद करने लगी है और यह भी एक अजीब तमाशे की बात है कि आप जब कभी मेरे यहाँ आते हैं, तब आपके आने की सूचना यह मुझे एक मिनट पूर्व अवश्य दे जाती है। क्या बात है, मैं नहीं जानती। यह जानवर मनुष्य

का गुण कैसे सीख लेते हैं।"

"जी हाँ, इसीलिए मैं इसे कोरा 'थैंक' न देकर यह बिस्किट दे देता हूँ। आदत खराब न होगी।"

इस प्रकार दिन में दो चार बार श्रीमती विश्वास से मेरा साक्षात्कार होने लगा।···एक दिन चाय पीने के बाद जब श्रीमती विश्वास मेरे यहाँ से चली गईं तब मैं सोचने लगा—श्रीमती विश्वास मेरे निकट क्या हैं ? मैं क्या हूँ ? यह आदान-प्रदान क्या है ? मैं आज कहाँ आ पहुँचा हूँ ? ये सब प्रश्न मेरे लिए एक अजीब पहेली-सी बन गये थे। मैं उन्हें बार-बार सुलझाने का जितना प्रयत्न करता था, उतना ही उनके इन्द्रजाल में उलझ कर रह जाता था।

रहस्यों, मायाजालों, शंकाओं और विशेषरूप से विचारों के झंझावातों के बीच जब मैं थपेड़े पर थपेड़े खाकर अनन्त जल-राशि में आकण्ठ डूबने-सा लगा, तब जैसे तिनके का एक सहारा मिल जाता हो, अन्धकार में भटकता हुआ पथिक कौंधा लपकने पर क्षणिक, क्षीण प्रकाश पा जाता हो।···इतना ही नहीं, कुछ ऐसा लगा जैसे एक क्षण जल के ऊपर आकर साँस लेने का स्वर्णावसर मिल गया हो।

"छोटे भइया, ई मेमसाहेब बड़ी दयावन्त हैं। जइसे अपने हियाँ, न छोटे भइया, बुआ का सीध सुभाव है, ठीक वइसेहे इनहुन का। वहि दिन स्टोव दइ गई रहैं। आजु अपने हियाँ कै काफी दइ गईं हैं। कहती रहं, 'यह बहुत नीकि है ! हम बड़ी दूरिते मँगवाया है। इनका कउनिउ तकलीफ़ न होय पावै !···अपनै घरु समझौ !' भीखू जो उधर से जा रहा था, मुझे अकेला बैठा देख, निकट आकर यह सब विवरण देने लगा। अन्त में बोला—"हम का बताई छोटे भइया, औतार हैं पूरा देवी का।"

भीखू के मुख पर अपना घर—कुछ समय के लिए—छोड़ने के कारण, जो उदासीनता और अन्यमनस्कता की रेखाएँ मुद्रित हो रही

थीं, वे सहसा ही इस पवन-दोलन से दूर हो गईं। उसे अब यहाँ कुछ अपना-अपना-सा मिला। उसे जैसे वह वस्तु मिली, जिसकी उसने शायद कभी कल्पना भी न की थी। भले ही उसे श्रीमती विश्वास में बुआ का किञ्चित प्रतिबिम्ब ही देखने को मिला हो।

सहसा भीखू की अर्धप्रस्फुटित मुस्कराहट में मैंने भी भाग ले लिया और इस मुद्रा में पाकर भीखू ने मुझसे कह ही तो दिया—"छोटे भइया, हियाँ आपका कउनिउ तकलीफ़ न होय पाई, घरु होइगा है, घरु!"

उसी ढंग से मैंने भी उत्तर दे दिया—"जो कुछ सामने आयेगा, देखूँगा, भीखू!—चाहे वह सुख हो, चाहे दुख!"

भीखू सामने की टेबिल पर बिखरी पुस्तकों और कागजों को ठीक करने लगा और उसी क्षण मेरे अन्दर अनेक प्रश्न घूम गये—क्या आनन्द और कुछ नहीं, केवल अपनत्व, निजत्व की प्राप्ति?—और निजत्व की चित्रछाया के दर्शन एवं मिलन? तात्पर्य यह कि जिसमें मैं दिखलाई पड़ता हूँ अथवा जो मुझमें दिखलाई पड़ता है, इन दोनों परिस्थितियों का पारस्परिक मिलन और दर्शन ही आनन्द का उद्गमस्थल है?

अब भीखू चुपचाप खड़ा था। मैंने कह दिया—"लेकिन भीखू तुमने उनकी काफ़ी नहीं बनाई?"

"वही बनि जाई छोटे भइया, का अपने हियाँ कउनिउ चीज कै कमी है!"—भीखू ने उत्तर दिया।

उस 'काफ़ी' में भी जैसे श्रीमती विश्वास थीं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकता हूँ जैसे अपनत्व रखनेवाले व्यक्तित्व की छाया विराट विश्व की जिस वस्तु या पदार्थ में दिखती है, वही प्रिय, आकर्षक बन जाता है। यानी विश्व भी मेरे लिए प्रिय आकर्षक और अपना बन सकता है, काश मैं अपने व्यक्तित्व को भूल कर विश्व में उँडेल दूँ, समाहित कर दूँ?

किन्तु नहीं, सावन की बदली की भाँति निमेषमात्र में विचारों की बदली की वह तह भी एक ओर उड़ गई, खिसक गई। अब फिर श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध में सोचने लगा। मैं समाधान नहीं पा रहा था। आयु अभी अधिक नहीं है। युवती कही जा सकती हैं। मुख-छबि निशा-नाथ को भी लज्जित करती है। शत-शत दीपशिखाओं का मुखर सौंदर्य उन पर न्योछावर है। आँखों में दीप्ति है, वाणी में मृदुता! बोलेंगी, तो मालूम होगा जैसे हँस-हँस कर मोती बरसा रही हैं। पुष्प खिल रहे हैं?

बिलकुल 'अप-टु-डेट' ढंग से रहती हैं। सफ़ाई पसन्द प्रकृति, घंटों अपने वातावरण की सफ़ाई और स्वच्छता के निरीक्षण में समय देती हैं। स्वभाव अत्यन्त सरल, भावुक और मिलनसार! पहले तो भावु-कता में आकर वार्ता करने लगेंगी और फिर—बाद में—अनावश्यक वार्ता करके अपना तमाम मूल्यवान समय नष्ट करने के लिए पश्चात्ताप भी करेंगी, पछताती रहेंगी और अन्त में, दोषी भी अपने को ही घोषित कर देंगी।

कठोरता से उनका जैसे कभी कोई परिचय ही नहीं रहा। क्रोध के अंकुर को अपने अन्दर ही आत्मसात कर लेती हैं। क्षमाशील तो इतनी हैं कि मुख से बस 'वाह' निकल पड़ता है। कभी किसी को सख़्त बात नहीं कहेंगी। अपनी हानि उठाना वे स्वीकार करेंगी, किन्तु किसी के मन को दुखाना उन्हें सह्य न होगा।

अभी उस दिन की घटना है।—बिलकुल ताजी! उनके बैरा रामू ने जब ट्रे में चाय लाते हुए उनके मूल्यवान पात्र तोड़ दिये थे, तो मुझे लगा—अब रामू की ख़ैरियत नहीं। किन्तु हुआ ऐसा कब? जैसे एक कहानी दुःखान्त होते-होते सुखान्त में परिणत करदी गई हो और लेखक ने—कलाकार ने—अपनी उन्मत्तकारी कल्पना की अँगड़ाई लेकर, करवट बदल कर, सम्पूर्ण कथारूप को एकदम उलटते हुए,

पाठकों की जिज्ञासुवृत्ति, पूर्वकल्पित अन्त और उनके निर्णय को सहज ही धता बता दी हो।

उन्हें क्रोध तक नहीं आया, बल्कि अधर किञ्चित खुलकर रह गये और जैसे 'यह क्या हुआ' के भावों के कुछ बल---अनेक लकीरों के रूप में---मस्तक पर पड़ गये। अधिक नहीं बोलीं, केवल इतना भर बोलीं---"अरे !···टूट···गया !···खैर ?" और उनके शान्त क्रोध की इस सीमा-रेखा 'खैर' से मेरा मस्तक पकड़ कर, लगा, जैसे किसी ने टकरा दिया हो। मैं उनका 'खैर' सुन कर चकरा गया।

मेरा उस ट्रे में रक्खे पात्रों से यद्यपि कोई सीधा और विशेषरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध न था, तथापि दूर रह कर जितना सम्बन्ध मैं स्थापित कर सका, उसे दृष्टि में रखते हुए मैंने कह दिया---"उपहार की यह मोहक वस्तु---टी सेट---भी आज नष्ट हो गई ! ये लोग बड़ी असावधानी बरतते हैं।"

कथन अभी पूरा भी न हो पाया था कि बीच में ही बात काटती हुई बोलीं---"समझी। किन्तु क्षमा के आगे और देने के लिए मेरे पास है ही क्या ?"

"और कुछ होता भी नहीं।" कह कर मैं हँस पड़ा। यद्यपि मुझे ऐसा जान पड़ा, उनके पास 'क्षमा' के अतिरिक्त यदि देने के लिए कोई अन्य वस्तु होती, तो उसे भी देने में उन्हें शायद संकोच न होता।

किन्तु ट्रे के उन पात्रों की दृष्टि कुछ कह रही थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था---इस स्थिति में निश्चय ही इन्हें क्लेश मिल रहा होगा। उनकी भी दृष्टि जैसे उन तमाम टूटे टुकड़ों पर दौड़ रही थी। ऐसा लग रहा था---किसी अतीत कालीन ऐतिहासिक भग्नावशेष की खोज किसी पुरातत्ववेत्ता ने की है और वह अनन्त जिज्ञासुदृष्टियों से उसका गम्भीरता के साथ अवलोकन, विवेचन और अध्ययन कर रहा हो।

अब उनकी दृष्टि मुझ पर आ पड़ी। मैंने प्रश्न कर दिया---"इस

पर किसी का नाम अंकित था शायद ?"

"प्रफुल्लबाबू का" इतना कहकर वह गम्भीर हो उठीं और जिन-जिन खण्डों में उस रंगीन नाम की झलक दिखाई दी, उन-उन टुकड़ों की ओर उँगली चलाई गई। बोलीं—"प्रफुल्लबाबू जब विदेश से लौटे थे, तो उपहारस्वरूप देने के लिए विशेषरूप से यह 'टीसेट' भी वे साथ ले आये थे। सचमुच, बड़ा मोहक और मूल्यवान था।" इतना कह कर वे पुनः उन खंडित, बिखरे पात्रों के टुकड़ों को देखने लगीं, जैसे उन पर अंकित नाम एक से अधिक कितने खण्डों में आज विभाजित हो गया है, इसका कुछ जीवन और जगत् से समन्वय और सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास कर रही हों।

एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोलीं—"सतीशबाबू, खंडित पात्रों के इन अनेक छोटे-छोटे प्राणवान टुकड़ों में मैं अपना, अपने से सम्बन्धित अनेक परिचितों का और अपने नित्य के बनने और बिगड़ने, रोने और हँसने के विश्व का प्रतिबिम्ब देखने की चेष्टा कर रही थी। पात्रों के टूटने का मुझे ज़रा भी ग़म नहीं है सतीशबाबू, युग-के-युग टूट कर इसी प्रकार बिखर गये। मैं सोचती थी—क्या कहीं, किसी स्थल पर, फिर वे जुड़े भी? जीवन और प्राण विराग और वियोग में ही खण्डित होते जायँगे, या कहीं—किसी सुदूर प्रान्त में—अन्तरिक्ष के किसी कोने में राग और नैसर्गिक आनन्द से लिपट कर मिलेंगे भी ?"

उनकी बातें छायावादी काव्य से कम रहस्यपूर्ण न थीं। मैं कूल को न पा सका। उस असाधारण अन्तर्प्रदेश की छानबीन करना भी मेरी शक्ति से परे की बात थी। मैं मुस्करा उठा।

दिन इस प्रकार विचारों की मायानगरी में कितने बीत गये, पता नहीं। क्षण-क्षण में जो सम्बन्ध बनते और दृढ़ होते चले गये, उनकी मेरे पास न तो कोई तालिका है और न सूची ही। मैं इतने दिनों में सूर्यमुखी पुष्प की भाँति कितना और कैसा घूमता गया, इसका भी

मुझे ज्ञान नहीं। हम लोग एक दूसरे के कितने निकट आ गये, इसको तोलनेवाली जैसे कोई तुला आज तक बन ही नहीं सकी।

एक दिन जब चुपचाप बैठा विवेकानन्द के ग्रन्थ का 'माया'—सम्बन्धी अध्याय पढ़ने में डूबा हुआ था, तब भीखू चुपचाप आकर खड़ा हो गया और निर्विकार भाव से खड़ा रहा। मैंने पूछा—"क्यों? क्या है भीखू!"

"कुछौ नहीं मालिक! अइसेहे ठाढ़ि हवइ गएन!" और इतना कह कर उसने अपना मस्तक झुका लिया।

मैंने कहा—"नहीं, नहीं, संकोच मत करो। बात कहो।"

तब उसने अत्यन्त सरलता के साथ अपने लहजे में कहा—"उनका केरावा तो आप दइ दीन ह्वइहौ मालिक?"

"ओह!" कहते हुए मैंने पूछा—"क्यों, क्या किसी ने कुछ कहा?"

"नाहीं मालिक, कही को! औ फिर आपले!"

"अगर किराया न दिया जाय भीखू!"

कुछ सोच-विचार कर भीखू बोला—"हमरी तो आँखी सामने न ह्वै सकि हैं, आपकै बात हम का जानी छोटे भइया!"

भीखू की इस बात ने जैसे मुझे, समय पर, झटके के साथ जगा दिया। जी में पुनः आया—यह लेन-देन क्या है? आदान-प्रदान क्या है?···अच्छा, तो जो देना है, उससे अपने को रिक्त कर दो—रिक्त!

उसी क्षण अन्दर गया। अटैची से चेकबुक निकाली और दो सौ का चेक काट कर भीखू को देते हुए मैंने पूछा—"ठीक है न भीखू?"

"आप लोगन कै सेवा करत-करत बुढ़ाय गएन है छोटे भइया! यहु परदेसु ठहरा। जी मा आवा कि केरावा साइति जो लेट दीन गा, तो थिइ का-ते-का न स्वाचै लागैं! औ आपौ का साइति यादि न रहा

होय ! पहिले, हाँ मालिक, यहै सब ख्याल कइ कै आपते कहि दीन !" भीखू ने उत्तर दिया ।

"इसीलिए मैं तुम्हें साथ ले आया हूँ भीखू ।" मेरी बात सुनकर वह प्रसन्न हो उठा और बोला—"तउनु हम जानित है छोटे भइया, औ यहौ जानित हैं कि जब कबौं आप बाहेर जइहौ भिखुआ का भुलिहौ ना !"

चेक मैंने भीखू को दे दिया और वह उसे लेकर, प्रसन्न मुद्रा में, कमरे से बाहर हो गया ।



: ५ :

दो मिनिट पश्चात् हाथ मे चेक लिए भीखू लौट आया और सिर नीचा करके, मुस्कराहट दबाते हुए, बोला—"विइ तो यहिका लेलिही नहीं हैं छोटे भइया—बहुत-बहुत कहा, मुदा न लीन्हेंनि ! औ आपका हुवैं, अपनेहैं हियाँ, बोलाइन है।"

चेक मैंने भीखू के हाथ से लेकर जेब में रख लिया और तत्काल पुस्तक हाथ मे लिये हुए मैं श्रीमती विश्वास के यहाँ पहुँचा। वह बाहर बराण्डे में बैठी कुछ ऐसी सोहती हैं, मानो नील जल से भरे सरोवर में सुन्दर कमल खिला हुआ है। मुस्कराहट के साथ बोलीं—"आइए, इधर निकल आइए—बैठिए आराम से !" कह कर उन्होंने कुर्सी बढ़ा दी।

हाथ की पुस्तक को मैंने टेबिल पर रख दिया और चुपचाप, उन्हीं के निकट बैठ गया। अब उनकी उस मुखाकृति को जो देखता हूँ, तो सोचता हूँ—अरे ! यह क्या ? ये काली घटाएँ कैसी ? भावनाओं का यह उद्वेग कैसा ?

किन्तु शायद यह सब दृश्य तभी उपस्थित होते है, जब वर्षा प्रारम्भ होनेवाली होती है। अत्यन्त विनीत, कोमल वाणी में श्रीमती विश्वास ने कहा—"आप मुझे इतना क्यों परेशान करते हैं ? मैं तो स्वयं अपने आप में दुखी हूँ।"

मैं आश्चर्य में पड़ गया। मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"मैंने कोई अपराध नहीं किया देवी जी, यदि ऐसा कुछ अनजान में बन पड़ा हो, तो मैं क्षमा चाहता हूँ उसके लिए।"

"ओफ़्...!...आप ? आप बिलकुल नहीं समझे ! आप मुझे रुलाना चाहते हैं।"

"स्पष्ट कहिए।" मैंने कहा—"आपकी श्लेषात्मक बातें समझना

मेरे लिए कठिन है।"

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कुछ सोच-विचार में पड़ गई हैं, कुछ खोज रही हैं, कुछ ढूँढ़ रही हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई अन्धा अपना मार्ग टटोल रहा हो, खोज रहा हो—खोज में इधर-उधर भटक रहा हो।

अब वह कुछ स्वस्थ हुईं और अपने चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट लाती हुई बोलीं—"अरे, अभी चेक की ऐसी क्या जल्दी थी, सतीश बाबू! क्या मैं आपको नहीं जानती? क्या मैं आपके पारिवारिक गौरव से अनभिज्ञ हूँ? क्या मैं आपकी रुचि, संस्कृति से थोड़ा भी परिचित नहीं हो पाई? यह दो सौ रुपए की दीवार हमारे बीच क्यों खड़ी की जा रही है? इसकी क्या आवश्यकता है? यही न कि आप मेरे यहाँ ठहरने का किराया देना चाहते हैं।" और अपनी तर्जनी को हृदय पर रख कर कुछ संकेतात्मक भाषा में कहने लगीं- "लेकिन यहाँ ठहरने का किराया आप दे भी सकते हैं?" और इतना कहकर वह हँस पड़ीं।

यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"क्या मतलब? मैं समझा नहीं! दो सौ रुपये यदि कम हों, तो आप स्पष्ट कहिए, आप को क्या चाहिए! जितने दिन मैं ठहरा हूँ, उसका मुँह माँगा किराया मैं आपको दे सकता हूँ—आप हज़ार कहें, तो भी मैं दूँगा। आगे की बात दूसरी है। वह मेरी रुचि पर निर्भर है। लेकिन उस भविष्य की रुचि का सम्बन्ध भी अतीत के साथ अटूट है। अर्थात् जैसा अतीत मुझे भासित होगा, उसी के अनुरूप मैं भविष्य का निर्णय करूँगा। इस मामले में मैं किसी रहस्य को पालना पसन्द नहीं करता। मैं यथार्थ का पुजारी हूँ। गोलमाल मुझे पसन्द नहीं है। आप कृपा करके जो भी चाहें, स्पष्ट कहें।"

ये सब बातें मैं जानबूझ कर, कर रहा हूँ। मानता हूँ श्रीमती विश्वास जिस कोमल भावना से प्रेरित होकर मुझसे किराया नहीं

लेना चाहती हैं, उससे मैं अवगत हूँ। और इसीलिए मैं उससे दूर ही रहना चाहता हूँ। संसार को जैसा कुछ मैंने देखा है, पाया है, उसके अनुरूप ही मैं बनना भी चाहता हूँ। मैंने थोड़ी-सी जिन्दगी में यह अनुभव किया है, कि कोई भी कोमल भावना अपने पीछे एक रहस्य अवश्य रखती है और प्रत्येक रहस्य अपने पीछे कोई-न-कोई छिपाव, दुराव, भेदाभेद, ग्रन्थि, संकोच और कलुष अवश्य रखता है। मैं श्रीमती विश्वास की कोमल भावनाओं का सम्मान करता हूँ, लेकिन उनके पीछे कोई कलुष नहीं पालना चाहता। आज यह दो सौ रुपए जो श्रीमती विश्वास मुझे छोड़ रही हैं, ऐसा भी दिन आ सकता है, जब इसके बदले में मुझे कोई ऐसी चीज छोड़नी पड़े जिसका मूल्य इन दो सौ रुपयों से कई गुना अधिक हो। तो ऐसे आपत्तिकाल के लिए मैं अभी से अपने आपको क्यों बेच दूँ ?

लेकिन मेरी बातों की शुष्कता श्रीमती विश्वास के हृदय में चुभ गयी। बोलीं—"आप बहुत व्यावहारिक आदमी हैं, यह मैं पहले न जानती थी। आप इतने कठोर व्यक्ति हैं, इसका अनुमान भी न कर सकती थी। मैं क्या कह रही हूँ, मेरे मन में क्या है, मैं क्या सोचती हूँ, मेरी समझ में नहीं आता कि आपका ध्यान इस पर क्यों नहीं जाता ? मैंने तो आपसे कहा था कि हमारे बीच किराये की कोई शर्त नहीं है, लेकिन आपने मेरी भावना का मान नहीं किया। ठीक है, दुनिया की देख में किराया बड़ी चीज है। वह अपनी जगह अपना मूल्य भी रखता है। लाइए, दीजिए चेक, मैं ले लेती हूँ। किराया देना आपका काम है, इसलिए आपने चेक काट दिया है। किराया लेना मेरा काम है, इसलिए मैं आपका चेक ले लेती हूँ। यह बात दूसरी है कि मैं इस चेक को अपने हिसाब में पड़ा रहने दूँ। इसे भुनाऊँ या ज्यों-का-त्यों डाल रखूँ। यह मेरी अपनी जिम्मेदारी है।"

चेक मैंने उन्हें दे दिया। उन्होंने ले लिया। उस समय हाथ में कोई

पर्स नहीं था। बाडिस के नीचे जहाँ वे फ़ाउन्टेनपेन लगाये रहती थीं, वहीं उन्होंने उस चेक को भी रख लिया। मैं कुछ समझा, कुछ नहीं भी। मेरे मन में आया—इस चेक को जमा करने की अवधि छै महीने है। इसके पश्चात् यदि मैं और भी यहाँ रहूँगा और किराये का भुगतान इसी प्रकार चेक से करूँगा तो वे चेकें भी अपनी छै-छै महीने की अवधि में समाप्त हो जायँगी। फिर उनका कोई मूल्य नहीं रहेगा। लेकिन जो भावना इन चेकों को कैश नहीं कराने देती, उसका मूल्य मैं कैसे चुका सकूँगा। यही सब सोच कर मैंने कह दिया—"आपकी सहृदयता और उदारता पर मुझे पूरी आस्था है और उसके लिए मैं आपका हृदय से सम्मान करता हूँ; लेकिन एक बात मुझे इस अवसर पर कहनी ही पड़ेगी कि यदि आप मुझसे किराया न लेंगी, तो इसके बदले में मैं कोई भी चीज आपको कभी नहीं दे सकूँगा और इसके लिए आपको बुरा मानने का भी कोई अधिकार न होगा। किस स्थल से मैं यह बात कह रहा हूँ और इसका मुझे कितना दुख हो रहा है,इसको व्यक्त करने के लिए मेरे पास और कोई भाषा नहीं है। आशा है, आप इसके लिए मुझे क्षमा कर देंगी।" अपने इस कथन के बाद अपनी पुस्तक हाथ में ले, उत्तर का भी अवसर न देकर मैं श्रीमती विश्वास के कमरे से उठ कर चला आया। वह कुर्सी से उठ कर बरामदे के खम्भे तक आईं और मैं जब उनके कमरे के कोने से घूम कर अपने कमरे के दरवाजे पर आया तब भी उनके शब्द मेरे कानों में गूँज रहे थे—"सतीशबाबू, जरा सुनिए। मेरी बात तो सुन लीजिए। लौट आइए—लौटिए—लौटिए···" और इसी समय मैंने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। लाइट 'ऑन' की और बिछे हुए पलंग पर चुपचाप लेट गया। कितनी देर पड़ा रहा, यह तब मालूम हुआ, जब भीखू ने दरवाजा खटखटाया और मैंने उठ कर दरवाजा खोला तो भीखू

कहने लगा—"छै बजि गे छोटे भइया। मेमसाहब नमस्ते कहा हइनि। कहेनि है कि आपकै चा ठंडी होय रही है।" मेरे मुँह से निकल गया—"जाओ, कह दो, मैं आज चाय पर नहीं आ सकूँगा।"



: ६ :

मैंने अनुभव किया—भीखू मेरे उत्तर से आश्चर्य में पड़ गया है। वह चुपचाप, अवसन्न-सा खड़ा, मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। तभी मैंने कह दिया—"जाते क्यों नहीं, आज मैं वहाँ चाय नहीं लूँगा।"

वह अब मेरे मुँह की ओर ताकने लगा और मैंने देखा उसके चेहरे पर अनायास एक प्रकार की आन्तरिक वेदना मूर्तित हो गई है। अत्यन्त धीमे स्वर में, गिड़गिड़ाहट के साथ, अपने मस्तक को इधर-उधर हिलाते हुए भीखू ने पूछा—"तबीयत तो ठीक है न छोटे भइया? सिर माँ दर्द तो नहीं है? का दाबि देई? कहौ तो मेमसाहब ते 'इसिप्रो' लै आई?"

अब वह मेरे पास आ गया। मैंने दृढ़ होकर पुनः कह दिया—"मेरी तबीयत ठीक है। चिन्ता मत करो। जाओ, चाय का पानी तैयार करो। मैं चाय यहीं पर लूँगा, उनके यहाँ नहीं। समझे?—जाओ, खड़े क्यों हो अब? साफ़ कह दो उनसे, वे नहीं आ सकेंगे। उनको अभी रुचिनाथ बाबू के यहाँ जाना है।"

भीखू चुपचाप, धीरे-धीरे, कुछ सोचता हुआ-सा बाहर जाने लगा।

इसी क्षण, स्मरण नहीं, न जाने क्या सोच कर मैंने अपना मुलायम चेस्टर उठा कर झटपट पहन लिया और चप्पलों में पैर डाल, दरवाजे से बाहर आकर जो दाहने ओर दृष्टि डाली तो क्या देखता हूँ कि श्रीमती विश्वास खड़ी हैं और मुसकराती हुई कह रही हैं—"आज बहुत सोये। लेकिन जान पड़ता है, नींद पूरी नहीं हुई।" फिर एक ठंडी साँस को दबाती हुई-सी कहने लगीं—"बड़े भाग्यशाली हैं आप सतीशबाबू, जो ऐसी मीठी नींद आपको आ जाती है। आइए, आइए मैं तो आपको लेने के लिए आई थी।"

अब मैं क्या करूँ ? श्रीमती विश्वास खड़ी हैं और मैं उनको क्या उत्तर दूँ ?—और थोड़ी देर बाद जब भीखू मेरे कमरे में आयेगा और मेरी विवशता पर हँसेगा, तब उसको क्या उत्तर दूँगा ?

श्रीमती विश्वास ने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और कहा—"इसे आज मैं देखूँगी। आइए, चलिए, देर न कीजिए, चाय इन्तजार कर रही है।"

आगे-आगे श्रीमती विश्वास और पीछे-पीछे मैं। मुझे लगा जैसे किसी कुशल धनुषधारी ने अपने लक्ष्य पर सँभाल कर तीर छोड़ दिया हो। ज्योंही मैं उनके कमरे में पहुँचा त्योंही मैं क्या देखता हूँ कि चाय के साथ कई मधुर और नमकीन चीजें तश्तरियों में सजी और पारदर्शक झीने वस्त्र से मण्डलाकार ढकी हुई हैं। आश्चर्य के साथ मेरे मुँह से निकल गया—"अरे, आपने तो यकायक बहुत-सी चीजें बनवा डालीं, लेकिन आज मेरा पेट बहुत खराब हो रहा है। आपको पता ही है कि शरीर के साथ, उसके धर्मों के साथ मन के धर्म का कैसा अटूट सम्बन्ध है। मैं आज कोई चीज नहीं ले सकूँगा। मुझे विवश न कीजिए। घूमने के लिए बाहर निकला था, पर आपके आग्रह को टाल न सका और साथ चला आया। आपको यह भी पता है कि मैं कोई तपस्वी ऋषिकुमार नहीं हूँ। स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों के साथ मेरी बड़ी प्रीति है और उससे भी बड़ी प्रीति अपने स्वागतार्थी से है, किन्तु जहाँ कर्तव्य का क्षेत्र है, संयम की माँग है, वहाँ मेरी व्यक्तिगत प्रीति और प्रतीति का कोई महत्व नहीं। शुरू कीजिए, मेरे पीछे आप क्यों कष्ट उठा रही हैं। मैंने कह दिया न, मैं कुछ ले न सकूँगा। सच मानिए, बिलकुल इच्छा नहीं है, पर इसका यह अर्थ नहीं है, मेरी सब इच्छाएँ मर चुकी हैं। इच्छाएँ सब ज्यों-की-त्यों सतर्क और जागरूक हैं। केवल पेट के धर्म का ध्यान रखना पड़ रहा है।"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास का सुमन-शोभन मुख जैसे पीला पड़ गया हो। ज्योतिर्मय कान्ति क्षीण हो गई हो। बोलीं—

"पता नहीं मेरे भाग्य में क्या लिखा है ! न मुझे ही इस बात का ध्यान आया कि आपकी खोज खबर लूँ और न आप ही ने यह कहला दिया कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है। आपको पता होना चाहिए कि तीन बजे से बैरा इन चीज़ों की तैयारी में लगा हुआ है। अब जब सब चीज़ें तैयार हो गईं, तब आप फरमा रहे हैं, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। कुछ समझ में नहीं आता।" और इतना कहकर उन्होंने पुकारा—"रामू, सब सामान ले जाओ। साहब की तबीयत ठीक नहीं है, जिनके लिए मैंने यह सब तैयार कराया था, इसलिए मेरी तबीयत भी किसी चीज़ को खाने की नहीं रह गई। सब लोग आपस में बाँट कर खा लो। यह भी अच्छा है कि धीरे-धीरे सब मालूम होता जा रहा है।"

रामू अवाक् हो उठा। कोई उत्तर न देकर वह चुपचाप खड़ा रहा। एक बार उसने श्रीमती विश्वास की ओर देखा, दूसरी बार मेरी ओर; इतने में फर्श से एक पहाड़ी चिड़िया आकर दरवाज़े के किवाड़ के ऊपर जा बैठी और बोली, 'टि···टिउ···टि···टिउ।' अब तक मैं संयम के साथ चुपचाप बैठा हुआ था। लेकिन पक्षी की इस बोली को सुनकर इस दृश्य में निहित प्रकृति के व्यंग्य पर हँसी आ गई। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे कोई व्यंग्यकार श्रीमती विश्वास की सारी संयोजना और समस्त अनुष्ठान पर अँगूठा दिखा कर कह रहा हो, 'कहिए, क्या राय है!'

मैं मानता हूँ इन्हीं अवस्थाओं में, ऐसी ही परिस्थितियों में मैं इस निखिल सृष्टि का एक अत्यन्त दुर्बल प्राणी बन जाता हूँ। मैं किसी के साथ कोई कठोर व्यवहार करूँ, तो भले ही कर लूँ, मेरे रहते मेरे किसी सम्बन्धित आत्मीय स्वजन के साथ दुर्व्यवहार करे, व्यंग्य करे, अँगूठा दिखाए, चुनौती दे, तो मैं अपना रोल, अपनी दृढ़ता, सर्वथा भूल जाऊँगा। एकाएक मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे पहाड़ी पक्षी का वह 'टिटिउ' · 'टिटिउ' कथन श्रीमती विश्वास के लिए नहीं, सीधे मेरे लिए

है और मैं उसके इस चैलेञ्ज को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

इस मनोमन्थन का परिणाम यह हुआ कि मेरे मुँह से निकल गया—"जाओ पंछी, तुम्हारा काम पूरा हो गया। इच्छा न होते हुए भी मैं चाय पी लूँगा। और रामू, देखो, दूसरी चाय बना लाओ। यह ठंडी हो गई जान पड़ती है।" श्रीमती विश्वास की ओर देख कर मैंने कहा—"मेरी तबीयत अब ठीक हो गई है। देवी जी, मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया।"

श्रीमती विश्वास की मुख श्री ज्योतिर्मय हो उठी। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—"मिस्टर सतीश, आज मैंने समझा कि आपको समझना उतना सरल नहीं है, जितना मैं पहले समझती थी।" इतने में उस पहाड़ी पक्षी ने एक बार फुदक कर अपना रुख यकायक बदल दिया। बोला—'टिटिउ···टिटिउ' और पुनः फुर्र कर उड़ गया।

आज रात बड़ी देर तक रेडियो सुनता रहा। फिर भोजन का कार्य-क्रम चला। शाम की चाय मैंने श्रीमती विश्वास के यहाँ पी ली थी। इसलिए फिर रात का भोजन श्रीमती विश्वास का मेरे ही यहाँ हुआ। बहुत नाहीं-नूहीं करती रहीं। मैंने कहा—"देखिए, देवी जी, मैंने पहले ही कहा था आपसे कि मैं प्रतिदान नहीं हूँ। उत्तर नहीं हूँ। समाधान नहीं हूँ। आदान हूँ, प्रश्न हूँ और समस्या भी हूँ। आप चाहें तो मेरी इस बात पर हँस सकती हैं। क्योंकि मेरी जगह पर कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो अपने को प्रश्न न कह कर आपको कहता। अपने को समस्या न बना कर आपको बनाता। लेकिन निश्चय जानिए मैं अपने अन्दर आपके प्रति इस प्रकार का कोई कुतूहल, विस्मय और प्रश्न नहीं देखता। मुझे क्षण-क्षण पर यही जान पड़ता है जैसे आप एक सामान्य नारी हैं, एक साधारण प्रकृति हैं और प्रश्न तो आप हैं ही नहीं। केवल उत्तर हैं। लेकिन जब आप उत्तर हैं, तो मुझे प्रश्न होने में कोई आपत्ति नहीं।"

श्रीमती विश्वास, कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो क्रोध से उठ कर खड़ी हो गई हों। पर फिर आश्चर्य से हँसती-हँसती बोलीं—"ओह ! नो, नो, नेवर, नाट ऐट ऑल। आय एम नाट योर आन्सर—डेफ़िनेटली नाट !" मैंने कहा—"सार, यू डिडिन्ट फॉलो मी ! ···अ···मेरा मतलब यह है कि यह आपको मानना ही पड़ेगा, कि ऑफ़्टर ऑल, यू आर ए वोमन ! फ्राम दि बाटम ऑव दि मोर्निङ्ग अर्थ एण्ड टु दि एन्ड ऑव दि ईव्निंग होराइजन।···अ···अ···आप इन्कार कर सकती हैं इस बात से कि आप नारी नहीं हैं ? और मैं, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ेगा, मैं इन्कार कर सकता हूँ, इस बात से कि मैं पुरुष नहीं हूँ ? मैं फिर आपसे पूछता हूँ, अगर आप मुझे अपने यहाँ चाय पर बुलाती हैं, तो क्या मुझको यह अधिकार नहीं देतीं कि मैं आपको 'डिनर' पर बुलाऊँ ? बोलिए, चुप क्यों हैं ? आपने ही तो कहा था, नहीं कहा था कि, प्रत्यक प्रतिदान एक आदान होता है ? मुझको जब आप निमन्त्रण देती हैं, तब क्या यह 'अण्डरस्टुड' नहीं है कि मेरा निमन्त्रण आपको पहले से स्वीकार है ?"

श्रीमती विश्वास सोफ़े के कोने में बैठी थीं। मेरी बात सुन कर, यकायक पैर फैला कर लेट रहीं। साड़ी का महीन, झीना पट उन्होंने अपने मुँह पर डाल लिया। फिर करवट बदल ली और दो ही मिनट में सिसक-सिसक कर रोने लगीं। मैं ऐसी दशा में क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ तय नहीं कर सका। रामू एक बार दरवाजे के बाहर आया और लौट गया। दो मिनट बाद भीखू भी आया, खड़ा हुआ, ठिठुका, और चला गया।

यकायक मैं उठकर खड़ा हो गया और कमरे के एक ओर से दूसरी ओर तक टहलते-टहलते मुझे कहना पड़ा—"आपके आँसुओं को मैं बहुत प्यार करता हूँ। आपको शायद मालूम नहीं है, जब मैं सात बालटियों से स्नान करता हूँ, तब अक्सर सोचता हूँ, मैं श्रीमती विश्वास

के आँसुओं से नहा रहा हूँ। आप विश्वास करेंगी ? मैं आँसुओं का बड़ा आदर करता हूँ। जब मैं अनारदाने के रस का गिलास दोपहर के बाद चार बजे ग्रहण करता हूँ, तब मैं यह नहीं भूलता कि संसार के समस्त दुखियों, पीड़ितों, अनाश्रितों के आँसू एक-एक घूँट के रूप में, मैं पी रहा हूँ, पीता जा रहा हूँ। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ, काश, आप यह जान सकतीं, कि दुःख क्या चीज है। काश, आप यह समझ सकतीं, कि आपके इन आँसुओं का मूल्य कुछ नहीं है। केवल भावना के आँसू हैं, प्रमाद के आँसू हैं और इस प्रमाद को आपने स्वयं अपने हठ और दुराग्रह से पाल रक्खा है। आप एक सुसभ्य नारी हैं। आपके पास पैसा है। शिक्षा भी आपने उच्च कोटि की पाई है। संस्कार आपके एक सीमा तक यथेष्ट ऊँचे हैं। फिर मैं आपसे पूछता हूँ, आपको दुःख किस बात का है ? आप क्यों रोती हैं ? संसार को पीड़ित समाज के आँसू पोछ कर आप अमृत के झरने में स्नान क्यों नहीं करतीं ? आपको अपने वर्तमान पर प्रसन्न होना चाहिए, गौरव करना चाहिए। आपको शायद न मालूम होगा, कि मैं इस विश्वास का आदमी हूँ कि प्रसन्नता ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य है। उठो विश्वास की देवी, उठो, देखो आज सारा संसार तुम्हें प्रसन्न देखना चाहता है।"

रेडियो खुला हुआ था और एक नाटक के अन्त में गायिका गा रही थी :

"मैना बोल गई चिरय्या कगद लिए जाय,
मैना बोल गई।"

क्षण भर बाद श्रीमती विश्वास उठ बैठीं। अब उनकी आँखों में आँसू न थे, पुलक हास का कम्पन था। अधरों पर आँसुओं की बूँदें न थीं, मधुर हास की क्रीड़ा थी। मैंने कहा—"अब मैं जाता हूँ। आपको सायंकाल का भोजन मेरे यहाँ करना ही पड़ेगा।"

आज अचानक रात को दो बजे मेरी आँख खुल गई। सामने की

खिड़की खुली रह गई थी। उससे बहुत ठंडी, बर्फ़ीली हवा आ रही थी। बड़ी ग़नीमत हुई कि मेरा बदन कम्बल से ढका हुआ था, अन्यथा बड़ा गड़बड़ हो जाता। लाइट 'ऑन' कर ली थी। बड़ी देर तक नींद नहीं आई। विचारों के बवण्डर से पुनः बुरी तरह घिर गया। कमरे की छत पर लगी चाँदनी की पेंटिंग देखता-देखता मैं सोचने लगा :

जीवन का यह भीषण आवर्तन कैसा? भयंकर ज्वालामुखी का यह रौद्ररूप कैसा? उदधि-गर्जन का यह पीड़ाकुल, दुर्दान्त आवेग कैसा? यह सब क्या है, स्वगत ही प्रश्न कर बैठा मैं! मैं··· ? और मैं अपने आपसे, बल्कि अपने अन्दरवाले निरीह प्राणी से प्रश्न कर बैठा—यह सब क्या है सतीश? चल-चित्र देखने के पूर्व जिस प्रकार पात्रों के नाम चक्कर काटते, नाचते दृष्टि के सामने अक्षर के साथ, साक्षात स्वरूप बन कर खड़े हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरी दृष्टि के सामने भी जैसे नियति ने लिख दिया···सं···यो···ग···!

मेरे जी में आया—जीवत-क्षेत्र में प्रेम के दो मार्ग स्पष्ट दिखते हैं—संयोग और वियोग! प्रिय-मिलन में हृदय का एक साधारण-सा बूँद जैसे विशाल सागर का रूप धारण कर लेती है, इसकी कल्पना तो कोई कवि ही कर सकता है; किन्तु अप्रियमिलन से हृदय की वह एक बूँद संघर्ष के अंगारे में ठीक उसी प्रकार आत्मसात कर ली जाती है, जैसे बालुका-प्रान्त में पड़े छींटे। इसका व्यक्तिगत अनुभव मैं जीवन में कर चुका हूँ। इस स्थल पर मैं यह निश्चय नहीं कर सका, श्रीमती विश्वास के निकट मैं प्रियमिलन की किस शृङ्खला की कड़ी के रूप में हूँ।

ज्ञान और विवेक के पारदर्शी यन्त्रद्वारा रहस्यों के उन अनेक छोटे-छोटे पर्तों को देखने की चेष्टा में मैं लग गया।

इधर धीरे-धीरे श्रीमती विश्वास में कुछ परिवर्तन मैं स्पष्ट देख रहा था। जैसे हिस्टीरिया के 'फ़िट्स' आते हैं,वैसे ही दौरे, वैसे ही 'फ़िट्स'

श्रीमती विश्वास के वार्तालाप में आने लगे। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे कुछ वार्तालाप वे मन-ही-मन कर रही हैं और फिर अकस्मात बीच से, प्रत्यक्ष रूप में, बोल उठी हैं। आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। सहसा वह बोल उठीं—"ओह, सतीशबाबू, आप क्या घबरा गये? नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। हाँ, हाँ, बैठिए, भगिए नहीं, डरने की आवश्यकता नहीं। आप, सच, कुछ नहीं समझते, कुछ। मैं समझा दूँगी, सब··· ?"

मैं जो इस प्रकार बीच में ही उठकर चलनेवाला था, यकायक फिर संभल कर बैठ गया।

उन्होंने कहा—"सतीशबाबू, मैं अकेली हूँ, नितान्त, बिलकुल! आप देख ही रहे हैं। मेरे आगे-पीछे शायद कोई है, मैं नहीं जानती! नहीं, नहीं, मैं क्या कह गई! मैं क्या करूँ? कुछ दिमाग ही ऐसा भावुक और चंचल बन गया है।"

"इस क्षण आप कैसा अनुभव करती हैं?"—जाने क्यों मैं उनसे यह प्रश्न कर बैठा—"मेरी यहाँ इस प्रकार उपस्थिति आपको कैसी लगती है?"

अरुणिम ओठों पर एक मुस्कराहट की रेखा। प्रसन्नता से खिल कर उन्होंने कहा—"अब निश्चय ही अपने आपमें, अपने निकट, मैं एक वजन-सा अनुभव करती हूँ।···बाल-बच्चे हैं नहीं, पति···आह···!" इस कथन के साथ उनकी उस अल्हड़ अँगड़ाई का अर्थ मैं नहीं समझ सका। मैंने कह दिया—"तब तो निश्चय ही मैं वजन बनकर आपकी मानसिक शान्ति में बाधा डाल रहा हूँ।"

"भगवान् के लिए ऐसा न सोचिए, ऐसा न कहिए, मैं अपने को हल्का पाती हूँ।" और इतना कह कर उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी और कुछ विचारमग्ना-सी प्रतीत हुईं।

मैंने उनकी विचार-धारा को रोकते हुए कहा—"अच्छा, आज्ञा दीजिए, फिर दर्शन करूँगा।"

"अभी तो मैं आपसे और बातें करना चाहती थी, परन्तु यदि मन पर कुछ दबाव पड़ता हो, तो फिर सही ! लेकिन हाँ, सतीशबाबू, यदि सन्ध्या को आप दर्शन नहीं देंगे, तो रात्रि को निद्रा का आना दुर्लभ हो जायेगा।"

"नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ! अवश्य दर्शन करूँगा।"

× × ×

वहाँ से आकर कमरे की एक कुर्सी पर बैठ गया और सोचने लगा—क्या सच वहाँ बैठ कर, उनकी बातें सुनते हुए, मेरा जी ऊब रहा था ?

किसी ने कानों में कहा—नहीं, मनुष्य का यह एक ऐसा विलक्षण रोग है, जो बहुधा बहुतों को ईमानदारी से विमुख कर, उन्हें भुलावे में डालने की चेष्टा करता है। श्रीमती विश्वास क्यों बुरी लगने लगीं ? उनमें कुरूपता क्या थी ? उनकी वार्ता में अशिष्टता कहाँ थी ? उन्होंने मेरी हानि ही क्या की ?—मैं अपने आपसे पूछता हूँ—मैंने यह कह कर, कि अब आज्ञा दीजिए, मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है, फिर दर्शन करूँगा, मैं भारी हो उठा हूँ, मैंने अपने में जीवन और जगत् की कितनी महानता समेट ली ? उनके प्रति यह व्यवहार करके मने गौरव की किस चोटी का स्पर्श कर लिया ? मेरा चोर शायद अपना कार्य करने से चूका नहीं ! उसने वहाँ पर भी अपनी प्रकृति का परिचय देने में ही प्रसन्नता का अनुभव किया।

मैं सोच रहा था—मैंने यह व्यवहार करके···

इसका अर्थ तो यही है कि वह जो इतनी शीघ्रता से मेरे निकट आना चाहती हैं, मैं उसे पसन्द नहीं करता ? यानी मैं उसमें आस्था नहीं रखता ? या आस्था, रुचि और प्रसन्नता की भावना को इसलिए प्रकट नहीं करना चाहता कि वे यह अनुभव करने के लिए विवश हो जायँ, कि उनका मेरे निकट इतना मूल्य नहीं है, जितना कि वह अपनी ओर से आँक रही हैं ? तो मैं ऊपर से, कृत्रिम व्यवहार द्वारा,

जो उनके प्रति अन्यमनस्कता का भाव प्रकट कर रहा था, वह क्या पारस्परिक सम्बन्धों में घनिष्टता उत्पन्न करने के माध्यम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ? किन्तु इस पर भी मैं उनसे श्रेष्ठ हूँ, यह सोचने की कैसी अनाधिकार चेष्टा करने का मैं साहस कर रहा हूँ ? उस क्षण निश्चय ही मैंने अनुभव किया—पारस्परिक आकर्षण को तनाव, खिचाव गति देते हैं, जोड़ते हैं, शक्ति देते हैं और उनमें तीव्रता का भी सञ्चार करते हैं। मैं सोचने लगा—क्या मेरा अन्दर का स्वरूप वही है, वैसा ही है, जैसा कि संसार बाहर से, चुपचाप देख लेता है.? विकारों का यह अनन्त सागर क्या किसी क्षण प्रकट भी हो पाता है ? मेरा मस्तक लज्जा से एक बार, एक क्षण के लिए, झुक गया। फिर श्रीमती विश्वास···ललित उषाकाल की लावण्यमयी अरुणिमा, अल्हड़ यौवन की आलस्यभरी अँगड़ाई और गोधूलि-बेला की मनोमुग्धकारी सन्धि···और मैं क्या सोच रहा हूँ···

कोई बात मैं छोड़ना नहीं चाहता। छोड़ भी जाऊँ कभी तो फिर उसका याद आना मेरे लिए जैसे अनिवार्य हो गया है। अभी उस दिन की बात है जब रात को उन्होंने मेरे यहाँ भोजन किया था। भोजन के समय उनका 'रोल' बिलकुल 'सबमिसिव' था। मैंने जिस-जिस चीज के लिए आग्रह किया, वह उन सबको बराबर ग्रहण करती रहीं। एक बार तो उन्होंने यह भी कह डाला—"मैं आज होश में नहीं हूँ। ज्यादा खा जाऊँ और बीमार पड़ जाऊँ, तो आप सँभाल ही लेंगे।" मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो यह कोरा शिष्टाचार है। मुझको प्रसन्न करने के लिए वह शायद ऐसा कह रही हैं। लेकिन वास्तव में बात ऐसी ही थी।

दूसरे दिन वह सबेरे अपने उठने के समय पर भी सोती रहीं। वैसे साधारणरूपसे, साढ़े पाँच बजे वे उठ जाती थीं। दूसरे दिन जब सबेरे मैंने भीखू से पूछा—"मेमसाहब क्या कर रही हैं ?" तो उसने

उत्तर दिया—"मालूम नहीं छोटे भइया ! रामू ते पूछि कै आइत है कि आखिर कौनि बात है, या अबै तक घुमिहीं रही हैं ?" थोड़ी देर बाद मालूम हुआ—वे अभी तक नहीं उठी हैं। और तुरन्त रामू ने कहा—"सरकार जान पड़ता है तबीयत कुछ अलील है। आपको बुलाया है।"

रामू का उत्तर सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। थोड़ी चिन्ता भी हुई। चिन्ता की बात ही है। मेरे यहाँ भोजन करने के बाद कोई अतिथि यदि सबेरे अस्वस्थ हो जाय, तो अपने यहाँ भोजन कराने की जिम्मेदारी पर आँच आना स्वाभाविक हो जाता है।

श्रीमती विश्वास के यहाँ पहुँच कर जो कुछ मैंने देखा उसका प्रभाव मेरे मन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। दाईं करवट लिए हुए मच्छरदानी के अन्दर लेटी थीं। सिरहाने की ओर लगभग डेढ़ फ़ीट चौड़ा और चार फ़ीट लम्बा दर्पण लगा हुआ था। सिर के केश पर कुछ झीनी साड़ी का छोर,ग्रीवा पर पड़ी हुई सोने की बहुत पतली जंजीर और ब्लाउज का किनारा, किनारे का प्रतिबिम्ब, शरीर की वास्तविक रूपशोभा के साथ मिल कर जो दूना प्रभाव डाल रहा था, उसको देखकर मैं थोड़ा मुग्ध हो गया। परन्तु मैं अभी खड़ा ही हो पाया था कि श्रीमती विश्वास ने आँखें खोल कर कहा—"आइए, सतीशबाबू, भगवान् की बहुत बड़ी कृपा है कि आप अपने कमरे में मिल गये। मैं तो सोच रही थी कि आठ बजे से पहले आप क्या लौटेंगे ? क्या आज घोड़े पर सैर करने के लिए नहीं निकले ? अरे, आप अभी तक खड़े ही हैं ?" यकायक इलेक्ट्रिक कॉलबेल के लट्टू पर हाथ पड़ गया और रामू तुरन्त सामने आ गया। बोलीं—"साहब को चाय लाओ। और देखो, ड्राईफ़्रूट्स की केवल एक तश्तरी लाना। मैं सिर्फ़ चाय लूँगी।...जाओ..."

रामू चला गया। मैं उनके पास कुर्सी डाल कर बैठ गया। उन्होंने अपनी बाईं कलाई मेरे आगे बढ़ा दी। बोलीं—"फ़ीवर तो नहीं

है ? ज़रा देखिए, लेकिन हरारत ज़रूर है। थर्मामीटर तो आप लाये न होंगे, ख़ैर ! टेबिलपर वह पड़ा है, लेकिन ज़रूरत क्या है उसकी ? आपको इतना ज्ञान तो होगा ही। यन्त्र आख़िरकार यन्त्र ही है। मन के भीतर का यन्त्र तो नहीं हो सकता न ! देखिए, मेरी नाड़ी पर अपनी उँगलियाँ रखिए। संकोच मत कीजिए।"

इतना कहते-कहते उनका कण्ठ आर्द्र हो उठा और दो मोती जैसे आँसू भी नयनों की कोरों पर झलक पड़े।

इतने में चिक का परदा उठा और रामू चाय की ट्रे ले आया।

इसके पश्चात् लगभग बीस मिनट तक मैं उनके यहाँ रहा, लेकिन उन्होंने कोई बात कही नहीं। एक मौन, चिरव्यापक मौन ही उस कमरे में स्थिर बना रहा। आज ऐसा जान पड़ता है जैसे श्रीमती विश्वास बीमार नहीं हैं। बीमार मैं हूँ। श्रीमती विश्वास तो डाक्टर हैं। उन्होंने मेरे इन्जेक्शन लगा दिया है—बिलकुल नए प्रकार का इन्जेक्शन—आँसुओं का !



: ८ :

एक सप्ताह व्यतीत हो गया, किन्तु इन्जेक्शन का असर जा नहीं सका। सब कार्यक्रम पूर्ववत् चल रहा है। दूसरे दिन श्रीमती विश्वास को बारह बजे ज्वर आ गया था। पहले टेम्परेचर सौ प्वाइन्ट चार रहा; रात को आठ बजे एकसौ एक प्वाइण्ट आठ रहा और दूसरे दिन प्रातःकाल साढ़ेछः बजे निन्यानवे! कई दिन तक लगभग यही क्रम चलता रहा। डॉक्टर बी० एन० दास इस मौसम भर के लिए यहीं आ गये हैं और 'सेवाय' होटल में ठहरे हैं। वे नित्य आते, देखते और औषधोपचार की व्यवस्था कर जाते। उन्होंने बताया—"इन्फ़्ल्युएञ्जा हो गया है। फ़िकर की कोई बात नहीं है।" मुझे भी जान पड़ा उस दिन डिनर का 'फिनिशिंगटच, दहीबड़े और शायद लौकी के रायते से हुआ था। और मेरे बहुत आग्रह करने पर भी अन्त में गरम-गरम चाय लेने के बजाय उन्होंने ठंडा पानी ही ग्लास भर कर पी लिया था। हम लोग बँगले के लान पर थोड़ी देर घूमते भी रहे थे। मेरे बदन पर चेस्टर था, किन्तु उनके बदन पर एक पश्मीने की चादर! शायद भीतर वे कोई गरम वस्त्र नहीं पहने थीं। मैंने कहा भी था—"देखिए इस तरह आप सरदी खा जायँगी।" उत्तर में मुसकरा कर वह बोली थीं—"मुझे कुछ नहीं होने का। जुकाम तक तो मुझको कभी होता नहीं।"

उनकी सभी बातें मेरे हृदय-पट पर पुराने चाल की छपी हुई पोथियों की तरह, कागज के अलग-अलग पन्नों में, मोटे टाइप में, छपी हुई आज तक अंकित हैं। ऐसा जान पड़ता है, हम एक संयोग लेकर यहाँ आये हैं और वियोग लेकर यहाँ से जायँगे। फिर सोचता हूँ—क्या व्यापक रूप से समस्त मानव-परिवार का यही परिणाम नहीं है?

सब अस्त-व्यस्त हो गया है। रात दिन सोचना, सोचना! अहर्निशि श्रीमती विश्वास, श्रीमती विश्वास!

'''सरोवर के जल को ढक रखनेवाली काई की तह को जिस प्रकार तीव्र वायु का वेग एक ओर समेट कर रख देता है और स्वच्छ जल चमक उठता है, आकाश पर छाये बादलों की चादर को जिस प्रकार पछुआ हवा का एक झोंका जाने कहाँ उड़ा ले जाता है और नील गगन खिलखिला कर हँस पड़ता है, उसी प्रकार और ठीक वैसे ही ज्ञान की अदृश्य वायु ने मेरे पंकिल मस्तिष्क के विकार को धोकर स्वच्छ बना दिया।'''

यद्यपि उस क्षण तक विचार करते-करते इतना थक गया था, कि बस यदि निकट-मन में, मस्तिष्क में, और शरीर के प्रत्येक अंग में— कोई समस्या न होती, तो निश्चय ही निद्रा की शरण ले लेता। परन्तु नहीं, निद्रा से भी अधिक गर्विता होती है, मानवात्मा की वह अमर भूख वह अमर क्षुधा, वह अनिर्वचनीय विश्लेषण वैचित्र्यदृष्टि, जो निरन्तर लहू की धमनियों में चक्कर लगाती मन पर अपना प्रभाव, आधिपत्य-स्थापित कर लेती है और निद्रा को धक्के देकर शरीर से बाहर निकाल देती है। यह चिन्ता'''?'''जो शरीर के अणु-अणु को ध्वस्त करती है, आनन्द को आत्मसात करती है और जीवन के उल्लास को क्षार बना कर'''

नींद वहाँ न थी—बेचैनी और अस्थिरता, मानसिक उथल-पुथल और विकल जागरण! उठकर मैंने खिड़की से बाहर की ओर दृष्टि दौड़ाई—विस्तीर्ण नीरव पर्वत-प्रान्त अपने में खोया हुआ, किसी समाधिस्थ योगी की तरह; नीरवता से खेलती उपत्यकाएँ, आदृष्टि-पर्यन्त फैली गंगाजल-सी पवित्र धवल चन्द्रिका, निस्सीम आकाश और रहस्य के अवगुण्ठन से झाँकता मेरा कौतूहलमय वातावरण!

पर्वत-उपत्यकाओं ने जैसे मूक भाषा में प्रश्न किया—"सतीश! तू यहाँ क्यों आया?" श्वेत, धवल राका ने जैसे ठहाका मार कर पूछा—"तू यहाँ से क्या ले जायेगा, सतीश?" आकाश ने मानो गरज कर

कहा—"ऐ सौंदर्यद्रष्टा, ऐ रस-लोलुप ! सब झूठ, सब नाशवान, यहाँ तक कि तू और श्रीमती···भी !"

मैं काँप उठा। शरीर में रोमाञ्च हो आया। लगा, पक्षी बोलने लगे हैं। सूर्योदय होने वाला है। किन्तु जीवन का सूर्योदय··· ? कैसी अनोखी और उन्मत्तकारी कल्पना है !

ज्योंही मैंने अपनी दृष्टि घुमाई और कुर्सी पर बैठने को हुआ, कि पाया भीखू मेरी स्थिति का अध्ययन कर रहा है। उसने छूटते ही पूछा—"का बात है छोटे मालिक ?"

किञ्चित् संकोच के साथ मैंने उसे उत्तर दिया—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है भीखू !"

"जानि तो अइसै परत है छोटे भइया !"

"नहीं भीखू, नहीं···सोचता यह था···" अब आगे ऐसी बात क्या कहूँ, जो भीखू को सन्तुष्ट कर दे और स्थिति के भी अनुकूल हो, यह सोचने लगा।

भीखू ने कहा—"का घर कै यादि···"

मैं सोच रहा था, क्या उत्तर दूँ। इसी क्षण मेरे अन्दर विवेक की फिर एक चपला-सी चमक गई और जी में आया कि जब मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के गोपनीय यथार्थ को स्पष्ट नहीं करता, नहीं कहना चाहता, और बाह्य परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को ढाल कर तुच्छ स्वार्थ-साधन की चेष्टा करता है, तो ऐसी स्थिति का कथन ही झूठ संज्ञा के विशेषण से विभूषित किया जाता है,···अब मैं समझ सका हूँ—यथार्थ और प्रकृत रूप में झूठ क्या है। क्या होता है और सत्य से वह कितने सम्बन्धित होते हुए, कितनी दूर है। सत्य के समक्ष वह पंगु बना, आहत-सा, अविभूत-सा और खंडित-सा पड़ा है।

मैंने भीखू को बरगलाया। कह दिया—"भीखू, किसी ने कितनी सुन्दर बात कही है, कि जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। यहाँ, यद्यपि

पहाड़ियों का स्वर्गसौंदर्य है, किन्तु अपने शहर की घोर कुरूपता, गन्दगी और जनकोलाहलपूर्ण वातावरण जाने क्यों अच्छे लगते हैं।"

"तौनु तो हुई है छोटे भइया ! देखौ न, हियाँ का नहीं है ? पर जानौ कुच्छु नहीं है।"

भीखू मुस्करा पड़ा। बड़े धैर्य और बड़े साहस के साथ उसने इतना इसलिए कह डाला कि मेरी असंतुलित मानसिक स्थिति को बल मिल जाय, कुछ शक्ति मिल जाय और कुछ सहानुभूति भी ! इस परदेश में मैं जो इस प्रकार एकाकी बन गया हूँ, गम्भीर हो उठा हूँ, उसकी प्रतिक्रिया भी समाप्त हो जाय।

भीखू से मैंने कहा—"अच्छा खैर, यह तो चलता ही रहेगा भीखू ! आज का अखबार तो ले आओ।"

वह समाचार-पत्र दे गया और मैं उसे देखने लगा।

अब सुन रहा हूँ, फूट-फूट कर, निकट की जो सहस्त्रों योजन की दूरी है उसे तय करके स्वर आ रहे हैं और मन-प्राण में रस सञ्चार कर रहे हैं, कुछ माधुर्य हृदय में घोल रहे हैं और एक ऐसा सम्मोहक मन्त्र फूंक रहे हैं, जो सहज ही मुझे अपने को विस्मृति की गोद में सुला देने के लिए पर्याप्त हैं।···और कस्तूरीमृग, अपनी ही मादकता में विभोर जो सरलता से शिकारी, आखेटक के हाथ लग जाता है···

और फिर यह स्तवन गीत, यह स्तव संगीत, किन्तु किसके लिए, किस आराध्य देव को प्रसन्न करने के लिए ? किसकी चरण-रज अपने प्रशस्त भाल पर धारण कर अपने जीवन को पुनीत, कृतार्थ बना लेने के लिए ? कैसी अमर साध है ? कैसी अतृप्त पिपासा है ? कैसा महान् उत्सर्ग है ?

···फिर···लो फिर स्वर आये···

स्वर क्या हैं मानो किसी वाद्य-यन्त्र से निकले स···र···ग···म के मीठे, हृदय-स्पर्शी बोल।

और वाद्ययन्त्रों के जैसे अनेक सम्मिलित स्वरों के साथ मेरे पद की ध्वनि पहले धीरे, फिर कुछ तीव्रता लिए और फिर और अधिक तीव्रता के साथ मेरे चारों ओर—कानों के निकट आ—गूँज कर वातावरण में बिखर गयी : फैल गयी ! जो मेरे अन्दर आनन्द का गुञ्जन हुआ, वही जैसे मन की आँखों ने चारों ओर सम्पूर्ण विश्व में थिरकते हुए पाया। लगा, जैसे व्यक्ति के हृदय का आनन्द ही उसे विश्व में आनन्द देने अथवा देखने की अनुभूति पैदा करता है। तो सच, आनन्द बाहर से नहीं आता, उसकी सृष्टि अन्दर से होती है ?

किन्तु कितनी करुणा है ? कितना दारुण्य है और है युग-युग की संत्रस्त वेदना की कैसी कठोर अभिशप्त छाया···?

टेक की पंक्ति को पुनः दोहराया गया—"श्यामसुन्दर अजहूँ नहिं आये···"

फिर गीत आगे बढ़ा और मैं उसकी भावना को, उसकी गति को पकड़ने की चेष्टा कर रहा हूँ :

"दीप की ज्योति उदास लगति है,
तारागण सब गगन बिलाये ।
अरुण शिखा बोलत है कब सों,
फिरत न पहरू पथिक मग धाये ।
कमलन के मुख हिलन चहत हैं,
फूल कुमुदिनी के मुरझाये ।"

और सब गीत पूरा हो गया। मैं कुछ चिन्ताकुलयेसा, भूलुण्ठितसा, काष्ठवत मूक, मौन सोचता रहा : "श्यामसुन्दर अजहूँ नहिं आये···"

कौन श्यामसुन्दर ? कब आने का वचन दे गये थे ? अभी तक क्यों नहीं आये ? क्या वह भी मनुष्य हैं या कुछ और ? और यदि कुछ और हैं तो क्या उनका भी व्यवहार साधारण मनुष्य जैसा ही···?

बार-बार स्वर ध्वनित होते और गूँजते थे—"श्यामसुन्दर अजहूँ

नहिं आए···?"

उन्हें आने की ऐसी क्या आवश्यकता ? जिसे आवश्यकता हो, वह प्रतीक्षा के सुखमय क्षणों की गणना करता रहे और अपनी प्रतीक्षा की साधना और तपश्चर्या को सफल बनाने का मोह पालता चले !··· उन्हें नहीं आना था, नहीं आए, नहीं आना है, नहीं आयेंगे ! ··· क्योंकि उनको पड़ी क्या है ? क्योंकि उन्हें क्या आवश्यकता ?···क्योंकि वे तो···श्यामसुन्दर हैं न ?

वह और कोई नहीं थीं, थीं वही श्रीमती विश्वास, जो संगीत के महासागर में स्नान कर अपने को हल्का कर रही थीं, अपनी जीवन की वेदना की उस अन्तिम बूँद को भी सागर को सौंप कर छुट्टी पा लेने की चेष्टा कर रही थीं।

× × ×

जीवन के विस्तृत क्षेत्र में फैली चन्द्रिका पर, करुणा की, धूमिल छाया की, चादर पड़ने लगी। शेफ़ाली, जैसे खिलते-खिलते ही तुषार का कोप-भाजन बन गयी। कुशल बगुले ने जैसे कल्लोल का आनन्द लेती मछली को अपने मुँह के अन्दर कर लिया हो।

मैं बड़े सोच में पड़ गया था—क्या वे स्तव संगीत की डोर को—अपनी ध्वनि द्वारा, आत्मा में मिलन का दृढ़ संकल्प भर कर—अपने लक्ष्य तक इस प्रकार फेंकना चाहती हैं कि जब आराध्य, उपास्य इनकी 'सुधि-बुधि' बन जाय, इन्हें अपने में पाले, तब उसी संगीत की डोर का सहारा लेकर या तो आराध्य देव इनके पास तक आ जायँ या वे स्वयं ही वहाँ पहुँच कर उसकी चरण-रज स्पर्श कर लें ?

किन्तु कैसा भ्रम है ? कैसी मृग-मरीचिका है और मिलन का कैसा उत्कट, भावनाशील मोह ?—और वह केवल उन्हीं का मोह क्यों ?···: क्या मैं स्वयं उसी मोह का शिकार नहीं हूँ ?···और फिर आज का प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक तत्वदर्शी, प्रत्येक त्यागी, यहाँ तक कि समूचा विश्व

ही, क्या मोह-माया-जाल के ताने-बाने जोड़ने में व्यस्त नहीं है ?

मोह ?···वंशीरव की मीठी, सुरीली तान भोले मृगशावकों को जाने कहाँ से खींच लाती है ! मोह ?···दीपक की मधुर-मधुर जलने वाली दीपशिखा के सौन्दर्य पर अनगिनत पतंगों के शव लोट जाते हैं । मोह ?···समर-भूमि को जानेवाले सैनिकों के लिए रणभेरी की गर्वोक्ति मरणत्योहार बन जाती है ! जीवन की यह लिप्त, अनुरक्त रखने की भावना—जो अकारण ही ममता का उद्रेक करती है, सञ्चार करती है—क्या मानव के लिए मोह के रूप में, गतिहीन छाया के रूप में, अभिशाप नहीं है ? जो भावना विध्वंस-मूलक है, सृष्टि-संहारक है, अशिव है, मोह के रूप में उसका स्वागत कैसा ? जीवन की अनेक लिप्सामयी कुटिलताएँ, कुरूपताएँ क्या मोह का गुब्बारा बन कर मानव को धरा-धाम से उठा कर, अनन्त आकाश में ले जाकर वहाँ से नीचे की ओर नहीं फेंक देतीं ? किन्तु कितना मधुर एवं क्रूर आत्मसमर्पण है उस मृगशावक का, उस पतंगे का और उस सैनिक का भी··· किन्तु··· मोह···अपने स्थूल रूप में जीवन का क्षणिक, क्षुद्र कल्लोल भी है। व्यस्त स्वार्थों और अस्थायी सम्बन्धों का घृणित व्यापार भी है···?

ऐं···?···तो श्रीमती विश्वास···?···और मैं···? मेरे और उनके बीच की समानान्तर रेखा बना कर जोड़नेवाली डोर···?···और मोह···?

लेकिन मैंने यह धारणा ही कैसे बना ली, कि···

जैसे घड़ी निर्विकार, निरन्तर, टिक-टिक ध्वनि के साथ अपना निस्सीम मार्ग तय करती चलती है, उसी प्रकार मेरे मस्तिष्क में विचार टिक-टिक कर रहे हैं। जी में आ रहा है–जीवन की यह गति कभी बन्द न होगी । इसके प्रवाह में जैसे कहीं, कोई अवरोध नहीं है । इसी प्रकार सृष्टि और विनाश का क्रम चलता रहेगा ।

इसी क्षण एक शीशे के बीच से वह झाँकती दिखलाई पड़ीं और जब

आँखें चार हुईं, तो ऐसा लगा, वह मुझे बुला रही हैं, आमन्त्रित कर रही हैं। किन्तु यह शायद मेरे अन्दर की अपनी बात थी, अपनी धारणा थी—और अनायास मैं विश्वास भी कर बैठा।

लेकिन मैं जैसा था, वैसा ही बना रहा।

तब जैसे उन्होंने समझा, कि मैं उनके आशय को नहीं समझ सका और उनका जी कुछ फीका हो चला।

उन्होंने कहा—"मैं समझती हूँ कि आप यहाँ आना पसन्द नहीं करते ?" उनके मुख पर करुणा-मिश्रित मुस्कराहट खेल गई और मैंने देखा—उन्होंने दरवाजे को खोल दिया है और उसके मध्य-भाग में खड़ी मुझसे बातें कर रही हैं।

मैं नम्रता-पूर्वक उठकर खड़ा हो गया और नमस्कार करता हुआ बोला—"मैं, बस, अब आपकी ओर आने ही वाला था।" और मैं उनके साथ उनके ड्राइंग-रूम में पहुँच गया।

वह जैसे घोर परिश्रम करते-करते थक गई थीं। हाँफती-सी बोलीं—"बैठ जाइए। इसी सोफ़े पर बैठ जाइए।" और उन्होंने अपने बगल में बिठला लिया।

उनका वक्ष-प्रान्त खुल गया था, जैसे वे अपने आपके प्रति बेसुध-सी थीं। फिर मेरी ओर दृष्टि दौड़ाती हुई बोलीं—"आप इस हार को देख रहे हैं ! हाँ, यह अवश्य मेरे पास अनोखी वस्तु है।" और मुझे पता नहीं, कब—और कैसे और क्यों—उनका नरम हाथ मेरे हाथ को सँभाल कर हार का स्पर्श कराने लगा। बोलीं—"पति का, नहीं, पति नहीं ..." फिर जैसे कुछ स्मरण कर आगे बढ़ीं; बोलीं—"हाँ, हाँ, उन्हीं का लाया हुआ है।" एक क्षण जाने क्या सोचकर, जैसे कुछ आवश्यक कथन तो रह ही गया, बोलीं—"देखिए, यह हीरे आपको कैसे लगते हैं ? मुझे तो बहुत पसन्द हैं। जिस समय वह इसे बम्बई से खरीदकर लाये थे, कहते थे, जौहरी ने इस हार को एक रानीसाहिबा के लिए

बनवाया था, पर किसी कारण-वश राजासाहब इसे ले नहीं पाये। इसको पहनने को मेरा बहुत जी करता है, लेकिन सोचती हूँ, पहनूँ तो दिखाऊँ किसको ? बोलिए, आप चुप क्यों हैं सतीशबाबू ? कुछ भी तो बोलिए।"

मेरे मुँह से निकल गया—"बहुत साधारण बात है। दुनिया में ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जिनके पास अथाह सम्पत्ति है, जिनके मकानों का दैनिक किराया तीन-तीन हजार है, जिनके यहाँ हानि-लाभ का दैनिक हिसाब लाखों पर होता है, जो तीस-तीस, चालीस-चालीस हजार की कार पर बैठकर शहर से दस मील, बीस मील आगे जाकर खुले मैदान में टट्टी फिरते हैं।" इस स्थल पर श्रीमती विश्वास यकायक हँस पड़ीं। बोलीं—"आप तो मेरा मजाक बना रहे हैं।" मैंने कह दिया—"मजाक नहीं। मैं बिलकुल सही कह रहा हूँ। दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दस रुपए के फल लाने के लिए बीस रुपए का पेट्रोल खर्च करते हैं, मगर सुनता हूँ रात को एक बजे से पहले उन्हें नींद नहीं आती। डेढ़ पाव दूध भी वे हज़म नहीं कर सकते। करेला, कटहल, बैंगन, गोभी, आलू, अर्वी का साग उन्हें हज़म नहीं होता। मलाई खाने को तरसते हैं। छः-छः महीने, दस-दस महीने से वे संग्रहणी के शिकार हैं। मट्ठे पर जीवन तुल रहा है। रसगुल्ले का एक टुकड़ा चखने को लार टपकाते हैं। चाय का एक घूँट नहीं पी सकते, बर्फ़ीले लेमनस्क्वैश के फ़ेनिल झाग-पान करने से डरते हैं, काँपते हैं। एक मील पैदल चलना हो तो, नानी मर जाती है! कोई बाल-बच्चा नहीं है। पिता-माता इस सोच में आहें भरते हुए परम-धाम सिधार गये कि मेरे बबुआ के एक कानी लड़की ही हो जाती।" इस अवसर पर श्रीमती विश्वास की मुखश्री नितान्त म्लान हो उठी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लेकिन मैं कहता ही चला गया—"मैंने देखा है, एक करोड़पति सज्जन हैं; उनको जब अपनी बीबी को

चिट्ठी लिखानी होती है, तो अपने सेक्रेटरी को बुलाते हैं। उससे कहते हैं, बहुत रँगीली चिट्ठी लिख लाइए, जिसको पढ़कर श्रीमती जी मेल से न आकर एरोप्लेन से टपक पड़ें। उसमें अपनी आत्मा का रस एक-एक शब्द में घोल दीजिएगा और उन बैशाखनन्दन को इतनी भी तमीज नहीं कि उनकी पत्नी के साथ उनकी अपनी आत्मा और देह का सम्बन्ध है, नकि सेक्रेटरी का। उसमें अपनी आत्मा का रस वह कैसे घोलेगा ? लेकिन दुनिया एक कबूतरखाना है और उसमें सब के लिए जगह है। आप मुझे माफ़ करें, अगर मैं यह कह दूँ कि इन लोगों की जो पंक्ति मेरे सामने है, उन्हीं में से एक आप भी हैं।" यहाँ श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं।" पर मैंने अपना कथन जारी रक्खा। मैंने कहा—"आपके पास पैसा है। पहाड़ पर रहने के लिए बँगला है। नौकरों का वेतन चुकाने के लिए और जिस पर तबीयत आ गई, उसको प्रीतिभोज देने के लिए बैंक में धन-राशि है, लेकिन प्रश्न तो यह है कि दुनिया के दीन, दुखियों, अनाश्रितों, पीड़ितों, जीविकाहीन दर-दर मारे-मारे फिरने-वाले अधनंगे नवयुवकों और प्रौढ़ लोगों के लिए आपके पास क्या है ? इस दीन-हीन, अवलम्बहीन, आश्रयहीन जनता को उचित सहायता-सहारा देने के नाते आपकी यह सारी धन-सम्पत्ति और वैभव-ऐश्वर्य आख़िरकार दो ही कौड़ी का है न ? बतलाइए, ऐसी दशा में आप मुझसे क्या कहना चाहती हैं ?"

श्रीमती विश्वास मेरी इन बातों का कोई उत्तर न दे सकीं। मैंने लक्ष किया जैसे उनके मुख पर कालिख पुत गई। मेरी पुस्तक अब भी उनकी टेबिल पर रक्खी थी। और अधिक न ठहर कर मैंने अपनी पुस्तक उठा ली और उनसे पूछा—"मेरा ख़्याल है, अब तक तो आप इसे पढ़ चुकी होंगी ?"

उन्होंने उदासीनतापूर्वक कहा—"पढ़ तो नहीं पाई लेकिन

आप चाहें तो ले जा सकते हैं।" मैं पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। चेक अब भी उसमें ज्यों-का-त्यों रक्खा हुआ था जिसे निकाल कर उन्हें देता हुआ बोला—"इसे रख लीजिए न! इधर-उधर डाल रखने से क्या फ़ायदा?" उन्होंने कह दिया—"आप ही रख लीजिए। आवश्यकता पड़ेगी, तो माँग लूँगी।"

मैंने देखा—वह प्रतिक्रियाओं से खेल रही हैं। इसलिए और कुछ न कहकर मैं चुपचाप उनके यहाँ से चला आया।

अभी चार नहीं बजे थे कि भीखू ने आकर कहा—"आप कुछ सुन्यों मालिक?"

आश्चर्य के साथ मैंने पूछा—"क्या?"

भीखू बोला—"मेमसाहेब सबके बरे जाड़े कै पोशाक खरीद लाई हैं। दर्जी का हुकुम दीन्हेनि है कि जल्दी-ते-जल्दी सब नौकरन के कपड़ा तैयार कइ देव। रामू कहत रहै कि दुइसै ऊनी कम्मर, कानपुर के कम्मर मील ते दाँटै का मंगवाइन है। अउर का है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"होगा, मुझसे क्या मतलब! तुम्हारे पास तो गरम कपड़े हैं ही। घर पर तुम्हारे बच्चों के पास न हों, तो साफ़-साफ़ बतलाओ। मैं रुपया अभी दे दूँ। और कुछ कहना चाहते हो?"

भीखू ने पैर पकड़ लिए। बोला—"छोटे भइया कै बात! अबै पारसाल हम पनचन का ऊनी कपड़ा बनवाय दीन तेऊ! का एत्ती जल्दी भूलि गयी? मेमसाहेब लाखु करैं, अबै आपका छुइ नहीं सकतीं—कउनिउ बात माँ। कइयौं जन्म लेक परिहैं।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कह दिया—"अच्छा, जाओ। इसी बात पर मेमसाहब को मेरा सलाम बोलो और कहो आपको याद किया है।"

हँसी-खुशी के साथ भीखू कमरे से बाहर चला गया।



: १० :

प्राय: मैंने अनुभव किया है कि जो हम सोचते हैं, कल्पना करते हैं, विचार-विनिमय करके कुछ निश्चय करते हैं, वह एक ओर पड़ा रह जाता है और जिसकी हम कभी कल्पना नहीं करते, अनायास वही हो जाता है। जानता हूँ, यह अनिश्चयवादी, अदृष्टवादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण है। किन्तु आज तक मैं समझ नहीं सका कि मनुष्य के कर्म-मार्ग में प्रकृति का यह स्वाभाविक विरोध अर्थ क्या रखता है।

श्रीमती विश्वास के पास मैं न जाता, यदि उन पर वैसी प्रतिक्रिया न होती, जैसी भीखू से अभी विदित हुई थी। यह केवल हमारी सामाजिकता है। हमारी वह सामाजिकता है, जिसका सम्बन्ध हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण के साथ है।

अभी-अभी फ़र्श पर बिछी दरी के ऊपर और मेरे पलँग के नीचे कुछ चीटियाँ रेंग रही थीं। जान पड़ता है, रसगुल्ले के रस का एकाध बूँद अथवा चीनी के कुछ दाने इधर कहीं पड़े रह गये थे, इसीलिए ये चीटियाँ यहाँ चक्कर काट रही हैं। कई दिन से मेरे मन में आता है कि चीनी के दानों के साथ चींटी का जो सम्बन्ध है, क्या यहाँ आने के पश्चात् श्रीमती विश्वास के साथ मेरा सम्बन्ध वही हो गया है?

प्रश्न यह है कि मैं रात-दिन उन्हीं के साथ मन का खेल करने में प्रवृत्त नहीं रहता? क्रीड़ा, कौतुक के अतिरिक्त मेरा कोई कार्य-क्रम नहीं है? मैंने यहाँ इतना समय क्यों बिता दिया? और अ[illegible] से जाने की बात सोचता हूँ, तो एक बेचैनी-स मुझे होन लगती है।

संसार में ऐसे लोग हैं, जो अपने साथ न्याय करने की झोंक में आकर कभी-कभी अन्याय भी कर बैठते हैं। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ जो सामाजिक सम्बन्ध है, क्या उसका मूलआधार केवल स्वार्थ

है ? श्रीमती विश्वास के साथ मेरी जो आत्मीयता है, उसके अन्दर मेरे मन में कोई राग नहीं है ? कामना नहीं है ? तो यह निकटता क्यों है ? लगाव क्यों है ? क्या इस नाते के अन्दर निरन्तर सजग और सतर्क रहनेवाली मेरे और उनके मन की एकान्तिक एकता है ? साहस के साथ यदि मैं उनकी चाँदनी-सी रूप-राशि और संस्कारशीलता के आकर्षण को स्वीकार कर लूँ तो यह मेरा पतन होगा ? नहीं, इस सम्बन्ध को मैं अपना पतन नहीं मानता। मनुष्य के पारस्परिक नातों का मोह मैं नहीं मानता कि एकमात्र पतन का मार्ग है। मेरी मान्यता है, कि यह केवल हमारी सामाजिकता का एक पहलू है।

थोड़ी देर में भीखू ने आकर कहा—"उनके हियाँ याकै बाबूसाहेब आये हैं। अबै-अबै सामान उतरा है। पता नहीं कि कुआँहीं। जानि परत है कि आँहीं कउनौ बड़ेहे आदमी। कहति हैं, अबै पूरा सामान नहीं आय पावा है। बहुत तो अब्बै आवैक बाकी है। मेमसाहेब कहती रहैं कि भाईसाहब आँहीं। यही के मारे आवैं कै फुरसति नहीं है। अबहीं विइ गुसलखाना मा बन्द भे हैं। थोड़ी देर माँ निकरि हैं। मेम साहेब कहेनि है कि वत्ती जून आपौ आ जायँ, तो नीक होय।"

मैं आश्चर्य में पड़ गया—भाईसाहब ?—ये भाईसाहब कौन हैं ? श्रीमती विश्वास के कोई भाई-वाई हैं नहीं। अपने पिता की वह एकमात्र सन्तान हैं। पिता उनके नाम जो 'विल' कर गये हैं, श्रीमती विश्वास ने एक दिन स्वयं मुझे दिखलाई थी। आज तक केवल खर्च भर के लिए उन्हें रुपया मिलता है—अठारह हजार वार्षिक। पाँच लाख की सम्पत्ति जो उनको मिलती, वह केवल इसलिए नहीं मिल रही है कि विवाह के बाद ही उनके स्वामी का स्वर्गवास होगया, और दूसरी शर्त के अनुसार उनके कोई सन्तान भी नहीं हुई।

यह तो हुई बात पिता के उत्तराधिकार की। स्वामी की सम्पत्ति भी पूरी-पूरी उन्हें नहीं मिली। उनके पति के छोटे भाई श्रीमान विमल

विश्वास ने अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् उन्हें अपने साथ रहने को विवश किया और अपना आशय स्पष्ट कर दिया था—मिल में आपके स्वामी का जो 'शेयर' है, उसका लाभ आपको तभी मिल सकेगा, जब आप मेरे साथ रहेंगी । स्वामी से रहित एकदम स्वच्छन्द नारी का समाज में कोई मूल्य नहीं है। आप एक सम्भ्रान्त परिवार की महिला हैं। उस परिवार की मर्यादा का पालन आपको करना ही पड़ेगा। आप पढ़ी-लिखी हैं और अपना हित और अहित समझती हैं। आप चाहें तो पुनर्विवाह कर सकती हैं। पर उस दशा में आपको मेरे भाई की सम्पत्ति को एक पाई भी नहीं मिलेगी। हाँ, पिता की सम्पत्ति आपको अवश्य मिल सकती है।

मैं सोच रहा था, यह भाई साहब कहीं श्रीमान विमल विश्वास ही तो नहीं आ गये हैं! इतने में भीखू ने पुनः आकर कहा—"छोटे भइया मेमसाहब के भाईसाहेब तो अजब आदमी हैं। उनका अपनी हिफाजत का बड़ा धुकुर-पुकुर रहत है।"

मैंने पूछा—"क्यों, ऐसी क्या बात हुई ?"

उसने कहा—"अरे छोटे भइया, चिरैया अस तो उनका जिउ है। दूबरि, पातरि, बन्टे! औ मजा यहु कि दुनली बन्दूक धरे दुइ-दुइ सिपाही उनके आगे-पीछे चलति हैं!"

मैंने कहा—"तो क्या हुआ, बड़े आदमी हैं। तुमको इस तरह उनका मजाक नहीं बनाना चाहिए!"

भीखू मुस्कराने लगा। उसने अपना चेहरा नीचा कर लिया। बोला—"छोटे भइया, बातै कुछ ऐसि है कि मुँहते निकरिही जाति है। गुसलखाने मा गये घन्टा भरि होइगा, अबै तक नहइही रहे हैं। औ छोटे भइया तुमका एकुबात नहीं मालुम? वहै, उनका रामू कहत रहै कि विइ टट्टीमा बैठिकै अखबार बाँचति हैं। उनका अखबार बाँचैका और कहूँ ठउरै नहीं मिलत। बप्पा कहति रहै कि पढ़बु औ पूजा करबु

दूनौ बराबरि है। ई पंच अपनि पूजा टट्टी औ गुसलखाने मा करति हैं। द्याखौ दुनियाँ क तमासा!"

मैंने कहा—"भीखू आज तुमको क्या हो गया है? शौच गये होंगे। कुल्ला-दातून किया होगा। फिर हजामत बनाई होगी और अब स्नान कर रहे होंगे! इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"

भीखू जैसे बोलने का आदी है वैसे ही बोला—"तउनु सही है छोटे भइया, हम कुछ कहित थ्वारै हैं उनका। यहु तो रामू कहत रहै कि नहाय का अउे लम्बरु नहीं आवा। पहिले घण्टा भरि मालिस होइ लेई तब कहूँ नहाय का लम्बरु आई। ई हिसाब ते तीन घण्टा ते पहिले उनका निकरबु न ह्वै पाई।"

मुझे हँसी तो बहुत आई, लेकिन मैंने कह दिया—"तुम्हें ऐसी फ़िजूल की बातों में नहीं पड़ना चाहिए भीखू। जाओ, अपना काम देखो।"

बहुत दिनों के बाद एक अमीर-उमरा की बातें सुनने का अवसर मिला है। मन में जैसे एक सोई हुई भूख जाग्रत हो उठी।

कई दिन से श्रीमती विश्वास के साथ विचारों का युद्ध चल रहा था। चलो, उससे मुक्ति तो मिली। अब यह एक नया पहलवान आया है। अब इससे निपटना है। भीखू को बुलाकर, लाउडस्पीकरवाली 'आशा-कम्पनी' के मैनेजर को एक चिट्ठी लिख दी कि सायंकाल मुझसे या तो स्वयं मिल जायें या अपने किसी प्रतिनिधि को भेज दें। तुरन्त ख्याल आ गया कि सम्बन्धित अधिकारियों से अनुमति ले लेनी चाहिए क्योंकि रात को दो बजे तक ग्रामोफ़ोन रिकार्ड्स बजते रहेंगे। भाई साहब का पत्र आ चुका था और प्रकाश के साथ वह आज सायंकाल आनेवाले थे और संयोग की बात यह है कि आज प्रकाश का जन्म-दिन भी है।

फ़ोन करने और आशा कम्पनी वालों को चिट्ठी लिखने में काफ़ी

समय बीत गया ! भीखू को तो उधर से ही बस-स्टैण्ड पर जाने का आदेश कर दिया, जिससे भाई साहब को आने में कोई कष्ट न हो और मैं बाज़ार चला गया। प्रकाश के लिए कुछ फ़्रूट्स लाने थे, कुछ स्वीट्स, बिस्किट, टॉफ़ी, लेमनड्राप्स, केक और पेस्ट्री इत्यादि। भाईसाहब चाय नहीं लेते वे काफ़ी पीते हैं।

मैं बाजार से अभी लौटा ही था कि रामू ने आकर कहा—"बड़ी देर से साहेब आपकी बाट जोह रहे हैं। मेमसाहब भी कई बार आपको याद कर चुकीं।"

मेरे मुँह से निकल गया—"मुझे तो इस समय छुट्टी है नहीं। भाईसाहब आ रहे हैं और उनके साथ में प्रकाश भी है, मेरा भतीजा।"

रामू बोला—"तो सरकार ऐसा कीजिए कि पाँच मिनट के लिए चले चलिए। उनका भी कहना हो जायगा और आपका भी हर्ज न होगा।"

सामान यथास्थान रखवा कर मैं श्रीमती विश्वास के यहाँ चला गया।

श्रीमान विमल विश्वास के सम्बन्ध में मैंने जो बात सुनी थी, वह सही निकली। मिस्टर विश्वास का व्यक्तित्व वास्तव में बड़ा विलक्षण है। —शरीर की गठन जैसी कुछ है, वह भीखू से मालूम ही हो चुकी है। उस पर तुर्रा यह है कि आप चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी पहने हुए हैं। कुल मिलाकर जितना आपका वजन होगा, उससे कुछ ही कम आपके कैपसोल शू का; पुखराज के नगवाली दो अँगूठियाँ आपके दाहने हाथ की उँगुलियों की शोभा बढ़ा रही हैं। आयु अभी तीस के लगभग है। लेकिन अगर वस्त्र उतारने की नौबत आ जाय, तो ख़याल कुछ ऐसा है कि जूड़ी-ताप-बुख़ार वाले रोगी का चित्र अच्छा बनेगा। एक-एक पसली आप गिन सकते हैं। नाक पर हल्के आसमानी

रंग का रिंगलेस चश्मा चढ़ा हुआ है और आँखों पर स्थिर रखने के लिए नाक पर एक चिमटीनुमा ब्रिज सुशोभित है। घर पर सिगरेट पीते होंगे, लेकिन पहाड़ पर आये हैं, इसलिए सिगरेट का स्थान सिगार ने ग्रहण कर लिया है। मुझे बड़ी हँसी आई जब मैंने देखा कि वे सिगार को दाँतों या होठों के बीच में स्थिर न रखकर सिगरेट की तरह 'स्मोक' करने की चेष्टा में रत हैं।

सर्दी ऐसी कुछ ज्यादा न थी, दोपहर को काफ़ी धूप हुई थी और अभी कुछ समय पूर्व जब मैं 'मार्केटिंग' के लिए गया था तो लौटते समय थोड़ी दूर पैदल चलने पर मेरे बदन में पसीना आ गया था; परन्तु मिस्टर विश्वास को वातावरण की वास्तविकता का बिलकुल ध्यान न था। चाय पीते समय वह शेरवानी पहने हुए थे। सिगार ऐशट्रे में रक्खा हुआ था। श्रीमती विश्वास ने आज 'पोटैटोचाप स्पेशल' बनवाया था, डेरीफ़ार्म से आये हुए मक्खन में तला हुए। उसमें हरी मटर भी पड़ी हुई थी। मुझे जल्दी थी, फिर भी अन्य चीज़ों के साथ-साथ मुझे यह चीज पसन्द आई।

श्रीमती विश्वास ने मेरे परिचय में एक वाक्य ऐसा कहा जिसकी ज़िम्मेदारी से मैं कुछ आतंकित हो गया। उन्होंने कहा—"सतीशबाबू कर्म के जीवन में कैसे हैं, यह तो मैं अभी नहीं कह सकती, लेकिन विचारों के जीवन में इतने कर्तव्यनिष्ठ, क्रान्तिकारी और त्यागी हैं कि हमारे आज के राजकीय अधिकारी सूत्रधारों में उनकी श्रेणी के इने-गिने व्यक्ति ही मिलेंगे।···आप देख ही रहे हैं, वे अपने साधारण जीवन में सिर से पैर तक खादी पहनते हैं। चोकर सहित आटे की रोटी खाते हैं। दाल कम, हरे साग ज्यादा खाते हैं। दावतों में पूड़ी से सख़्त परहेज़ रखते हैं। आज उनकी बड़ी कृपा है, जो उन्होंने हमारे यहाँ का पोटैटो-चाप रुचिपूर्वक स्वीकार किया।"

"सतीशबाबू कर्म के जीवन में कैसे हैं, यह तो मैं अभी नहीं कह

सकती हूँ—" मेरे कर्म के जीवन में श्रीमती विश्वास की कोई आस्था नहीं है। न हो, मेरे कर्म का जीवन उन्होंने अभी देखा ही कहाँ है? और सच बात यह है, कि मैं पहले महत्व विचारों के जीवन को देता हूँ। उसके पश्चात् कर्म के जीवन को। जिसके पास विचारों का जीवन नहीं है, उसके पास कर्म का जीवन कभी हो ही नहीं सकता! पहले विचार हैं, फिर कर्म"!

लेकिन मिस्टर विश्वास ने कुछ नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—"हूँ ऊँ, तो आप लीडराने वतन ऐं···अ···अ···मेरा मतलब यह ऐ के एम० पी० ऐं! टीक ऐ, न्यू-डेलही में, कनाटप्लेस में चक्कर काटते हुए, मैंने ऐसे बहुत-से, सोकाल्ड नेताओं को देखा ऐ; जो पब्लिक प्लेटफ़ार्म पर आकर अहिंसा और असहयोग पर भाषण दे लेते ऐं, लेकिन प्राइवेट लाइफ़ में मुर्ग़ा, कबूतर और उसका क्या नाम ऐ आइ मीन येस, बटेर···बटेर, डू यू टेक बटेर? आई उड लाइक टु टेक लिबर्टी बिहाइन्ड दिस क्वेश्चन! आई थिंक यू उड नाट माइन्ड इट···अ···अ···आपने कभी सवन चिड़िया का अपरेशन चक्खा ऐ। ख़ैर, जाने दीजिए···!"

श्रीमती विश्वास की ओर—"देखिए आभी, वो बकरा-वकरा तो चलेगा नेंई, आई विल टेक फ़िश ओन्ली!" फिर मेरी ओर देखते हुए पूछा—"डू यू लाइक फ़िश?" और सिगार को ऐशट्रे में से उठाकर उसे लाइटर से जलाने लगे।

अब मुझे बोलना पड़ा—"देखिए मिस्टर विमल विश्वास, हमारी आप की यह पहली भेंट है। मैं आपके विचारों का आदर करता हूँ। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप मेरी भावनाओं की उपेक्षा करें। आपको मालूम होना चाहिए कि स्वाद का स्थान, जिह्वा नहीं, हमारा मन है। आप बात-बात में बटेर, मुर्ग़ और मछली ग्रहण करने के सम्बन्ध में मुझसे जो प्रश्न करते हैं उनसे मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे दिन-रात पशुप-क्षियों को उदरस्थ करने की योजनाओं के प्रति-

रिक्त आपके पास और कुछ नहीं है ! मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, कि आज मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ बैठकर चाय पीनी है, जिसके संस्कारों से आज मैं आज ही अपरिचित नहीं हूँ, बल्कि चाहूँगा कि सदा अपरिचित रहूँ। पहली भेंट में किसी सम्भ्रान्त महिला के सामने यदि आपसे कोई प्रश्न करे, कि 'आपने कभी वेश्या को चख कर देखा है, तो आप क्या उत्तर देंगे ?"

मिस्टर विश्वास का चेहरा उतर गया और श्रीमती विश्वास का मुख एकदम से लाल पड़ गया। उन्होंने तत्काल उठकर, काँपते हुए स्वर में कहा—"मुझे बहुत अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि भाई साहब आपने बहुत 'अनमैनरली बिहेव' किया।" और उसके पश्चात् उन्होंने मेरी ओर देखते हुए कहा—"और मिस्टर सतीश मुझे दुख है कि आपमें ज़रा भी 'टालरेन्स' नहीं है।"

अब मुझे उठना पड़ा, और मुझे तो उठना था ही। यकायक इतने में एक ट्रे में कुछ तश्तरियों के साथ चाय का पात्र रखकर लाते हुए रामू ने जो प्रवेश किया, तो मिस्टर विश्वास एकदम से उछल पड़े और भयभीत, कम्पित स्वर में बोल उठे—"ओ माई गाड, चिपकिली, चिपकिली···!"

मिस्टर विश्वास का स्वर कुछ ऐसा भयातुर था कि रामू के हाथ से ट्रे टेबिल पर यकायक छूट पड़ी और उसका परिणाम यह हुआ कि 'टी-पाट' से सारी चाय गिर कर तश्तरियों में जा पड़ी। मिस्टर विश्वास बोल उठे—"नानसेन्स, स्टुपिड, डैम···टुमको सूझ नेंईं पड़ता।"

श्रीमती विश्वास ने पूछा—"लेकिन छिपकली थी कहाँ ?"

मिस्टर विश्वास ने उत्तर दिया—"बैरा के कंधे पर ! और वो ट्रे पर गिरने ही वाली थी।"

श्रीमती विश्वास—"मगर आप तो इस तरह चिल्ला उठे जैसे शेर ने आपको पंजा मार दिया हो।"

और मैंने देखा छिपकली मुड़कर दौड़ती हुई दीवार के कोने में जा पहुँची है। मिस्टर विश्वास बोले—"योर बिहेवियर इज वेरी वेरी डाउट-फ़ुल टु मी ! आई कैन-नाट टालरेट इट ! आई नो आल एबाउट योर प्राइवेट एक्ट्रेस ! आय विल सी।" और उन्होंने मेरी ओर देख कर कहा—"वेरी सारी फ़ार दि अनयूजुअल इन्सीडेन्ट ! वी विल मीट अगेन। थैंक्यू फ़ार दिस मीटिंग ! गुड नाइट !" और यह कह कर उन्होंने अपना हाथ बढ़ा दिया। कमरे से बाहर आया ही था कि सदर फाटक पर मेरी दृष्टि जो गई तो क्या देखता हूँ कि भाई साहब के साथ प्रकाश तो है ही, भाभी भी हैं ! प्रसन्नता से फूल कर उछलता हुआ मैं उधर की ओर दौड़ पड़ा।

अभी बँगले में रंगीन 'बल्बों' की चारों ओर फैली पंक्तियाँ जल ही पाई थीं और लाउडस्पीकर के द्वारा प्रसारित होनेवाले गायन प्रारम्भ ही हुए थे कि रामू ने आकर कहा—"साहब ने सलाम बोला है और कहा है कि रिकार्डों के बजाने का प्रोग्राम कब तक चलेगा ?"

मैंने कह दिया—"दो बजे तक ! क्यों ? यह सवाल कैसे उठा ?"

रामू बोला—"सरकार, यह मैं कैसे जान सकता हूँ। मेमसाहब से बातचीत जरूर हो रही थी, लेकिन अँगरेजी में। मैं क्या जानूँ ? उन्होंने जो मुझसे पुछवाया, उसी के लिए मैं हाजिर हुआ हूँ।"

इतने में भाभी वहाँ आ पहुँची और बोलीं—"क्या बात है ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"कुछ नहीं, यों ही लैण्डलार्ड्स की आपसी चख-चख जान पड़ती है।"

इतने में मैं क्या देखता हूँ कि श्रीमती विश्वास चिक के बाहर खड़ी हैं। चश्मा उनके हाथ में है और केशपाश कमर के नीचे तक फैला हुआ है। सौरभ उससे मन्द-मन्द प्रसारित हो रहा है। बाहर खड़े देख कर क्षण भर मैं बोला नहीं ! लेकिन भाभी ने देख लिया। चिक का परदा उठा कर बोलीं—"आइए, खड़ी कैसे हैं ?"

मेरी दृष्टि भाभी की ओर थी, लेकिन मेरा हृदय काँप रहा था। श्रीमती विश्वास अन्दर आ गईं और कुछ संकोच के साथ भाभी से बोलीं—"इस समय मैं एक आवश्यक काम से आई हूँ। प्रकाश कहाँ है? मैंने उसे अभी तक देखा नहीं!—खेलाया नहीं! मैं चाहती थी, उसे आप मेरे साथ खाना खाने के लिए भेज देते! अरे, दीदी आप खड़ी हैं, बैठिए। हाँ, अभी-अभी कुमार साहब ने पूछा था ये 'न्यूसेन्स' कब तक चलेगा? मेरे मुँह से निकल गया था, जीवन भर! मेरा कहना यह है कि बड़े भाग्य से हम को यह दिन नसीब हुआ है, मैं तो चाहती हूँ कि रात भर रिकार्ड्स बजते रहें। इस बीच में अगर कुमार साहब कुछ कहें भी तो आप 'माइन्ड' न कीजिएगा। अब दीदी, आप बहुत थकी होंगी। मैंने असमय आपको कष्ट दिया। खाना तो आपने लिया न होगा अभी। अगर सम्भव हो तो हम लोग एक साथ बैठ कर भोजन करें और प्रकाश···?"

मेरे मुँह से निकल गया—"वह थका हुआ था, उसे नींद आ गई है।···भाभी तो अभी-अभी आई हैं। भोजन हम लोग साथ बैठ कर फिर कभी करेंगे। आज क्षमा करें।"

भाभी बोलीं—"हाँ, मैं भी ऐसा ही सोचती हूँ। मुझे पहले से मालूम नहीं था कि सतीश आप जैसी सम्भ्रान्त महिला के अतिथि हैं। नहीं तो मैं और भी पहले आ जाती।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"ऐसी आत्मीय भावना के लिए धन्यवाद एक छोटी-सी चीज जान पड़ती है। अच्छा!" कह कर मुस्कराईं और नमित मुख द्वार के बाहर चली गईं। उनकी साड़ी की सिकुड़न जब आपस में घिसटती, तो उससे एक विचित्र स्वर निकलता। उनकी छूटी हुई, बिखरी हुई आलुलायित कुन्तल-राशि का सौरभ, उनकी बनक, उनकी मन्द-मन्द गति से एक विशेष व्यक्तित्व का प्रभाव इन दो ही क्षणों में जैसे उस कमरे भर में छा गया।

भाभी के मुँह से निकल गया—"मेरा ख्याल है, अब तक तो तुमने नाटक लिखना शुरू कर दिया होगा ?"

मैं बहुत संकुचित हो उठा। मेरा हृदय धड़क रहा था। अनायास मेरे मुँह से निकल गया—"कल्पना सदा सही नहीं होती। कभी-कभी तो वह सत्य से बहुत दूर जा पड़ती है। यदि तुम ऐसा सोचोगी भाभी, तो अनजान ही में मेरे साथ जो अन्याय हो जायगा, उसका समाधान करने में तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी। वैसे कोई बात नहीं है।"

भाभी मुस्कराईं, बोलीं—"बात बनाना कुछ ज्यादा सीख गये हो सतीश! अच्छा चलो, अब खाना खायें। उनकी सन्ध्या भी समाप्त हो गई होगी।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे मुँह से निकल गया—"अच्छा, तो भाईसाहब सन्ध्या भी करने लगे! कब से भाभी ?"

भाभी बोलीं—"एक यही बात नहीं, अभी उन पर होने वाले नए परिवर्तनों की ऐसी अनेक बातें हैं, जिन्हें सुनकर बड़ा ताज्जुब होगा।"

हम लोग जब दूसरे कमरे में पहुँचे, तो पास के ही कमरे से ज़रा ज़ोर के साथ ये शब्द सुनाई पड़े—"शट अप!"

यह स्वर विमल विश्वास का था।



: ११ :

भाईसाहब के चरणों की रज मस्तक से लगाकर उनके पलँग के निकट अभी खड़ा ही हुआ था कि वे बोले—"देर से सोने के कारण आज मैं बहुत सवेरे उठ नहीं सका। उदय के समय सूर्य भगवान् को मेरा अर्घ्य नहीं मिला। क्या कहते होंगे वे? न भी कुछ कहें, तो मेरा मन तो नहीं मानता। तुम तो चार मील घूमकर लौटे होगे! ज़रा देखना है, घूमने के लिए कौनसा घोड़ा तुमने पसन्द किया है!"

भइया की बातें अभी चल ही रही थीं, कि इसी समय खिन्नमना, सहमी-सहमी-सी भाभी वहाँ आ पहुँचीं और बोलीं—"तुमने कुछ सुना?"

मैंने देखा—उनका दम फूल रहा है। सीना उभरता और गिरता है। वे अत्यन्त परेशान-सी दिखती हैं। मैं एकदम से घबरा गया। लेकिन भाई साहब की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे ज्यों-के-त्यों स्थिर बने रहे। भर्राए हुए स्वर में मेरे मुँह से निकल गया—"आख़िर हुआ क्या भाभी? साफ़-साफ़ कहो न!"

भाभी और खड़ी न रह सकीं। पलँग के पास दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। कुछ संकुचित सी होकर साड़ी को मस्तक की ओर खिसका कर उन्हींमें से एक पर बैठ गईं और बोलीं—"भीखू कह रहा था, मेम साहब हास्पिटल में हैं। हालत बहुत खराब है, बचने की कोई उम्मीद नहीं है। खून की पेशाब हुई है।"

सहसा मैं चौंक उठा—खून की पेशाब?

भाईसाहब उठे। जैसे गम्भीर थे, वैसे ही बने रहे। बोले नहीं कुछ। बाथरूम की ओर चले गए। उनकी प्रतिक्रिया की तीव्रता का मैं अनुमान नहीं लगा सका। मैंने कहा—"भाभी स्थिति बड़ी गम्भीर है। ईश्वर ही मालिक है। मुझे तो ऐसा लगता है, कि कहीं दाल में कुछ

काला है।"'भइया तो अभी नित्यक्रिया में लगे रहेंगे, लेकिन मुझे जाना ही होगा।"

भाभी बोलीं—"नहीं, तुम कहीं नहीं जाओगे। तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं है। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। हम लोगों को उनके बीच में पड़ने की क्या जरूरत?"

अनायास ही जैसे किसी ने मेरे हृदय पर मुक्का मार दिया हो। भाभी की बात सुनकर मैं तिलमिला तो अवश्य उठा, परन्तु अपनी प्रतिक्रिया के वेग को दबाते हुए उसी स्वर मैंने कहा—"यहीं पर मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ भाभी! मैं तुम्हारा कितना आदर करता हूँ, यह तुमसे छिपा नहीं है। परन्तु मैं इसे बहुत ही हीन और निकम्मा दृष्टि-कोण मानता हूँ कि किसी के साथ अन्याय हो, हिंसक पशुवृत्ति का प्रयोग हो, मानवता के प्राण घुट रहे हों और उस क्षण भी हम केवल इस विचार से कि हमसे क्या मतलब, चुप बने रहें! विश्व के किसी कोने में जहाँ कहीं अन्याय होगा, मुझे उसका विरोध सक्रियरूप से करना ही पड़ेगा। श्रीमती विश्वास के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, ठीक है, लेकिन मानवता के सम्बन्ध को मैं कैसे भूल जाऊँगा? आप भइया का ध्यान रखिएगा। मुझे जाना ही होगा।"

सहसा भाभी गंभीर हो उठीं। एक क्षण कुछ सोच कर वे बोलीं "मैं इन सब पचड़ों में तुमको नहीं पड़ने दूँगी। मैं अभी उनसे जाकर कहती हूँ कि सतीश मेरे रोके नहीं रुक रहा है। वह जान बूझकर आग में कूद रहा है।"

मैंने बड़ी विनम्रता के साथ भाभी से पुनः कहा—"रोको मत भाभी! मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। अब मुझे जाने दो।"

भाभी दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गईं और बोलीं—"मालूम नहीं वहाँ क्या हो रहा है! इन शैतान के पुतलों का कोई विश्वास नहीं! कौन जाने किसी के द्वारा उन्हें कुछ खिला ही दिया गया हो।

डूबता हुआ आदमी तिनके का सहारा लेता ही है। जान बचाने के लिए वह न्याय-अन्याय की परवाह नहीं करता। अगर उसने रुपए के बल पर सिखा पढ़ा कर किसी से कुछ-का-कुछ कहलवा दिया, तो ?—नहीं, नहीं, तुम नहीं जाओगे।"

भाभी के कथन में अब कुछ तीव्रता आ गई थी। इतने में बाथरूम की घण्टी बजी और भीखू ने वहाँ से लौटते हुए सरलता के साथ कहा—"छोटे मालिक, तिनुकु सुनौ ! बड़े सरकारौ आय रहे हैं !"

अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ। भाईसाहब सामने आ गए। टावल अब भी उनके हाथ में था। हाँ, वे कुछ सोचते हुए से अवश्य प्रतीत होते थे।

भाभी उनकी ओर उन्मुख होती हुई बोलीं—"देखो, सतीश नहीं मान रहा है। रोको न उसको !"

भाईसाहब के सामने मैं कुछ नहीं बोला। मूक, मौन ही बना रहा। तब भइया स्वयं बोले— 'मैं जानता था, तुम अवश्य जाओगे। तुम्हारी जगह मैं होता, तो मुझे भी जाना ही पड़ता। तुम जा सकते हो।"

भाईसाहब के इस कथन की भाभी पर क्या प्रतिक्रिया हुई, सो कहना मेरे लिए कठिन है, उसे मैं सही-सही ग्रहण भी नहीं कर सका। हाँ, यह बात मेरे मन में अवश्य आई थी, कि भाभी को इस निर्णय से अधिक प्रसन्नता नहीं हुई होगी।

भइया ने जब यह बात कही कि तुम्हारी जगह पर मैं होता, तब मैं सशंकित अवश्य हो गया था। एक क्षण के लिए मैं सोचने लगा—क्या यह श्रीमती विश्वास के प्रति मेरे सम्बन्ध को जान गए हैं ? क्या जान गए हैं ? कितना जान सके हैं ? उतना ही क्या सम्पूर्ण जानना है ? किसने उनसे एक रात के अन्दर ही ये सब बातें जड़ दीं ?—भाभी ने ?—क्योंकि कल ही तो वे कह रही थीं कि सतीश अब तक तो

तुमने नाटक लिखना शुरू ही कर दिया होगा !

इस घटना को हुए आज कई वर्ष बीत गए हैं, लेकिन भइया की उस गुरु गम्भीर मुद्रा को अभी तक भूल नहीं पाया हूँ। ऐसा जान पड़ता था, वे सब कुछ जानते हैं। मेरा उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। कभी सोचा नहीं था, जिनकी भंगिमा तक से भय खाता हूँ, वे मेरे सिद्धान्तों के इतने निकट हैं। कभी अनुभव नहीं किया था, जिनसे मैं काँपता हूँ, उन्हीं की गोद में मेरा सिर रक्खा हुआ है। मैं तेजी से बाहर आया और भीखू को फ़ौरन एक टैक्सी लाने का आदेश कर मैं बाथरूम के अन्दर जा पहुँचा।

वर्षों के समान व्यतीत होने वाले क्षण, अँधेरा हो कि उजाला, दिन हो कि रात, वर्षा हो कि निदाघ, होली हो कि दीवाली, होते बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण हैं। वे हमारे साहस की परीक्षा लेते हैं। वे हमारे कर्म के नमूने हैं—कर्तव्य की कसौटी। बैठते ही गाड़ी स्टार्ट होने पर थी कि यकायक भाईसाहब पुनः बरामदे में आ गए और एक उँगली उठा कर बोले—"ठहरो, मैं भी आया।"

उनके आने में दो-तीन मिनट लगे। वे अकेले नहीं थे। उनके साथ भाभी भी थीं। भइया ज्योंही गाड़ी पर बैठे, त्योंही वे बोल उठीं—"चलती तो मैं भी लेकिन मुन्ना अभी उठा नहीं है। कैसे चलूँ? आज तुम्हारी पूजा में भी देर हो जायगी। जल्दी ही लौट आना, वरना मेरी तबीयत घबरा उठेगी।"

इस पर भाईसाहब तो कुछ नहीं बोले। मेरे मन में आया—कह दूँ—'घबड़ाने की कोई बात नहीं है भाभी। और हो भी तो वह कर्तव्य की पुकार के सामने हल्की है।' भाभी की बात पर ध्यान न देते हुए भइया ने ड्राइवर को, सर हिला कर, संकेतात्मक ढंग से आदेश कर दिया—"चलो।"

जो कुछ मैंने सोचा नहीं था, यहाँ तक कि जिसकी मैं कल्पना नहीं

कर सकता था, वही सब मैं आँखों देख रहा था। श्रीमती विश्वास अचेत पड़ी थीं। पलकें बन्द थीं—मुखम्लान। दाहना हाथ बाँई पाटी पर पड़ा हुआ था। कमरे में फ़िनाइल की बू आ रही थी। कुमार साहब बगल के कमरे में बैठे हुए थे, जिसका दरवाजा कुछ खुला हुआ था। हम लोगों के अन्दर पहुँचते ही नर्स ने कुछ इस प्रकार बातचीत की जैसे हम लोग कोई अजनबी हैं और अनधिकारपूर्वक भीतर घुस आए हैं। उसके मुँह से केवल इतना निकल पाया—"आप लोग यहाँ···।" परन्तु उसे दूसरे ही क्षण अनुभव हुआ, अब आगे कहने की आवश्यकता नहीं है। जो शब्द निकल गए हैं, अच्छा होता कि वे न निकलते। क्योंकि गाउन के अन्दर हाथ ले जाकर जो कागज़ वे भीतर की ओर खोंस रही थीं, उसका शिरोभाग पाँच रुपये के नोट का था। अब मैंने देखा कि जिन शब्दों के साथ जुड़ जाना चाहिए था—यह वाक्य कि यहाँ कैसे आ गए, वह आप-से-आप इस रूप में बदल गया कि 'ख़ामोश रहेंगे तो मरीज़ के हक़ में अच्छा होगा।'

भाई साहब—"आय नो आल दैट।"

नर्स की दृष्टि एक बार पुनः एक क्षण के लिए भाईसाहब पर जा टिकी और वह कुछ सहम-सी गयी।

इतने में कुमारसाहब का एक रायफ़लधारी गार्ड वहाँ आ पहुँचा। बोला—"सरकार ने आपको सलाम भेजा है।"

भाईसाहब ने उत्तर दिया—"कह दो उनसे वहीं बात कर लें। यहाँ मुझे और भी जरूरी काम हैं।" और वे एक ओर चल दिए। आते समय, रास्ते में ही, मैंने देख लिया था—एक रूम के दरवाजे पर लटकता हुआ नेमप्लेट, जी० एस० मेहता,······वियना। और नीचे की ओर लिखा था—हेड सर्जन! भाईसाहब उनके यहाँ पहुँचे ही थे कि वे स्वयं बाहर निकल आए और मैं यह देख कर हैरान रह गया। जब उन्होंने बहुत प्रेम के साथ, भइया के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—

"ओहो ! जगदीश ! यहाँ कैसे ? आओ, अन्दर आ जाओ !"

हम लोग बातें करते हुए डॉक्टर मेहता के रूम में पहुँच गए। वे बोले—"चाय, काफ़ी ?"

भइया ने उत्तर दिया—"वह सब फिर कभी देखा जायगा। मैं तो इसकी कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तुम यहाँ होगे ! भाई वाह ! ख़ैर, बाकी बातें बाद में होंगी। पहले यह बताओ कि श्रीमती विश्वास कैसी हैं ?" एक क्षण रुक कर—"यह मामला क्या है ?"

डॉक्टर मेहता ने उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया और कन्धे को अपनी ओर घुमा कर, थोड़ा अलग ले जाकर धीरे से उनके कान में कुछ कह दिया। दो मिनट रुक दोनों वहीं कुछ बातें करते रहे। अन्त में डॉक्टर मेहता उन्हें अपने ड्राइंगरूम में ले गए। भइया का संकेत पाकर मैं भी साथ हो गया था।

हम अभी कुर्सियों पर बैठे ही थे कि डॉक्टर साहब बोले—"मैं आपकी बात से सहमत जरूर हूँ, मगर इस सिलसिले में मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकूँगा। मैं पहले अपना फर्ज़ देखूँगा। जब तक वे एकदम ठीक नहीं हो जातीं, तब तक उनका भी सहयोग आपको नहीं मिल सकेगा।"

भइया बोले—"देखिए मिस्टर मेहता, मैं आप पर कोई नाजायज़ दबाव नहीं डालना चाहता। अगर सच बात छिपाने की आप कोशिश करेंगे, तो मुझे यह भूल जाना पड़ेगा कि आप मेरे मित्र हैं।" और इतना कहते हुए वे अपनी रिस्टवाच देखने लगे।

डॉक्टर मेहता अब गम्भीर हो उठे। अपनी सिगरेट जलाते हुए बोले—"अगर मैं भूल नहीं करता मिस्टर जगदीश, तो आप इस हॉस्पिटल का इन्सपेक्शन करने नहीं आए, बल्कि स्वास्थ्यलाभ और सैर-सपाटे के लिए आए हैं। इसलिए मैं नहीं चाहता, कि आप जान-बूझ कर अशान्ति मोल लें। यों आपको पूरी आज़ादी है, जो

चाहें करें।"

भाईसाहब ने उसी गम्भीरता के साथ कहा—"आप मुझे क्षमा करेंगे अगर मैं यह कह दूँ कि जहाँ तक न्याय का सवाल है, मैं यह नहीं देखूँगा कि आप हमारे पुराने मित्र हैं। अशान्ति अगर मेरे सिर पर आग का गोला बन कर आती है, तो मैं देखूँगा उसमें कितनी ज्वाला है, उसका तापमान कितनी डिग्री का है। जो कुछ अब तक होता चला आया है, मैं यह मान कर न चलूँगा, कि वही उचित भी है। आपको साफ़-साफ़ यह बतलाना होगा, श्रीमती विश्वास को शर्बत के बहाने 'प्वायज़न' दिया गया है।"

डॉक्टर मेहता अब कुछ सहम गए। अपने चश्मे के ढीले फ्रेम को नाक के ब्रिज पर पुनः स्थिर करते हुए उन्होंने कहा—"मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। अभी मेरा राउण्ड पूरा नहीं हुआ है। इसलिए इस वक्त तो आप मुझे माफ़ करें। इस सिलसिले में मैं आपसे फिर मिलूँगा।" इतना कह कर वह ज्योंही दरवाजे से बाहर निकले, त्योंही हॉस्पिटल के कम्पाउण्ड के अन्दर आती हुई एक कार का हार्न सुनाई पड़ा। हम लोग जब बाहर आए, तब मैंने देखा—एक पुलिस-वान! रुकने पर उससे उतरे डी० एस० पी० महोदय और पाँच कान्सटेबिल!

मैं सोचने लगा कि यह पुलिसवान यकायक यहाँ कैसे आ गया? क्या भीखू से कपड़े पहनते हुए उन्होंने पुलिस-स्टेशन को फोन भी कर दिया था?—यह सोच-सोच कर मेरा रोम-रोम उनकी सतर्कता के प्रति श्रद्धाभाव से सिहर उठा। मैंने भाईसाहब की ओर जो ध्यान से देखा, तो मुझे उनका यह वाक्य पुनः स्मरण हो आया—तुम्हारी जगह होता, तो मैं भी यही करता।



: १२ :

जिन बातों के सम्बन्ध में हम केवल अनुमान लगाया करते हैं, उनका निश्चयात्मक स्वर हमें कभी नहीं मिलता। हम जानते हैं कि पत्नी कोई बात छिपा रही है अथवा झूठ बोल रही है; बात बना कर कह रही है या लपेटबाज़ी में इस प्रकार बतला रही है कि वस्तुस्थिति के मूलाधारों का हमें पता ही नहीं चल पाता—केवल इसलिए कि हमारे बहुतेरे अनुमान कभी-कभी मिथ्या भी हो जाते हैं।

श्रीमती विश्वास को विष दिया गया, यह बात निश्चित थी। लेकिन किस प्रकार दिया गया और किसने दिया, निश्चितरूप से न इसे भइया जानते थे, न मैं! एक बात और थी। जब श्रीमती विश्वास को विष दे दिया गया, तो वे हॉस्पिटल कैसे पहुँचीं? जो व्यक्ति किसी के प्राण लेना चाहता है और इसीलिए उसको विष देता है, वही उसको—प्राणरक्षा के लिए—हॉस्पिटल क्यों ले जाने लगा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि कुमारसाहब सन्देह के डर से उन्हें हॉस्पिटल ले गए हों! तात्पर्य यह कि कुमार साहब श्रीमती विश्वास को हॉस्पिटल ले गए या नहीं, यह भी अनिश्चित है। तब प्रश्न यह उठता है कि वे आख़िर हॉस्पिटल पहुँचीं कैसे?

डी० एस० पी० मिस्टर मित्रा के आ जाने पर भाईसाहब ही सब से पहले उनसे मिले थे और उन्होंने ही उनसे कहा था—"फ़ोन मैंने ही आपको किया था। मुझे ही गिरीश कहते हैं। मैंने ही आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है। मैं चाहता हूँ पहले आप हॉस्पिटल की पूरी छानबीन करलें। खून की पेशाब हुई है और वह बहाई गई है, इसका आसानी से पता लग जायगा। हॉस्पिटल के 'ए' वार्ड के मेहतर के, इसी वक्त, कलमबन्द बयान ले लिए जायँ, ताकि डॉक्टर मेहता को उसे कुछ समझाने का मौका न मिल सके।"

यह बात मेरे सामने भइया ने एकान्त में ले जाकर मौलश्री-वृक्ष के सामने वाले लाइटपोस्ट के पास खड़े होकर उनसे कही थी और इस बात को सुनकर डी० एस० पी० साहब थोड़ा मुस्कराए भी थे। मुझे पास ही खड़ा देख कर उन्होंने भइया से पूछा था—"आप ?" और उन्होंने उत्तर दे दिया था—"मेरा छोटा भाई सतीशचन्द्र, कानपुर ... कॉलेज में लेक्चरर है।"

डॉक्टर मेहता अभी अन्दर नहीं गए थे। वे पारकर पेंसिल को होठों से लगाए, कुछ सोचते हुए, धीरे-धीरे, टहल रहे थे। डी०एस०पी० के हाथ में एक नोटबुक थी—छोटी, बहुत आसानी से जेब के अन्दर पड़ी रहने वाली। बहुत जल्दी में उन्होंने कुछ नोट किया और भइया से लापरवाही के साथ, धीमे स्वर में बोले—"बहुत-बहुत शुक्रिया। सब से पहले मुझे यह जान लेने की जरूरत है कि श्रीमती विश्वास को आप कैसे जानते हैं ?"

मेरी ओर देखते हुए भइया ने कहा—"मैं तो अभी कल ही आया हूँ इसलिए उनके सम्बन्ध में ज्यादा जानकारी नहीं रखता, कुछ कह सकना भी मेरे लिए कठिन है। हाँ, सतीश अलबत्ता दो महीने से उनका अतिथि है। हम लोग इन दिनों दो ढाई महीने के लिए प्रायः हर साल पहाड़ चले आते हैं। मैं चाहे इस वर्ष यहाँ न भी आता, लेकिन सतीश के कारण मुझे आना ही पड़ा। श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध में मैं इतना ही कह सकता हूँ क वे एक सुसंस्कृत नारी हैं और बुद्धिजीवियों के साथ उनका सौजन्य इधर पहाड़ी-प्रान्त में घर-घर चर्चा का विषय बना हुआ है।"

इसके पश्चात् भइया मेरी ओर देखने लगे। इसका अर्थ मैंने यह समझा कि भइया चाहते हैं, इस प्रसंग में जो भी ज्ञातव्य बातें हों, मैं उन्हें प्रकट कर दूँ। अतएव मैंने कह दिया—"जहाँ तक मेरी जानकारी का सम्बन्ध है, मैं इतना कह सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास एक छोटी-

मोटी जायदाद की स्वामिनी हैं। कुमारसाहब उनके सगे देवर हैं। दोनों में बराबर विरोध रहता है। कुमारसाहब चाहते हैं कि वह उनके साथ रहें और उनकी हुकूमत के अन्दर अपनी आज़ादी बेच कर दिन व्यतीत करें। लेकिन श्रीमती विश्वास को यह सहन नहीं। आप जानते हैं, दुनिया के सारे झगड़े 'ज़र, ज़मीन और ज़न' इन तीन Z's के घेरे में आ जाते हैं। कल रात को ही एक सीमा तक काफ़ी झगड़ा उठ खड़ा हुआ था और उसका जो परिणाम हुआ, वह आपके सामने है।"

मिस्टर मित्रा कुछ सोचते हुए तुरन्त फ़ोन पर चले गए। अब वह क्या करेंगे, उनका अगला क़दम क्या होगा, मैं यह सोच ही रहा था कि इतने में वह फ़ोन करके लौट आए और डॉक्टर मेहता से बोले—"मेरा ख्याल है डॉक्टर मेहता आप ही हैं ?"

"जी फ़रमाइए !"—डॉक्टर मेहता ने उत्तर दिया।

इसी समय इन्सपेक्टर रहमतअली कुछ अन्य कान्सटेबिलों के साथ वहाँ आ गए। एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट इनसे दो मिनट पहले आ गए थे, जो निकट ही एक कुर्सी पर बैठे, कार्यवाही की देख-रेख करते हुए सिगरेट फूक रहे थे। रहमतअली ने एक सलाम दाग दी और डी० एस० पी० की आज्ञा की प्रतीक्षा में चुपचाप खड़े हो गए।

मिस्टर मित्रा तपाक से बोले—"हाँ, डॉक्टर साहब, क्या मैं जान सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास जिस वक्त हॉस्पिटल में दाखिल हुईं आप क्या कर रहे थे ? हाँ, फ़रमाइए साहब, मुझे उम्मीद है आप सच ही कहेंगे।"

रहमतअली ने इसी समय फाउण्टेनपेन जेब से निकाल लिया।

डॉक्टर मेहता बोले—"मुझे जो कुछ भी कहना है, वह मैं डिस्ट्रिक्ट जज के सामने कहूँगा !"

इस पर मिस्टर मित्रा उनकी बुद्धिमानी पर कुछ व्यंग से मुस्कराए—"हूँ···तो यह बात है ! अच्छा तो साहब, दो-दो हज़ार की दो

ज़मानतें और एक हज़ार का पर्सनल मुचालका दाखिल कीजिए। अब आप पुलिस-कस्टडी में हैं।"

डॉक्टर साहब कुछ परेशान-से दिखाई दिए। इसी समय कुमार साहब अपने आप अन्दर आ गए। भाईसाहब बोल उठे—"आप ही श्रीमती विश्वास के देवर श्रीमान् त्रिमल विश्वास हैं।"

इस पर कुमार साहब ने मिस्टर मित्रा की ओर उन्मुख होते हुए कहा—"गुड मोर्निंग !" और बगल में दबे हुए हैट को टेबिल पर रख दिया।

मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब को पहले ध्यान से देखा और फिर प्रतिनमस्कार का उत्तर देते हुए कहा—"गुड मोर्निंग कुमारसाहब, आइए, तशरीफ़ रखिए, मैं आपकी याद कर ही रहा था।"

कुमारसाहब कुछ परेशान-से जान पड़े। पेण्ट की जेब से एक चेक-डिज़ाइन का रूमाल निकाल कर उन्होंने अपने मुँह को पोंछ लिया और बोले—"कइए, क्या उकुम ऐ ?"

इस पर मिस्टर मित्रा ने प्रश्न किया—"आपकी स्टेट से सरकार को क्या मालगुज़ारी मिलती रही है ?"

कुमार साहब बोले—"एप्राक्सीमेटली ट्वैन्टी थाउज़ेंड !"

"हूँ, तो आप बड़े आदमी हैं। मेरा ख्याल है आप को यह मंज़ूर नहीं है कि 'हसबेंड' के गुज़र जाने के बाद आपकी भाभी साहबा इस दुनिया में रहें और जायदाद से अपने गुज़ारे का खर्च बराबर लेती रहें। ज़मीदारी खत्म हो जाने के बाद ज़रूर आपने कोई नया बिज़नेस स्टार्ट किया होगा ?—एम आय रॉंग ?"

अब मुझे बोलना पड़ा—"आपका एग्रीकल्चर फार्म लगभग दो सौ बीघे का है और पिछले साल भर में जो ट्रैक्टर, प्लाउज़ और दूसरी मशीनें आई हैं, वे सब करीब-करीब एक लाख की हैं। दो पक्के कुएँ उस फार्म में बनवाए गए हैं, जिनमें 'ट्यूबवेल्स' लगे हुए हैं।"

मेरे इतना कहने पर मिस्टर मित्रा थोड़ा मुस्कराए और कुमारसाहब बोले—"आल दी योर बिजनेस इज़ बेस्ड ऑन अपोज़िट पार्टी, एन्ड दी इन्फ़र्मेशन इज़ करेक्ट—क्वाइट करेक्ट !"

कुमारसाहब की ओर से ध्यान हटाते हुए मिस्टर मित्रा ने यकायक पूछा—"डॉक्टर साहब, कल रात को 'नाइट ड्यूटी' पर कौन-कौन नर्सेज़ थीं ? उन्हें मैं देखना चाहता हूँ।"

"मिस रोज़ा, रजिस्टर पेश करो।"

कुछ क्षणों के अन्दर ही चार नर्सें उनके सामने थीं। मिस्टर मित्रा बोले—"मिसेज़ विश्वास किसके चार्ज में थीं ?"

एक नर्स ने आगे बढ़कर कहा—"जी मेरे, मेरे चार्ज में !"

अन्य नर्सों की ओर आँख उठा कर उन्होंने कहा—"आप लोग जा सकती हैं।"

जब वे चली गईं तो मिस्टर मित्रा ने उससे पूछा—"नेम प्लीज़ ?"

नर्स—"मिस रोज़ा हडसन।"

मिस्टर मित्रा—"हाँ, मिसेज़ विश्वास किस वक्त यहाँ आईं ?"

मिस रोज़ा हडसन—"नियर एबाउट थ्री ए० एम०।"

"आई सी।" रहमतअली आज्ञा पाकर कब के बैठ चुके थे और मिस्टर मित्रा के साथ ही वह स्वयं भी सब कुछ अलग नोट करते जाते थे।

अब डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए और बोले—"मुझे ज़रा फ़ोन करना है।"

मिस्टर मित्रा—"गोकुल, साथ जाओ !—जाइए साहब।"

डॉक्टर साहब आगे-आगे, गोकुल पीछे-पीछे।

मिस्टर मित्रा—"एस, मिस रोज़ा, क्या आप बतला सकती हैं कि डाक्टर साहब ने जो दवा मिसेज़ विश्वास को दी, वह क्या थी ?—और उसका मक़सद किस 'नेचर' की तकलीफ़ दूर करने का था ?"

मिस रोज़ा चुप थी।

मिस्टर मित्रा—"देखिए, मिस रोज़ा, श्राप बिल्कुल ठीक-ठीक बतला दीजिए। वरना हमें श्राप को भी पुलिस-कस्टडी में लेना पड़ेगा। डू यू फ़ालो माय प्वाइंट ?"

मिस रोज़ा—"प्रिस्क्रिप्शन फ़ाइल में है। श्राप देख सकते हैं। मैं श्रभी लिए श्राती हूँ।"

इतने में फ़ोन की घंटी बजी श्रौर एक नर्स ने ज्योंही उसका रिसीवर पकड़ा, त्यों ही मिस्टर मित्रा बोले—"डोन्ट टच इट मैडम, परहैप्स दी काल इज़ माइन।" श्रौर इतना कह कर उन्होंने रिसीवर उठा कर कान में लगाते हुए कहा—"श्रो···, ठीक है। एस, एस, श्रच्छा एक काम करो, तुम्हारी यहाँ ज़रूरत नहीं है। कैमिल्स बैंक रोड जहाँ से शुरू होता है, बस ठीक वहीं मिसेज़ विश्वास का बँगला है। एस, वहाँ जाकर कुमार साहब के जितने 'सर्वेन्ट्स' हैं, सबको हिरासत में लेकर पुलिस-स्टेशन पर हाज़िर करो। एस···मुझे श्रभी यहाँ वक्त लगेगा···श्रो एस···ठीक ··· शाबास···श्रो० के० श्राय विल सी इट···· बट डोन्ट डिले···" श्रौर इतना कह कर वह मुस्कराए श्रौर फिर 'रिसीवर' रख दिया। श्रब वह यथास्थान पर श्रा बैठे श्रौर कुमार साहब से पूछा—"एस, कुमारसाहब, श्राय थिंक, एक श्रोर तो श्रापने उन्हें ज़हर दिया श्रौर दूसरी श्रोर श्राप खुद ही उनको हॉस्पिटल भी ले श्राए, ताकि श्राप पर इस बात का शक तक न किया जा सके कि ज़हर देने वाले भी श्राप ही हैं ! खूब साहब, खूब !" कह कर मिस्टर मित्रा ने अपना सर हिलाया श्रौर होठों को बिचका दिया।

कुमारसाहब परेशान होते-से बोले—"ज्वायज़न-वायज़न कुच नेंई दिया गया। ये श्रापका सिरफ़ इमैजिनरी बात ऐ ! बाबी को मैं हॉस्पिटल नेंई लाया, वो खुद श्राया।"

रहमतश्रली का फाउण्टेनपेन चल रहा था श्रौर ए० डी० एम०

जहाँ कुछ विशेषरूप से पूछना चाहते, वहाँ प्रश्न कर शंका-निवारण करते चलते थे। मिस्टर मित्रा ने कुमारसाहब से प्रश्न किया—"कुमारसाहब, आप तो ईश्वर को मानते हैं!…ठीक, सच कहिएगा, क्या खाना आपने भाभी के साथ खाया था? और खाने के साथ कोई चीज अपने हाथ से उठा कर उनकी थाली में डाली थी?"

कुमारसाहब सहसा घबरा उठे। बोले—"नेईं, पहले बाबी ने खाना खाया। उसके बाद हमने।"

इस पर ए० डी० एम० और डी० एस० पी० दोनों एक साथ, एक दूसरे को देखकर, मुस्करा उठे, जिसको विमल विश्वास ने तुरन्त भाँप लिया और झट वह अपना कथन सुधारते हुए बोले—"परहैप्स आय एम राँग…" कुछ क्षण ठहर कर—"एस, खाना हमने बाबी के साथ खाया था।"

आँखें कड़ी करते हुए डी० एस० पी० ने कहा—"यू आर मोस्ट कनिंग फ़ेलो।" और रहमतअली से बोले—"दोनों बातें नोट करलो!"

"खाना आपने किस वक्त खाया था?" मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब से फिर प्रश्न किया।

"नाइन थट्टी!" कुमारसाहब ने उत्तर दिया।

अब मिस्टर मित्रा ने अपना आसन बदल कर, कुमार साहब की आँखों में आँखें डाल कर घूरते हुए कहा—"…हूँ, तो आपकी भाभी खाना खाने के बाद फ़ौरन अपने रेडियो पर जा बैठीं और उनके पेट में यकायक दर्द हुआ। वह उठीं, घबराईं, एकदम आगे बढ़ीं और गिर पड़ीं। उसी वक्त उनको 'ब्लड' की पेशाब हुई?"

यह सुन कर कुमारसाहब को पसीना आ गया। अपने को सँभालते हुए बोले—"शब गोलमाल, कतई मिथ्या। खाना खाने के बाद वो बाबी पलंग पर सो गिया। फिर वो कब उठा, क्या खाया-पीया, कब इधर आया, कुछ नेईं मालुम।"

"एस, कुमारसाहब !" इस बार मिस्टर मित्रा ने पूछा—" "तो जब आपकी भाभी को थोड़ा होश आया, तब उन्होंने मिस्टर सतीश को फ़ोन किया और 'बाईचान्स' रिसीवर आपके हाथ लगा और तब आप इतमीनान से यहाँ तशरीफ़ लाए !"

कुमार साहब सोच विचार में पड़ गए। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। बोले—"बात तो आपका ठीक ऐ। बट हाउ कुड यू स्मेल इट ? आय वण्डर, रियली।"

मिस्टर मित्रा मुस्कराए—"दिस इज़ माई डेली रुटीन'''। एस, मिस्टर सतीश, आपके साथ जब श्रीमती विश्वास की इतनी इन्टीमेसी थी, तो तबीयत बहुत घबराने पर भी उन्होंने क्यों आपको याद नहीं किया ? मिस्टर गिरीश, डू यू फ़ालो माई प्वाइन्ट ?"

मुझे कहना पड़ा—"कल मेरे यहाँ भाई साहब के साथ भाभी, मेरी अपनी भाभी और भतीजा प्रकाश भी आया था। हमारे यहाँ कुछ फ्रेण्डस् भी निमन्त्रण में आए थे। काफी देर हो गई थी। जब सब लोग चले गए, तब भी ग्रामोफ़ोन रिकार्ड्स, विद लाउड स्पीकर, बराबर बजते रहे। आप जानते हैं, रात को यहाँ कभी-कभी सर्दी भी पड़ जाती है और कल तो थोड़ी वर्षा भी हो गई थी। ग्यारह बजे हम लोगों ने अपने दरवाजे बन्द कर लिए; लेकिन रिकार्ड्स तो बज ही रहे थे। ऐसे कोलाहल में सम्भव है श्रीमती विश्वास ने मुझे याद भी किया हो। आप थोड़ा धैर्य रक्खें, ईश्वर चाहेगा, तो वह बच जायेंगी और अपनी सच्ची कथा स्वयं बता देंगी।"

मिस्टर मित्रा मुस्कराए और बोले—"कॉलेज में आपका सबजेक्ट क्या साइकलाजी है ?"

मुझे कहना पड़ा—"मैं आपके अनुभव की दाद देता हूँ।"

मैंने भाईसाहब की ओर देखा, वह प्रसन्न थे। लेकिन बड़ी देर से चुप थे, इसलिए बोले—"मिस्टर मित्रा, शायद आप यह नहीं जानते

कि पूजा किए बिना मैं जल भी नहीं लेता और जिस ढंग से आप 'इनवेस्टीगेशन' कर रहे हैं, शाम हो जायगी। कितना अच्छा हो कि आप हम लोगों को इस जाल से मुक्त कर दें। अजीब हालत है इस दुनिया की, होम करते हाथ जलता है। मैंने एक बात की आपको सूचना क्या दी, आपने मुझे ही अपने बन्धन में कस लिया।"

मिस्टर मित्रा थोड़ा मुस्कराए। बोले—"मैं आपको ज्यादा कष्ट नहीं दूँगा। मेरा ख्याल है, आप आए हैं, तो कुछ दिन यहाँ रहेंगे ही। अगर जरूरत पड़ी, तो घण्टे आध घण्टे के लिए, आप को फिर थोड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। आप जानते हैं, हम लोग 'लाइफ़ और डेथ' के साथ हमेशा खेलते हैं। एक-आध दिन आप भी खेल लीजिएगा, तो सन्ध्या-पूजन में एक तरह से आपको मदद ही मिलेगी!"

भइया बोले—"अच्छी बात है, देखा जायगा।"

तत्काल मिस्टर मित्रा बोले—"तुमने जो कुछ नोट किया है, उसे आप लोगों को पढ़ लेने दो और सबके सिगनेचर ले लो!"

पहले विमल विश्वास, फिर भइया और तब मैंने, क्रम-क्रम से तहरीर को पढ़कर, अपने-अपने स्थानों पर, हस्ताक्षर कर दिए। हम लोग ज्योंही उठकर चलने को हुए, त्योंही मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब से कहा—"एस, विमल साहब, बीस-बीस हजार की दो जमानतें और दस हज़ार का 'पर्सनल' मुचालका दाखिल कीजिए। अब आप भी 'पुलिस कस्टडी' में हैं।"

इसी समय मिस रोजा ने डॉक्टर साहब का 'प्रिस्क्रिप्सन' मिस्टर मित्रा के सामने रखते हुए कहा—"यह है, और ये हैं डॉक्टर साहब के साइन!"

"थैंक्यू वेरी मच!" मिस्टर मित्रा बोले—"रहमतअली इसकी कापी कर लो और डॉक्टर साहब के साइन करवा लो।...और देखो, अब फ़ौरन जाकर कुमार साहब के बँगले की तलाशी लो।..." फिर

विमल विश्वास की ओर देखकर "जाइए साहब, तलाशी से लौटकर जमानत दाख़िल कीजिए !"

घड़ी की ओर देखकर—"देखिए, बारह बजने वाला है। चार बजे से पहिले जमानत यदि दाख़िल न हुई, तो आपको रात भर हवालात की हवा खानी पड़ेगी।"

अब ज्योंही हम लोगों ने ए० डी० एम० और डी० एस० पी० को नमस्कार किया, त्योंही मिस्टर मित्रा मुस्कराए और बोले—"एस, एस, आप लोग जा सकते हैं अब···थैंक्यू वेरी मच···"



: १३ :

और हम लोग जब घर लौटे, तब बारह बज चुके थे। बँगले के अन्दर पहुँचने पर मैंने देखा,—भाभी वराण्डे में खड़ी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही हैं। टैक्सी को विदा करने के पश्चात् मैं अन्दर गया, तो भाभी ने कहा—"सतीश, आज तुमने बड़ा गड़बड़ किया। तुम जानते हो सन्ध्या-पूजन के बिना वे जल भी नहीं पीते। खाना रक्खा-रक्खा ठण्डा हो गया। अभी उनको स्नान-ध्यान करने में दो-तीन घण्टे लगेंगे। मुन्ना को बहुत पोट-फुसला कर खिलाया है। बार-बार कह रहा था—"बाबू जी नहीं आए! चाचा कहाँ गए माँ ?"

मैंने पूछा—"है कहाँ ? जरा ध्यान रखना, कहीं बाहर न खिसक जाय! वैसे तो कोई डर नहीं है, लेकिन सबसे बड़ा डर गिर जाने का ही रहता है।"

भाभी बोलीं—"अभी टेनिसकोर्ट में साइकिल चला रहा था। बड़ी मुश्किल से सुला पाया है। दो बार भीखू को भेजा, तुम्हारा काम ही नहीं खतम हो पाया था। बेचारा चुपचाप लौट आता रहा। कैसी तबीयत है श्रीमती विश्वास की ?"

इसी क्षरण एक पहाड़ी पक्षी कमरे में घुस गया और कई मिनट तक पंख फड़फड़ाता हुआ, कमरे के चक्कर काट, अन्त में अपना मार्ग पा ही गया। ध्यान बट गया था। मैंने कहा—"जाते-जाते पहले मैं उनके पास ही गया था। अब उनकी देख-रेख एक लेडीडॉक्टर करती हैं—मिस रंधावा! वे एम० डी० हैं और अभी हाल ही में बम्बई से आई हैं।" एक क्षरण रुक कर मैंने कहा—"तबीयत ठीक हो रही है। जान पड़ता है, रक्त बहुत निकल गया है। कमजोरी बहुत आ गई है। पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उठना चाहती थीं किन्तु नर्स ने मना कर दिया। प्राण जाने में कोई कसर तो नहीं रह गई थी, लेकिन

बच गईं ! बाद में पहुँचने पर कुमार साहब ने डॉक्टर को मिला लिया, वरना वे गिरफ़्त में आ जाते और फिर उनका बचना कठिन था। इस वक्त तो उनके कमरे की पुलिस तलाशी ले रही है।"

भाभी बोलीं—"तलाशी हो रही है लेकिन मुझे डर है कि श्रीमती विश्वास के यहाँ कोई सन्देह की चीज़ न निकल आए। हालाँकि ऐसा सम्भव नहीं है, वक्त की बात होती है···ख़ैर ! चलो, खाना खालो। रामलाल ताज़ी सेंक दो।"

"यह कैसे हो सकता है भाभी···।"

बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि भाभी बोल उठीं—"उन्हें तो अभी समय लगेगा, कम-से-कम दो घण्टे; तब तक तुम भूखे बैठे रहोगे ? अगर तुम भी किसी की पूजा करने लग गए हो, तो बात दूसरी है !"

किंचित मुस्करा कर मैंने कह दिया—"भाभी पूजा तो संसार में मैं केवल एक व्यक्ति की करता हूँ और वह तुमको मालूम भी है ?"

भाभी हँसने लगीं। बोलीं—"वह बात अलग है। पत्थर की जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनकी पूजा साकार मनुष्य की पूजा से भिन्न होती है।"

भाभी ने इतना कहा ही था कि मुझे बोलना पड़ा—"यहाँ तुम भूल कर रही हो भाभी, पत्थर के आत्मा नहीं होती और भइया के अन्दर एक महान् आत्मा का निवास है।"

भाभी मेरी ओर देखती रह गईं, फिर कुछ सोचकर बोलीं—"यहाँ मैं तुमसे हार मानती हूँ। लेकिन उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा है कि सतीश को खाना खिला दो।"

मैंने कह दिया—"हाँ उन्होंने जरूर कहा होगा, लेकिन अब मैं भी तो कहता हूँ। मैं तो साथ ही खाना खाऊँगा।" तब भाभी ने एक तश्तरी में काजू और किशमिश लाकर मुझको दे दिए और उन्हीं को

टूँगता हुआ मैं अपनी डायरी लिखने लगा। यद्यपि मेरा चित्त बहुत अस्थिर था और हॉस्पटिल का दृश्य बार-बार, चेतना के पट पर नाचने लगता था किन्तु मैंने सोचा डायरी में दो शब्द लिख ही दूँ : "हमको देखना य है कि किन-किन अवसरों पर हमसे ग़लती हो जाती है। सबसे बड़ा अवसर यह भूख का है। हमको प्रत्येक प्रकार की भूख के समय यह देखना है कि खाने का उचित समय आ गया है या नहीं। जो वस्तु मुझे खाने को दी जा रही है, उसे मैं पचा भी पाऊँगा या नहीं !"

इतना लिखकर कलम रख दी। एक टुकड़ा मिश्री, एक काजू और एक किशमिश मुँह में डाल लिया। फिर ख्याल आ गया कि आज विमल विश्वास को पता चल गया होगा कि सम्पत्ति के मोह में पड़कर किसी आत्मीय की जान ले लेने की चेष्टा का क्या परिणाम होता है। और डायरी में एक वाक्य मैंने यह भी जोड़ दिया :

"सब कुछ करो मगर यह मत सोचो कि जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ उसको कोई देख नहीं रहा है। और मेरा यह पाप-कर्म निर्विरोध सफल ही हो जायगा।"

संयोग की बात कि इतने में अविनाश आ टपका।

मैंने हाथ मिलाते ही उसका वह स्वागत किया कि वह भी जानता होगा : सारा समाचार ज्यों-का-त्यों सुना देने के बाद, जब उसने पूछा—"विमल साहब हैं कहाँ ?"

तो मेरे मुँह से निकल गया—"हिरासत में ! बहुत ज़ोरों से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तक जमानत नहीं हुई है। जाइए बीस हज़ार की जमानत कीजिए जाकर। मगर तारीख पड़ने पर अगर हाज़िर न हो, तो रोइएगा नहीं और मेरी शिकायत भी न कीजिएगा कि बतलाया नहीं !"

अविनाश बोला—"आदमी है तो पूरा 'लोफ़र' पर किया भी क्या

जाय ! दोस्त तो है ही ! लेकिन मैं तो अभी दिल्ली से नहीं, लखनऊ से आ रहा हूँ। शाम के छै बजे घर से निकला हूँ—देहरादून एक्सप्रेस साढ़े सात बजे वहाँ से चलता है। बहुत थक गया हूँ। तीन घण्टे से पहले नहीं जा पाऊँगा।" मुझे हँसी आगई। मेरे मुँह से निकल गया,—"जाओ तुमको बख्श दिया। वह अभी बगल के कमरे में हैं और उसके यहाँ तलाशी हो रही है। मगर खबरदार, अगर जाकर मिले तो बिना फँसे न रहोगे। मामला संगीन है। अभी समझ बूझ लो !··· कहता हूँ, खाना-पीना, विश्राम सब धरा रह जायगा।···और सन्देह में यदि पुलिस ने तुमको भी लपेट लिया, तो एक जहमत अलग उठ खड़ी होगी।"

भीखू सामने आ गया था। मैंने उससे कहा—"जाओ, इनको पहले गरम पानी दो—हाथ-मुँह धोएँ, फिर चाय पिलाओ, बहुत जल्दी।··· अच्छा अविनाश बाबू आप यहाँ बैठिए, मैं ज़रा अन्दर भी देख लूँ क्या देरवार है ?" और इतना कहकर मैं जो अन्दर गया, तो क्या देखता हूँ कि भाईसाहब चौके से चिल्ला रहे हैं—"अरे, स···तो···श चलो भाई ! मैंने पहिले से कह दिया था कि तुम खाना खा लेना !"

भाभी बोलीं—"मैंने भी तो कहा था कि खालो।"

भाईसाहब बोले—"कुछ नहीं कहा था तुमने ! देवर को बिलकुल बच्चे की तरह से पोट-फुसला के रक्खा। जाता है। मगर तुम तो ख़ाली यह जानती हो कि दरवाजे से निकलते समय उसको झुकना पड़ता है। यह नहीं समझतीं कि वह अभी बच्चा है और यह भी नहीं जानता कि आम के अन्दर जो गुठली होती है, उसके भीतर भी एक बीज रहता है, जिसका स्वाद पहले कुछ अटपटा लेकिन बाद में मधुर निकलता है।"

इस पर भाभी कुछ नहीं बोलीं। खाना परोस दिया गया। भाई साहब ने जब खाना शुरू किया तो कहने लगे—"और सब तो ठीक है, लेकिन आज तुमने खीर नहीं बनवाई। मेरे लिए तो कोई ख़ास बात

नहीं है लेकिन सतीश का तो पेट नहीं भरेगा।"

भाभी बोलीं—"दूध फट गया है। इसलिए खीर नहीं बन सकी, शाम को बनेगी।"

भाईसाहब बोले—"अब शाम को क्या बनेगी? चार बज गए। मेरे लिए तो दूध ही काफ़ी रहेगा।"

"कमरे में कौन है?—कोई आया है?" एक क्षण रुककर भाई साहब ने पुनः प्रश्न किया।

"वो अविनाश है!"—मैंने कह दिया।

भाईसाहब तपाक से बोले—"सतीश, तुम अभी व्यवहार में बहुत कच्चे हो। तुमको अविनाश से यह कहना चाहिए था कि खाना तैयार है। फ़ौरन से पेश्तर स्नान कर लें और खाना खालें; इसके पश्चात् कुछ भी किया जाय! अब हम लोग यहाँ भोजन कर रहे हैं, और वह वहाँ अकेला बैठा है! कितना भद्दा मालूम पड़ता है।"

खाना खाने के बाद ज्योंही मैं बाहर आया, त्योंही रहमतअली तलाशी लेकर बाहर निकल रहा था। बोला—"बस साहब, एक मिनट, देखिए ये चीज़ें हम यहाँ से लिए जा रहे हैं। आप देख लीजिए और इस परचे पर 'साइन' कर दीजिए।"

मैंने सब चीज़ें देखकर परचे पर 'साइन' कर दिया और मेरे देखते-देखते सब लोग फिर पुलिस-वान की ओर चल दिए। श्रीमान् विमल विश्वास साथ में थे। उनका चेहरा उतरा हुआ था और बहुत परेशान थे। उनकी आँखों में आँसू डबडबाए हुए थे। मैंने उनसे तो कुछ नहीं कहा, पर मैं जो अविनाश के पास गया, तो मुझे अपनी डायरी का ख्याल हो आया। उसमें आज जो पहला वाक्य मैंने लिखा था वह यह था: जब हम से एक के बाद एक भूल होती ही जाती है, तब भी हमको यह न समझ लेना चाहिए कि वह भूल हमारे अनजान में हुई है। केवल ध्यान इस बात का रखना है कि वह भूल किस अंश की है।

जैसे मैंने अविनाश के लिए चाय और टोस्ट की व्यवस्था कर ही दी थी, वैसे ही मुझे यह तुरन्त सोच लेना चाहिए था कि अब तो हम सब खाना खाने जा रहे हैं, इस तरह खाने के समय उसकी कम्पनी से हमें जो आनन्द मिलता, उससे हमने अपने आपको वञ्चित तो कर ही लिया, साथ ही अविनाश को भी यह सोचने का अवसर दिया कि हमारी भोजनशाला में अविनाश का कोई भाग न है, न सम्भव है। यह सोच-कर मुझे सचमुच पीड़ा हुई और इसके निवारण के लिए मैंने कलम वहीं रख दी और अविनाश के पास जाकर मैंने उससे कह दिया—"क्षमा करना बन्धु, आज कुछ ऐसा हो गया कि भोजन में हमको चार घण्टे का विलम्ब हो गया। और मैंने देखा कि तुमको अभी देर है, इसलिए······"

तौलिए से सिरका पानी पोंछ कर उसने चाय का एक घूँट लिया और बोला—"दैट्स ऑल राइट, दैट्स ऑल राइट! डोन्ट थिंक दैट आय एम ए थर्ड परसन!"

"तब चलो, अब भोजन करो और फिर उस मुर्गे की जमानत का इन्तजाम! सोचो मत! ठीक है, ठीक है, बाल तुम्हारे बहुत खूबसूरत हैं और श्रीमती विश्वास तुम्हारी रोज याद किया करती थीं····।"

इतने में भीखू आकर बोला—"मुन्ना जागिगा है औ रोय रहा है।"

मैंने कहा—"टैक्सी लाओ। हमें अभी जरा बाजार जाना है।" मैं सोचने लगा—भाईसाहब केवल एक गरम सूट लेकर चले हैं, इससे काम नहीं चलेगा। यहाँ रोज पानी बरसता है।

इतने में अविनाश बोला—"मैं खाना अभी पाँच मिनट में खाए लेता हूँ। तब तक ठहरो। मैं भी चलूँगा। मुझे विमल के यहाँ छोड़ देना!"

मुझे हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"अच्छा! वह है मेरा

दुश्मन और उसी को छुड़ाने के काम में तुम मेरी मदद चाहते हो ? बहुत खूब !"

अविनाश बोला—"बको मत, तुमको मालूम होना चाहिए कि हम पाप से घृणा करते हैं, पापी से नहीं।"

मैं सोचता रह गया क्योंकि अविनाश ठीक कह रहा था।

शाम को जब हम मार्केटिंग से लौटे और भइया, मुन्ना और भाभी के लिए गरम कपड़े ले आए, मुन्ना के लिए एक डब्बा खिलौनों का भी खरीद लाए, तो भइया बोले—"एक बात है कि खर्च करने में तुमने रेकार्ड क़ायम कर रक्खा है। मेरा ख़्याल है अब तो तुम्हारे पास दमड़ी भी बची न होगी !"

भाभी बोलीं—"और तो सब ठीक है मगर यह ऊलन साड़ी तुम हमारे लिए खूब ले आए। मैंने ऊलन साड़ी अब तक नहीं पहनी थी। मगर बाबू इसमें प्योरऊल तो नहीं है। मुझे तो इसमें सिल्क मिली हुई मालूम पड़ती है।"

मैंने देखा—भइया जरा-सा मुस्कराए और घूम कर चल दिए। फिर ठहरे और दरवाज़े पर खड़े होकर बोल उठे—"बात यह है कि जिस तरह सतीश के हाथ में फ़ालतू रकमें रहा करती हैं, उस तरह अगर मुझको भी कोई देनेवाला होता, तो तुमको तो नहीं, मगर अपनी उस भाभी को मैं भी ले आता !" और इतना कहकर भाईसाहब चले गए।

मैंने अनुभव किया कि जैसे भइया की वाणी में एक दर्द है। भाभी बोलीं—"तुम्हारे भइया कभी-कभी इन मामूली-सी बातों में ऐसी बात कह जाते हैं, जिनमें बड़ा मर्म छिपा रहता है। मैंने तो यों ही कह दिया था। बात यह है कि अपने तरफ़ गरम साड़ी पहनने की चाल भी तो नहीं है। खैर जाने दो। ए, भीखू···देखो, दूध गरम होगया ?"

भीखू चला गया।

तब भाभी मुझसे कहने लगीं—"ये श्रीमती विश्वास कौन हैं बाबू ? इनके पति क्या काम करते हैं ? और ये जिसने इनको जहर दिया है, क्या सचमुच इनके सगे देवर हैं ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी, दुनिया बड़ी लम्बी-चौड़ी है। आदमी की शकल में जानवर भी इसी दुनिया में रहते हैं। श्रीमती विश्वास चूँकि विधवा हैं, और जायदाद की स्वामिनी हैं, इसलिए यह देवर होकर भी उनकी जान लेने के सम्बन्ध में बिलकुल पिशाच बन गया है। वह नहीं चाहता कि उनके हाथ में उसकी मर्जी के खिलाफ़ एक पाई भी पड़े। यह बँगला इनके स्वामी का ही बनवाया हुआ है और इसको इतना भी सहन नहीं है कि वह इस पर कोई अधिकार रक्खें !"

इतने में भीखू दूध लेकर आ पहुँचा। भाभी ने कहा—"दूध रख दो जाकर और बाबू को बाजार से मलाई नहीं तो रबड़ी ले आओ और रामलाल से कहो दो पूड़ियाँ गरम-गरम अभी सेंक दे। और उनसे भी जाकर पूछ लो अगर खाना पसन्द करें।"

इतने में मुन्ना आ गया और बोला—"ताता खिलौना तूत गया।"

मैंने उसे गोद में उठा लिया।

इस समय रात के नौ बज रहे थे। हवा डोल रही थी और सरदी बढ़ गई थी। अविनाश अब तक नहीं लौटा था। इतने में भीखू ने आकर कहा—"अभिनाथ बाबू पिछवाड़े ते आय गे हैं औ पूछि रहे हैं कि देखौ छोटे भइया सोय तो नहीं गे ?"

मैं जो उसके पास गया तो वह टेबिल पर अपना पर्स खोले हुए पैसा-रुपया और नोट्स गिन रहा था। मुझको देखते ही बोला—"मैंने कोशिश तो बहुत की, लेकिन क़ायदे की कार्यवाही करते-करते जो मैं ए० डी० एम० के रूम में पहुँचा तो मालूम हुआ कि वे उठ गए हैं। पूछने पर पेशकार ने बतलाया कि वे यहाँ से सीधे क्लब जाते हैं। अब

आज कुछ नहीं हो सकता है।"

आज मैंने अपनी डायरी में जो अन्तिम वाक्य लिखा वह यह था :

संसार के सारे काम अपने समय पर ही होते हैं। एक मनुष्य है जो क्षण-क्षण पर चूकता रहता है।



: १४ :

बाज़ार से लौटकर आते ही मुझे पता चला कि भइया तो श्रीमती विश्वास को देखने के लिए हॉस्पिटल गए हुए हैं। मैं नहीं जानता कि क्यों मुझे इस समाचार को सुन कर प्रसन्नता हुई। भाभी से मैंने पूछा—"कब तक लौटने के लिए कह गए हैं ?"

भाभी बोलीं—"यह तो कुछ नहीं बतलाया, लेकिन इतना मैं जानती हूँ कि किसी भी स्त्री के पास वे दस-पन्द्रह मिनट से ज्यादा नहीं ठहर सकते।"

भाभी के इस विश्वास पर मैं कोई टीका-टिप्पणी नहीं करना चाहता, लेकिन किसी भी पुरुष के लिए किसी भी नारी का यह दावा करना कि वह उससे बोलेगा नहीं, कोई सम्बन्ध जोड़ेगा भी नहीं, बिलकुल निरर्थक है। सारी बात व्यक्तित्व के प्रभाव पर निर्भर है।

अब शाम हो गई थी और बत्तियाँ जल गई थीं। मैंने हॉस्पिटल को फ़ोन किया तो भइया ने कहा—"ओ ! सतीश, मैं तो खैर आ रहा हूँ, लेकिन तुमको आना पड़ेगा। श्रीमती विश्वास बहुत कमज़ोर हो गई हैं और हम लोगों में से कोई जब यहाँ नहीं रहता है तो वह यही सोचने लगती हैं कि अब तो यहाँ से अच्छा होकर निकलना तो मेरे लिए बहुत कठिन है ? अब भी उनकी आँखों में आँसू भरे हुए हैं; खैर, तुम आ जाओ, और देखो, मुन्ना सोया तो नहीं ? उसको भी लेते आओ। वह साथ में रहेगा, तो तुम यहाँ से जल्दी जा सकोगे। इसके सिवा श्रीमती विश्वास चाहती भी हैं कि तुम उसको साथ लेते आओ।"

इस प्रकार मुझे श्रीमती विश्वास के यहाँ जाना पड़ा।

पलकों के नीचे जो उपत्यकाएँ हैं, वे कुछ मुरझा-सी गई हैं। नाखूनों की गुलाबी हल्की पड़ गई है। तकिए पर सिर रक्खे हुए वह चुपचाप

लेटी हुई हैं और अब भी उनकी आँखें भरी हुई हैं। मैंने पूछा—"कैसी तबीयत है ?" तो उलहने के स्वर में बोलीं—"ठीक है।" और सिसकियाँ भरकर रो पड़ीं और कहने लगीं—"तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है यहाँ। मगर अब तुमको भी बुलाना पड़ता है।"

मैं जानता हूँ कि यह स्थिति मेरे लिए चिन्त्य है। मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीमती विश्वास बहुत कुछ सत्य कह रही हैं किन्तु भइया के रहते मैं उनके यहाँ अधिक समय बिता नहीं सकता। कदाचित इसी-लिए जब भइया ने मुझे फ़ोन पर बुलाया, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

श्रीमती विश्वास को रोता हुआ देखकर नर्स बोली—"आप कृपा करके ऐसी कोई बात न कहें, जिससे इन्हें दुख हो। और दीदी मैं आपसे केवल यही निवेदन करूँगी कि अगर आप इस तरह रोएँगी, तो आप जल्दी अच्छी न हो पाएँगी !"

थोड़ी देर बाद हेड सर्जन साहब भी निरीक्षण करते-करते आ पहुँचे और दो-चार मिनट परीक्षा करने के बाद बोले—"ब्लड की ज़रूरत पड़ेगी। और हमारे यहाँ तो स्टोर में अब इतना कम है कि उससे हम ले ही क्या सकते हैं ! इसलिए कल सुबह तक इसका प्रबन्ध आपको करना होगा। मुझे इस परिस्थिति का पहले से कोई आभास न था।

हेडसर्जन साहब की बात सुनकर मैं अवसन्न हो उठा। मैंने उत्तर दिया—"अभी तो मैं कुछ कह नहीं सकता, लेकिन दो-एक घण्टे में मैं कुछ प्रबन्ध करने की चेष्टा करूँगा।"

हेड सर्जन साहब अपने हैट को सिर में रखते हुए बोले—"देखिए, अगर कल इनको ब्लड नहीं दिया गया, तो फिर इनका 'सरवाइव' होना कठिन हो जायगा। इसलिए प्रबन्ध तो करना ही होगा।"

मैं इसका क्या उत्तर देता, अतएव जब चुप रह गया, तो वे बोले—"किसी भी हट्टे-कट्टे कुली को पकड़ लीजिए। सैकड़ों तो मारा-मारा

फिरता है ! आपको तो मालूम होगा 'वार' ने इन्सान के ख़ून को एक काफ़ी हद तक सस्ता बना दिया है ।"

हेड सर्जन साहब की बात सुनकर मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि किसी ने मेरी छाती पर छुरा भोंक दिया, किन्तु जब बात सही कही जा रही है, तब अपनी प्रतिक्रिया को लेकर करूँगा भी क्या ?

मुन्ना को चारपाई पर बिठाल कर श्रीमती विश्वास ने उसकी हथेलियाँ चूम लीं। बल्कि मैं अगर मुन्ना को गोद में ले न लेता, तो सम्भव था कि वह अब तक उन नन्हीं-नन्हीं हथेलियों को चूमती ही रहतीं, किन्तु जब मैंने मुन्ना को अलग कर दिया, तो उन्होंने करवट बदल ली और उनकी आँखें झपक गईं ।

मैंने पुकारा भी—"श्रीमती विश्वास ! विश्वास कीजिए कि मैं आपके पास ही बैठा हूँ और मुन्ना मेरी गोद में है ।" किन्तु वे बोलीं नहीं कुछ । शायद उन्हें मूर्छा आ गई थी ।

इस मूर्छा का कारण मैं समझता हूँ । मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास ने मुन्ना की हथेलियाँ चूमते हुए मन-ही-मन यह अवश्य सोचा होगा काश, यह मुन्ना मेरी कोख से उत्पन्न हुआ होता ।

तृष्णा को मैं बुरा नहीं मानता लेकिन यह क्या चीज है कि हम सींचते बबूल को हैं और फल मीठे आम के चाहते हैं ।

थोड़ी देर में उन्होंने अपने आप आँखें खोल दीं, बल्कि अच्छा ही हुआ कि नर्स तब तक कार्यवश चली गई थी ।

मुन्ना बोला—"अम्मा पाछ !"

मैंने श्रीमती विश्वास से कहा—"यह माँ के पास जाना चाहता है ।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"सवाल तो यह है, मैं किसके पास जाऊँ सतीश बाबू !"

मैंने उत्तर दिया—"प्रश्न आपका यथार्थ है । किन्तु आपको तो

साथी मिलने की ऐसी कोई जल्दी है नहीं ! तीस की आप हो ही चुकी हैं। दस-पाँच वर्ष परीक्षा में व्यतीत कर दीजिए। उसके बाद देखा जायगा। खैर, मैं इस समय आपसे कुछ विशेष नहीं कहना चाहता।" इतने में नर्स आ गई और पूछने लगी—"आप यहाँ ही रहेंगे ?" मैंने कह दिया—जैसा कहिए।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"यहीं बने रहिए सतीश बाबू ! पता नहीं, कब क्या हो जाय !" और मैंने देखा कि उनकी आँखें फिर डबडबा आई हैं।

अब मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मैंने फ़ोन पर भाभी को बुलाया और सारी परिस्थिति उनसे बतलाते हुए पूछा—"अब क्या करना चाहिए !" भाभी ने कहा—"किसी भी स्त्री की हर प्रकार की सेवा एक स्त्री ही कर सकती है। अपने भइया से पूछ लो, अगर उनको कोई आपत्ति न हो, तो मैं चली आऊँ ! मगर एक बात मैं जानती हूँ, कि तुम्हारे भइया वहाँ मुझे अकेले कभी न आने देंगे।"

मैंने उत्तर दिया—"मगर सारी मुश्किल तो यह है कि मैं अगर तुम्हारे साथ यहाँ रहूँगा, तो भइया फिर वहाँ अकेले पड़ जायँगे, जो मुझे कभी स्वीकार न होगा।"

भाभी बोलीं—"तो फिर उन्हीं से सलाह कर लो।"

तब मुझे तुरन्त श्रीमती विश्वास को यह आश्वासन देकर कि हम लोगों में से कोई-न-कोई अभी आ जायगा, आप चिन्ता न कीजिए, और मैं मुन्ना को साथ ले वापस लौट आया।

यहाँ आने पर अब निश्चय यह हुआ कि भइया, भाभी और मुन्ना हॉस्पिटल में रहेंगी और मैं बँगले पर।

और इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि रक्तदान के लिए हम लोग भाभी को किसी प्रकार मना न कर सके। आज भी जब इस घटना की बात सोचता हूँ, तब बार-बार मन में यही आरहा है हम

सब लोग उस समय कितने भोले थे।

रात को और तो सब लोग सो गए थे। केवल मुझे निद्रा नहीं आ रही थी। भीखू मेरे पैर दाब कर अभी गया ही था कि मैं सोचने लगा—इन लोगों के अन्दर हमारे वर्ग की अपेक्षा सचमुच कितना बड़ा हृदय रहता है। श्रीमती विश्वास के साथ यद्यपि हमारे स्वार्थों का सम्बन्ध नहीं है, फिर भी, रुचि और गुण, कर्म, स्वभाव की एकता के नाते एक प्रकार की निकटता तो है ही। इसलिए रक्तदान को तैयार होने की भावना यदि ऐसे अवसर पर हमारे मन में आए तो मुझे इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं मालूम पड़ती। लेकिन जिस सर्वहारा वर्ग का यह भीखू प्रतिनिधि रूप है, उसका श्रीमती विश्वास जैसे वर्ग के साथ ऐसे स्वार्थ-त्याग का कौनसा मन्तव्य हो सकता है और मैं यही सोचता रहा कि भीखू ने कहा था और जब कहा था, तब उसकी आँखें भर आई थीं जिसका अर्थ था—छोटे भइया, आखिर एक न एक दिन मरना है ही, फिर इस शरीर से यदि कोई उपकार हो जाय, तो मेरी वह मौत छोटे भइया, कितनी बड़ी हो जायगी और उसकी इज्जत कितनी बढ़ जायगी। ऐसे तो इस धरती पर लाखों आदमी मरा करते हैं और कोई उनका नाम तक नहीं लेता।

रात अवश्य भीग गई है। लेकिन मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा मन उससे कहीं अधिक भीग उठा है। पिशाच···! विमल विश्वास! भ्रान्त धारणाओं के जाल में फँसी हुई श्रीमती विश्वास, शील, सौजन्य और मानवीय सहानुभूति के अवतार भाई साहब अत्यन्त उदार और सहृदय, ममतामयी भाभी, अबोध मृग-छौना-सा मुन्ना और इस सम्पूर्ण वातावरण के बीच मेरा यह अनभ्यस्त, और अकुशल निरीह चंचल मन!



: १५ :

प्रातःकाल होते ही मैं श्रीमती विश्वास के पास जा पहुँचा। तब तक वह नित्यक्रिया से निवृत्त हो चुकी थीं और चारपाई पर लेटी-लेटी एक सिनेमा-मैगजीन के पन्ने उलट रही थीं। मैंने पूछा—"कहिए, कैसी तबीयत है ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"तबीयत तो ठीक है, लेकिन मुझे खड़े होने और फिर दस क़दम चलने में कमज़ोरी बहुत मालूम पड़ती है। सारा बदन पत्ते की तरह हिलता जान पड़ता है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"पत्ते की तरह से क्यों, हवा जब चलती है और डोलती है, तब टहनी में फूले हुए गुलाब के फूल भी तो हिलते हैं। उन्होंने आपके बदन को छुआ ही नहीं है, हिलाया-डुलाया भी खूब है!"

मेरी इस बात पर श्रीमती विश्वास कुछ मुस्कराईं और बोलीं—"बनाना आपको खूब आता है। इस समय तो मैं कुछ न कहूँगी। लेकिन अगर तबीयत अच्छी हो गई, तो आप ही से पूछूँगी, कि कितने दिन, कब, किन-किन घड़ियों में उस गुलाब के सौरभ ने आपकी कल्पना को छूने में सफलता पाई है!"

उनका यह कथन सचमुच बड़ा प्रिय लगा, किन्तु तभी मैंने कह दिया—"भइया का भजन-पूजन यहाँ कुछ नहीं चलेगा, इसीलिए हम सब जाते हैं, यही कहने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।"

श्रीमती विश्वास ने कहा—"पहले आप सब लोग चाय ले लीजिए, तब भले ही चले जाइएगा।"

मुझे हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"आपको मालूम नहीं है कि हम सब लोगों की दुनिया से भइया का व्यक्तित्व कहीं अलग है। वह प्रातःकाल उठकर सबसे पहले पूजन पर बैठ जाते हैं, उसके पूर्व कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"आप जाइए, उनको मेरे पास भेज दीजिए।"

मैंने कहा—"अभी भेज देता हूँ।"

इतने में नर्स रोज़ा बोली—"आप पहले दूध-अण्डा खा लीजिए। उसके बाद बातचीत में लगिए।" एक क्षण रुक कर उसने जैसे भूली हुई बात का अनायास स्मरण-सा करते हुए कहा—"जी, डॉक्टर रंधावा ने पूछा है कि 'ब्लड' का इन्तज़ाम हुआ या नहीं?"

मैंने उसे एकान्त में लेजाकर बतला दिया कि यदि भाभी का 'ब्लड' उनके अनुकूल होगा, तो पहले वही रक्तदान करेंगी, अन्यथा फिर कुछ दूसरी व्यवस्था की जायगी।

रोज़ा बोली—"ठीक है, तब फिर 'ग्रुपिंग' के लिए उनका 'ब्लड' 'टेस्ट' करना पड़ेगा। चलिए, भाभी को साथ ले लीजिए, वह तो यहीं हैं अभी—शायद उस तरफ़!"

मैंने—'हाँ' कह दिया और तब हम लोग, नर्स रोज़ा के साथ, डॉक्टर रंधावा के पास जा पहुँचे। मैंने देखा, आज जाने क्यों, भाभी का अन्तर्मन कुछ ऐसा प्रसन्न था कि उसका आभास उनके मुख पर खेलती स्वाभाविक कान्ति के स्पष्ट द्विगुणित हो जाने से मिलता था।

मिस रंधावा ने उनके रक्त की परीक्षा कर ली और मुस्कराकर भाभी की ओर देखा।

वह भी मुस्करा उठीं।

मिस रंधावा ने मेरी ओर देखते हुए कहा—"ठीक है मिस्टर सतीश, थ्री हंड्रेड सी० सी० विल सफ़ाइस!" इतना कह कर उन्होंने एक मन्द मुस्कान छोड़ दी।

भाभी के साथ थियेटररूम से जब मैं वापस लौटा, तो भाई साहब उनके निकट बैठे परिणाम जानने के लिए उत्सुक-से हो उठे। सहसा ही उन्होंने दृष्टि कुछ इस प्रकार नीचे से ऊपर उठाई कि जैसे परिणाम

का वह मौन में ही उत्तर जानना चाहते हों। इसीलिए मैंने सर हिला-कर संकेत कर दिया—"ठीक है।"

इस पर वह किंचित् मुस्करा उठे। कुछ क्षण वहाँ बैठने के पश्चात् वह बाहर निकल आए। मैं वराण्डे में उनके पीछे-पीछे चल रहा था।

अनायास एक चीख़—वह सर नीचा किए कुछ सोचते चल रहे थे। सर को नीचे से ऊपर की ओर उठाते हुए बोले—"राम, राम!"

मैंने कह दिया—"किसी का ऑपरेशन किया जा रहा है।"

"हूँ"—कह कर उन्होंने सर हिला दिया और बाहर आकर खड़े हो गए। गंभीर बने रहे। फिर बोले—"सतीश, मैं तुमसे तंग आ गया हूँ। कैसे ये लोग हैं! मैं नहीं जानता था। मैं अभी जब उनसे मिलने गया था, तो वह अंडे को छुरी मार रही थीं। मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह छुरी अंडे को नहीं, मेरी अँगुलियों को काट रही है। सोचता हूँ तो जी काँप उठता है कि सभ्यता की दौड़ में हम कहाँ आ पहुँचे। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ सतीश, जो औरत अंडा काट कर खा सकती है, वह भ्रूणहत्या भी कर सकती है। शिव, शिव! चलो, चलें! मैं उनसे कह आया हूँ कि यह सब कुछ नहीं होगा यहाँ, हम लोग जा रहे हैं। मैं जानता हूँ कि वह हम सब लोगों की बड़ी आत्मीय बन गई हैं, लेकिन मैं तो अपने सिद्धांतों के पालन में ही अपना जीवन देखता हूँ!"

हम सब लोग जारहे थे, बल्कि टैक्सी में बैठ भी चुके थे कि एक अपरिचित नर्स दौड़ती हुई आई और बोली—"श्रीमती विश्वास मूर्छित हो गई हैं। आप लोगों में से किसी एक साहब को यहाँ रहना ही चाहिए।"

इतना कहकर नर्स चली गई।

इसके पश्चात् भइया मुस्कराए और धीरे से बोले—"मुझे यह श्रीमती विश्वास कुछ रहस्यमयी भी मालूम पड़ती हैं, सतीश! इनकी ये मूर्छाएँ कृत्रिम भी हो सकती हैं। ख़ैर, अब तुम ऐसा करो कि थोड़ी

देर बाद चले आना।"

इतने में मैं हॉस्पिटल के अन्दर जा ही रहा था कि भीखू ने एक टेलीग्राम भइया के हाथ पर रख दिया। मैंने तुरन्त लौटकर जो उसको देखा, तो क्या देखता हूँ कि तीस हज़ार का ग़बन हुआ है और मुनीम जी के सुपुत्र हिरासत में हैं! टेलीग्राम मैनेजर ने भेजा है और एक बजे फ़ोन पर प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की गई है।

सब लोग टैक्सी से लौट पड़े, किन्तु मुझे वहाँ रह ही जाना पड़ा। मैं जब श्रीमती विश्वास के कमरे की ओर बढ़ रहा था, तब यकायक तीन Z's वाली बात मन में पुनः उभर उठी!—सारा जगत आज जिस समस्या को सुलझाने में लगा हुआ है, वह केवल एक त्रिकोण के अन्दर आ जाती है—अर्थ, भूमि और नारी! ध्यान बट ही चुका था, इसलिए अब चायपान के समय श्रीमती विश्वास से विशेष बातें नहीं हुईं। वे केवल इतना बोलीं—"यह तो मैं जानती थी कि मनुष्य के सिवा देवताओं का कोई अलग अस्तित्व नहीं है। किन्तु यह नहीं जानती थी कि पत्थर में निवास करते-करते वे स्वयं पत्थर हो जाते हैं।"

मेरे मुँह से निकल गया—"आप शायद भाईसाहब के लिए कह रही हैं! लेकिन आपने यह नहीं देखा कि उस दिन जब आप मृत्यु से खेल रही थीं, तब आपके हत्याकारी को तुरन्त बन्दी बनाने में उन्होंने कैसे चमत्कारपूर्ण चातुर्य का परिचय दिया। और तारीफ़ यह है कि प्रातःकाल से लेकर चार बजे तक वे निराहार रहे और आज आपको शायद नहीं मालूम कि मेरी दूकान में तीस हज़ार का ग़बन हुआ है। टेलीग्राम अभी यहीं भीखू लकर आया था। इतने पर भी केवल आपके लिए वे मुझे यहाँ छोड़ गए हैं।"

श्रीमती विश्वास चकित हो उठीं और बोलीं—"तीस हज़ार का? लेकिन मैं जानती हूँ वे सागर हैं—अगाध। हम लोग उनकी थाह नहीं पा सकते! और कदाचित् इसीलिए वे अपने आपका किसी भी प्रकार

के मोह में नहीं डालते। मैं उनका उपकार कभी नहीं भूलूँगी। अच्छा, सतीश बाबू, इन अवस्थाओं में आप लोग तो अब शायद ही यहाँ रहें। मेरी नैया कैसे पार होगी ? यह विमल बाबू जो इस वक्त भीगी बिल्ली बने हुए हैं, आपके पीठ फेरते ही शेर हो जायँगे। और तब ?"

मैंने उत्तर दिया—"तब, आपको चटनी बनाकर एक अँगुली पर रख कर जबान से चाट लेंगे। बस, यही न आप कहना चाहती हैं ?"

उन्होंने कहा—"सतीश बाबू, स्त्री सबसे अधिक दुर्बल कहाँ होती है, काश आप जान सकते !"

उत्तर देने के बजाय मैं—अपनी गम्भीरता को छिपाने के लिए—किंचित् मुस्करा पड़ा। तभी उन्होंने पूछ दिया—"सतीश बाबू, हाँ, किसका 'ब्लड' लिया जायगा !"

"यह आपको अभी नहीं बताया जायगा !"

इतने में चाय पीकर जब मैं उठने लगा तो श्रीमती विश्वास ने मेरा हाथ पकड़ लिया। बोलीं—"बैठो भी, अभी तो तुमने कुछ खाया भी नहीं।" और उनकी दृष्टि उधर से गुजरती मिस रोजा हडसन पर जा पड़ी। उन्होंने उसे सी-सी करके सभ्यता के आधुनिक सांकेतिक इशारे से अपने पास बुलाकर कहा—"सतीश बाबू के लिए एक प्लेट ऑमलेट तो बनवा लीजिए !"

किन्तु मैंने कह दिया—"मैं यह सब नहीं लेता, मुझे अभी जाना है। आपको पता नहीं है कि मुझे अभी, तुरन्त, रक्तदान क्रिया की भी व्यवस्था करनी है।"

मिस रोजा मेरा उत्तर सुनकर जा चुकी थी।

श्रीमती विश्वास अवाक् रह गईं और ऐसा जान पड़ा जैसे उनकी मुखाकृति सफ़ेद पड़ गई हो।

मैं जब बँगले की ओर आने लगा—एकही विचार मेरे मन में ज्वार की तरह से उमड़ रहा था—हमें शीघ्र यहाँ से जाना है। और ऐसी

कोई व्याधि नहीं पालनी है, जो प्रश्न और समस्या बनकर कानपुर में भी मेरे जीवन को निरन्तर कुरेदती रहे, छेदती रहे !

रात कुछ सरदी अधिक पड़ी थी। एक बजे कुछ लोग खड़े आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे। वहीं मोड़ था और एक फर्लाङ्ग भर की चढ़ाई पड़ती थी। मोड़ पर टैक्सि को अत्यधिक मन्द गति से घुमाते समय मैंने देखा—चार आदमी एक शव को लिए जा रहे हैं ! टैक्सीवाले से मैंने पूछा—"क्या कोई दुर्घटना हो गई है ?"

टैक्सीवाले ने बताया—"किसी भले आदमी की लाश खड्ड में पड़ी पाई गई है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"भले आदमी की लाश ?"

टैक्सीवाले ने उत्तर दिया—"हाँ, सेठसाहब, यहाँ के लिए बहुत मामूली बात है। दो चार सौ नक़द दीजिए, और जिसको चाहिए, साफ़ करवा दीजिए।"

यद्यपि मैं पहाड़ पर था, लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे पहाड़ मेरी छाती पर आ गया है। आज मनुष्य के हृदय का यह निकृष्टतम रूप है ? अभी उस दिन श्रीमती विश्वास को विष दिया गया; आज सुनता हूँ, कि किसी आदमी को केवल एक धक्के से नीचे गिरा कर खतम कर दिया गया है और जिस घटना की छानबीन के लिए मैं बँगले की ओर बढ़ रहा हूँ, वह विश्वासघात भी एक पत्थर से कम नहीं है। तभी किसी ने मेरे भीतर से पुकार कर कहा—और इन सब अवस्थाओं के भीतर से अंकुरित होती हुई एक ममतामयी नारी का पावन, रक्तदान !



: १६ :

बँगले के अन्दर जिस कमरे में फ़ोन था, वह श्रीमती विश्वास के ड्राइंग-रूम के बगल में पड़ता था; अतएव भाईसाहब वहीं बैठ गए। ड्राइंग-रूम में गहरी नीरवता छाई थी; एक ऐसी गम्भीर शान्ति थी, जिससे वातावरण बोझिल-सा हो उठा था। टेलीग्राम में दोपहर को फ़ोन पर प्रतीक्षा करने की बात कही गई थी, इसलिए बारह बजे से ही वह फ़ोन की घण्टी सुनने को आतुर थे। लेकिन पहली बार जो फ़ोन की घण्टी बजी, वह यह बतलाने के लिए थी कि रक्तदान के समय भाभी को कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ और वे पूर्ववत प्रसन्न हैं। उस समय भाईसाहब के हाथ में समाचार-पत्र था और फ़ोन पर भी इस समाचार को सुनकर उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त होने दी। इस सन्देश के पूर्व जैसे समाचार-पत्र पढ़ रहे थे, वैसे ही इसके बाद भी पढ़ने में लग गए। थोड़ी देर बाद जब फ़ोन आया, वह टाफ़ी और लेमन-ड्राप्स, बिस्किट, पेस्ट्री आदि इंगलिश मिठाइयोंवाली दूकान 'लक्ष्मी-स्वीट-स्टोर्स' का था। दूकान के 'प्रोप्राइटर' ने कहा था कि अब मैंने ऐसा इन्तज़ाम कर लिया है, जिससे डबलरोटी आपको रोज़-की-रोज़ प्रातःकाल, ताज़ी मिल जाया करेगी। उत्तर में भाईसाहब ने केवल इतना कह दिया 'थैंक्स'। उन्हें जैसे यह समाचार बहुत रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

अब एक बज रहा था और भाईसाहब बार-बार घड़ी देख रहे थे। पाँच मिनट बाद फ़ोन की घण्टी फिर बज उठी और भइया ने जो 'रिसीवर' मुँह से लगाया, और जो आवाज़ आई वह हमारे मैनेजर तारक-नाथ की थी। उन्होंने जो कुछ कहा उसके उत्तर में भइया ने उत्तर दिया कि—तुमने फ़ौरन 'ऐक्शन' लेकर हमारी तबीयत खुश कर दी। हम तुमसे ऐसी ही आशा करते थे। एँह, एँह, मैं किसी की नाराज़ी और राज़ी को नहीं देखता। अपराधी मेरे सामने सदा शत्रु की शक्ल

में दिखाई देता है। आदमी सबसे अधिक अपने को प्यार करता है और तुमको मालूम होना चाहिए कि पिता जी कहा करते थे कि न्याय वही कर सकता है जो अपने को भी क्षमा नहीं कर सकता है। क्या तुम समझते हो···हाँ···हाँ···ठीक है, वही मैं कह रहा था, क्या तुम समझते हो, मैं तुमको समझने में ग़लती करूँगा ? मैं कर्म का उपासक हूँ, चर्म का नहीं !···अच्छा, मुझे आना ही पड़ेगा···हाँ···आँ···यह तो तुम ठीक कहते हो। मगर मैं यहाँ बुरा फँस गया हूँ, कुछ तो कर्तव्य से और कुछ अपनी रुचि के कारण। अभी घूम तो नहीं पाया, लेकिन एकाध दिन में घूमने की सोच रहा हूँ। हाँ, और सब ठीक है। मुन्ना इस वक्त खिलौनों से खेल रहा है।···अच्छा···ह···ह" हँस कर बोले— "···अभी बुला लेता हूँ। अगर ऐसी बात है, तो मैं चला आऊँगा। रुपए का महत्व मैं समझता हूँ। केवल अपने ही लिए नहीं, सम्पूर्ण समाज के सुख और शान्ति के नाम पर, आनन्द के नाम पर ! इच्छानुसार रुपया प्रत्येक व्यक्ति के पास होना चाहिए। इसलिए भी सम्पत्ति की रक्षा मेरा और मेरे परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का एक पवित्र धर्म हो जाता है।···अरे राम कहिए, क्षमा और दया को न्याय के समक्ष मैं द्वार के भिक्षुक की भाँति 'ट्रीट' करता हूँ !···हाँ, सो तो है ही, मैंने पहले ही कह दिया कि मैं तुम्हारी इस कर्तव्यनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हूँ। ···नहीं, नहीं, तारकनाथ, मुझे सदा इन सब बातों का ध्यान रहता है। अच्छा, वह भी ट्रंककाल करेंगे ! बहुत खूब ! मैं स्वागत के लिए तैयार हूँ। उन्होंने अब तक मेरा देवत्व ही देखा है, पशुत्व नहीं देखा, दैत्यत्व नहीं देखा ! अब देखेंगे, तब उनको मेरा यथार्थ परिचय मिलेगा। तुम विश्वास रक्खो मैं उन नेताओं में से नहीं हूँ जो पदों पर पहुंच जाने के बाद भारतीय संस्कृति की न केवल मर्यादा को वरन् लाज को भी भूल बैठे हैं। वे अपनी संस्कृति को आज माँ की तरह नहीं मानते। मैं उनमें से नहीं हूँ !···नहीं, नहीं, नहीं ! इसका दण्ड उसको

भुगतना ही पड़ेगा, अच्छी बात है। अगर मेरी पारिवारिक लक्ष्मी मेरा आह्वान कर रही है, तो मैं जल्दी-से-जल्दी यहाँ से चल दूँगा। अच्छा··· सुखी रहो···"

भइया की इस बातचीत को सुनकर मैं स्तब्ध हो उठा। आँसू मेरी आँखों से टप्! टप्! गिर रहे थे और ज्योंही उन्होंने फ़ोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया, त्योंही मैंने उनके चरण छू लिए। भइया मुस्कराए और तब मैं बोला—"भइया जीवन के बहुत-से ऐसे पहलू केवल इसलिए छिपे रह जाते हैं कि वस्तुस्थिति के मर्म का हमको ज्ञान ही नहीं हो पाता। आज आपने जो बातचीत की है, उसको सुन कर मुझको ऐसा जान पड़ता है, जैसे अन्धकार का पर्दा मेरी आँखों के सामने से हट गया है।"

अब रात के ग्यारह बजे हैं और भइया, भाभी, मुन्ना सब कानपुर लौट गए हैं। बात तो मुनीम जी ने भी थोड़ी देर बाद भइया से की थी, पर उन्होंने ज्योंही रिसीवर मुँह से लगाया और उनको मालूम हुआ कि फ़ोन पर मुनीम जी बोल रहे हैं, बोलने के साथ-साथ सिसकियाँ भर-भर कर इस ढंग से रो रहे हैं कि शब्द कट-कट कर विकृतरूप में सुनाई पड़ते हैं, तब उन्होंने केवल इतना कहा था—"देखिए, मुनीम जी, अवस्था में और श्रद्धा में आप मेरे चाचा के समान हैं, किन्तु अपराध के मामले में दया और क्षमा को मैं उन कीड़ों की तरह देखता हूँ, जो नित्य अज्ञानावस्था में मरते ही रहते हैं। खटमल जब बढ़ जाते हैं, तब फ़ायर-पाइप से उनको भस्म ही कर डालना पड़ता है। आपको मालूम होना चाहिए कि किसी नीतिकार का बचन है—कि वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति! इसलिए पापी के लिए मेरे पास दया नहीं है। आप को मालूम होना चाहिए राष्ट्र-पिता हमको सिखला गए हैं कि अगर कभी कोई अपराध तुमसे हो जाय, तो चौबीस, अड़तालीस और बहत्तर घण्टे का निराहार उपवास तो तुमको करना ही चाहिए। अन्यथा आत्म-

शुद्धि असम्भव हो जायगी। तो अपराधी सिद्ध होने पर जब मैं स्वयं अपने को दण्ड दिए बिना नहीं मानता, तब आपतो एक प्रथक शरीर का अस्तित्व रखते हैं। बस, मैंने आपकी सब बातें सुन लीं। अब यह बक-वास बन्द कीजिए। मेरे पास इतना फ़ालतू समय नहीं है। नहीं, नहीं, मैं स्वयं आ रहा हूँ। मैं देखूँगा कि आपके मन, वचन और कर्म में कितना अन्तर है।" और इसके बाद भइया ने फ़ोन रख दिया।

इस प्रकार मैंने देखा तीन-तीन मिनट करके यह वार्ता कुल नौ मिनट में समाप्त हुई।

आज फिर मुझे नींद नहीं आ रही है। कई दिनों तक यहाँ कितनी चहल-पहल रही, हालाँकि हम लोग श्रीमती विश्वास के पीछे व्यस्त और चिन्तित ही रहे, किन्तु पारिवारिक जीवन का आनन्द कितना सुखद होता है, यह अनुभव करने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया।

मैं यहाँ इस समय भी हास्पिटल में ही हूँ। आज श्रीमती विश्वास बहुत प्रसन्न थीं। भाभी चलने से पूर्व उनसे मिलने भी आई थीं। मैंने तो नहीं लेकिन नर्स ने उनको बता दिया था कि रक्तदान भाभी ने ही किया है। इस बात को सुनकर श्रीमती विश्वास को बहुत पीड़ा पहुँची। उन्होंने कहा—"आज मुझे मालूम हुआ कि हमारे बीच एक ऐसी भी दुनिया है, जिसमें मनुष्य, मनुष्य को अपना बिलकुल सगा और आत्मीय मानता है। स्वार्थों के सम्बन्धों का उनमें कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मैं भाभी की सेवा ही क्या कर सकती हूँ, लेकिन उनका यह रक्तदान मेरे लिए आत्मदान से बढ़कर है।"

चलते समय उन्होंने मुन्ना को सौ रुपए का एक नोट देते हुए कहा था कि—"भाभी, अगर मुन्ना का भी आप यह नोट न लेने देंगी, तो मैं यह दुःख सहन न कर पाऊँगी। अगर आप मेरा जीवन सुखी देखना चाहती हैं, तो मेरी यह प्रार्थना तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।" और जब भाभी चलने लगी थीं तो श्रीमती विश्वास की आँखें भर आई थीं।

अन्त में उन्होंने यह भी कहा था—"पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर आप लोगों की कम्पनी 'इन्ज्वाय' करने के लिए मैं कानपुर अवश्य आऊँगी।" और इतना कहकर उन्होंने मुन्ना को छाती से लगा कर उसे चूम लिया था।

भाई साहब और भाभी के सम्बन्ध में जब-जब सोचता हूँ, तब-तब यही अनुभव होता है कि उनके सामने वास्तव में मेरा ज्ञान, साहस और हृदय कुछ नहीं है, कुछ नहीं है ! अभी मैंने जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे मैं उनके चरणों के निकट बैठने का उचित अधिकारी हो सकूँ। यह मेरी भावुकता नहीं है, मेरे प्राणों की अपनी निजी अनुभूति है।...



: १७ :

श्रीमती विश्वास की तबीयत अब अच्छी हो रही थी। वे थोड़ा-बहुत चलने-फिरने लगी थीं। हास्पिटल छोड़ चुकी थीं और अपने बँगले पर लौट आई थीं। थोड़ी कमज़ोरी भर शेष रह गई थी। नित्य एक अर्क टॉनिक के रूप में भोजन के पश्चात् ले लेतीं और भोजन में भी रोगनजोश एक प्रकार से सम्मिलित ही हो गया था। आज कई दिनों के बाद वह अपनी बैठक में चाय की टेबिल पर देख पड़ी थीं और एक समाचार पत्र उनके सामने था :

मसूरी, तीन अगस्त। मसूरी का मौसम हमेशा नई-नई रंगीनियाँ उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के सम्मान्य स्वर्गीय बैरिस्टर श्रीनिर्मलचन्द्र विश्वास अपनी जिस प्रतिभा और आचारनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे, उनकी विधवा पत्नी श्रीमती विश्वास ने अपने पति की पुण्य-स्मृति को जाग्रत और सजीव बनाने के लिए बहुत प्रगतिशील बनने की ओर पदार्पण किया है। कहते हैं, अभी वह एक नवीन आयोजन को सम्पन्न करने में पूर्णरूप से सफल हुई हैं। बहुत संयम और इन्द्रिय-निग्रह का जीवन बिताते-बिताते उन्होंने आमोद-प्रमोद का पल्ला पकड़ कर अपने शरीर में जिस नवीन आत्मा को स्थापित कर लिया था, उससे उनको सहज ही मुक्ति मिल गई है। एक सप्ताह तक वह इसी निमित्त एक हास्पिटल की शोभा बढ़ाती रहीं। डॉक्टरानियाँ और नर्सों को उनके इस शुभागमन से बहुत पोषण मिला है। पुरस्कारादि से उनको इतना सन्तुष्ट कर दिया गया है कि भ्रूणहत्या की सारी घटना एक रहस्य में परिणत होकर रह गई है। जीवन के खतरों से सर्वथा मुक्त होकर, बचकर, दूध की भाँति स्वच्छ बनकर, साफ़ निकल आई हैं और अब स्थिति यह है कि चरित्र की किसी दुर्बलता का कोई आरोप उनपर लग नहीं सकता। सच-झूठ की राम जाने, पर श्रीमती विश्वास की

प्रतिष्ठा पर बिलकुल श्राँच नहीं श्रा पाई। श्राज के युग में सभ्यता की यह श्रभिवृद्धि समाज के नव-निर्माण के लिए एक ज्वलन्त श्रादर्श उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ हो गई है ? श्रौर इस श्रपूर्व सफलता के लिए श्रीमती विश्वास बधाई की पात्र हैं ! मगर एक शेर इस समय याद श्रा ही जाता है :

इब्तदाए इश्क़ है, रोता है क्या,
श्रागे-श्रागे देखिए, होता है क्या ?

श्रीमती विश्वास ने जब यह कटिंग मेरे सामने रक्खी तो मुझे ध्यान श्रा गया कि श्रभी पिछले महीने यह दैनिक बन्द होने जा रहा था। स्थिति इतनी डाँवाडोल थी कि नित्य यही सुनाई पड़ता था श्रब दस हो पाँच दिन में प्रेस पर लेनदारों का ताला लग जायगा श्रौर श्राज देखता हूँ कि एक पृष्ठ पर विमल विश्वास का चित्र प्रकाशित है, जिसके नीचे लिखा है :

'नया गाँव कृषिउद्यान के नवीनतम स्वामी श्रीमान विमल विश्वास।'

श्रौर तब मेरे मुँह से निकल गया—"चिन्ता की कोई बात नहीं है। मानहानि की नालिश के लिए इतना मसाला बहुत काफ़ी है। मुझे तो श्रब कुछ ऐसा जान पड़ता है कि विमल साहब ने निश्चितरूप से यह प्रेस ख़रीद लिया है। बिना एक श्रधिकारी हाथ के यह पत्र इस प्रकार का समाचार कभी छाप ही नहीं सकता था।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"मिस्टर प्रफुल्लचन्द्र उनके श्रन्तरंग मित्रों में से थे। श्राज तो उनके यहाँ जाकर इस केस को दायर करने के सम्बन्ध में बात कर लेना; वैसे तो मेरा भी परिचय है उनसे। हमारे यहाँ वे श्राते भो रहते हैं। किन्तु वह ज़माना श्रौर था श्रौर मैं भी तब श्रौर थी। श्रब उन बातों का स्मरण भी एक दुःखद प्रसंग जान पड़ता है।"

बस, नारी-हृदय का यही पहलू मुझे सदा उलझन में डाल देता रहा है। श्रीमती विश्वास के कथन का जो अर्थ होता है, वह कुछ-कुछ समझ में आ रहा है। हो सकता है कि प्रफुल्लबाबू के मन में श्रीमती विश्वास के लिए कभी-न-कभी मृदुल भावों का संचार हुआ हो। यह भी हो सकता है कि उन्होंने श्रीमती विश्वास पर अपना मूक आकर्षण व्यक्त किया हो और उसका प्रतिदान उन्होंने उनसे न पाया हो और यही बात श्रीमती विश्वास को इस समय चिन्ता में डालने का कारण बन रही हो। कुछ भी हो, आज मुझे प्रफुल्लबाबू के पास जाना ही होगा और उस निश्चय को एक बार मन में स्थापित करने के अनन्तर मैं फ़ोन पर चला गया और दो मिनट बाद मैंने लौट कर श्रीमती विश्वास से कह दिया—"सात बजे का प्रफुल्लबाबू से एपवाइण्ट-मेण्ट हुआ है।"

अभी मेरी बात समाप्त ही हो पाई थी कि भीखू ने आकर सूचित किया—"अभिनाथबाबू आपके यादि कइ रहे हैं।"

उसका यह कहना था कि श्रीमती विश्वास मेरी ओर एकटक देखने लगीं। मैंने भीखू से कह दिया—"अच्छा! कह दो, दस-पाँच मिनट में आता हूँ!"

भीखू चला गया।

श्रीमती विश्वास बोलीं—"अविनाशबाबू को आप कितने दिनों से जानते हैं?"

श्रीमती विश्वास का यह प्रश्न कहाँ से उठ रहा है और इसके मूल में क्या है, यह मैं जानता हूँ। अविनाश को मैंने कभी अविश्वसनीय नहीं समझा था, किन्तु हमारे बीच में इससे पूर्व कभी ऐसा कोई प्रश्न भी नहीं उठा था और जब तक हमारे आपसी सम्बन्धों में सम्पदा और नारी के साथ हमारे सम्पर्कों के द्वन्द्व न उठे हों, तब तक यह पहचान सकना बड़ा कठिन होता है कि कौन हमारा सगा है और कौन बेगाना,

कौन मित्र है और कौन तथाकथित मित्र हैं, कौन ईर्ष्या-द्वेष रखता है और कौन स्नेह सौजन्य ! किन्तु मेरी सदा से यह मान्यता रही है कि पारस्परिक संघर्षों में भी अपने उस व्यक्तित्व को अक्षुण्ण ही रखना चाहिए, जिसकी पहली शर्त शील और सौजन्य है। मैंने क्षण भर बाद उत्तर दिया—"अविनाश मेरा बाल-सखा है, हमारी प्रगाढ़ मैत्री भी रही है और हमने जीवन की दौड़ में दाँव-पेंच भी खेले हैं। आपको हमारे सम्बन्धों के बीच में पड़ने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। जमानत तो बिमल साहब को होनी ही चाहिए थी, कोई भी करता ! तारीफ़ तो यह है कि पच्चीस तारीख़ को जब पहिली 'हियरिंग' होगी तब विरोधी पक्ष से खड़े होने पर भी अविनाश आपके सम्बन्धों की रक्षा कैसे करता है। एक बात और भी है कि मैं तो इस मुकदमे से इतना घिरा हुआ हूँ कि किसी प्रकार बच ही नहीं सकता ! और आप देखेंगी कि अविनाश के विरुद्ध गवाही देते हुए भी मैं उसके साथ अपनी मैत्री का सम्बन्ध किस प्रकार निभाता हूँ।"

श्रीमती विश्वास ने उत्तर दिया—"आपका यह कप तो ठण्डा हो ही गया, इसको छोड़ दीजिए। यह दूसरा कप मैं बना रही हूँ। और समोसे भी तो लीजिए। हमने देसी घी अभी कल ही मँगवाया है। रह गई अविनाश की बात, सो मेरा नाम है विश्वास ! इसलिए मेरा आप पर पूरा विश्वास है। आप भले ही चिन्ता में पड़ें, मुझे इस सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं है।"

मैं चाय पीकर ज्योंही अविनाश से मिलने के लिए उठा, त्योंही मेरी दृष्टि बाईं ओर के टेबिल पर जा पहुँची, जिसके ऊपर एक सिने-मैगज़ीन रक्खा हुआ था और 'लाइफ़' नामक पत्रिका ! ये दोनों ताज़े अङ्क थे। इसलिए मैंने उन्हें पुन: लौट कर देखने के इरादे से ड्राअर खोलकर जो उसके अन्दर रखने की चेष्टा की, सो क्या देखता हूँ कि उसमें एक बढ़िया पिस्टल मय बेल्ट के रक्खा हुआ था। चूँकि इस

समय मुझे अविनाश के यहाँ जाना था इसलिए जानबूझ कर मैंने—आत्म रक्षा की भावना से—उसे अपनी ऊलन-जैकेट के ऊपर पहन लिया। इस समय श्रीमती विश्वास मुझे देखकर मुस्कराने लगीं। बोलीं—"बस सतीश, तुम जितने दिन यहाँ रहना, बिलकुल इसी ड्रेस में मुझसे मिला करना। बल्कि जहाँ कहीं जाना, इसको जरूर अपने साथ रखना।"

मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"अगर लाइसेन्स···!"

श्रीमती विश्वास ने कहा—"तुम आज प्रफुल्लबाबू के पास जा ही रहे हो। डी० एम० की उनसे बहुत पटती है। वह 'विदिन टू डेज' तुम्हें लाइसेन्स दिलवा देंगे। बल्कि इसी बहाने उनसे मिलना और भी अच्छा रहेगा। बाद में फिर और सब बातें कर लेना। अब कोई बात तो छिपी रह नहीं गई है, तुम कुछ नहीं भी कहोगे, तो भी वह इस केस के सम्बन्ध में खुद ही तुमसे बात-चीत किए बिना न मानेंगे।"

इसी समय ज्योंही मैं बाहर निकला कि पोस्टमैन ने आकर एक पत्र मेरे हाथ में रख दिया और सलाम करके चल पड़ा।

मैं पुनः अन्दर आ गया और पत्र को ऊपर की ओर उठा, चिट्ठी को बचाते हुए खोल डाला।

यह पत्र भाईसाहब का था।

श्रीमती विश्वास ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया—"क्या गिरीश बाबू का है, सतीश बाबू ?"

मैंने कह दिया—"जी हाँ, जान तो कुछ ऐसा ही पड़ता है।"

तब वह बोलीं—"पढ़ो सतीशबाबू, कुछ मेरे लिए भी लिखा है ?"

मैंने पत्र खोल डाला और पढ़ने के अनन्तर मैंने उत्तर दिया—"लिखा जरूर है, मगर 'ऑन द होल' बहुत प्रायवेट है। आपको नमस्ते कहा है।"

पत्र में लिखा था :

प्रिय सतीश,

जियो और जागो।

यहाँ के एक दैनिक में, श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध में मसूरी का एक विचित्र प्रकार का सम्वाद छपा है। उसकी एक कापी श्रीमती-विश्वास के पास में कल की डाक से 'टिक' लगाकर भेज चुका हूँ। आज तुमको भी उसकी कटिंग भेजता हूँ। अब इस प्रेस को विमल विश्वास ने अपनी मुट्ठी में कर लिया है। यह एक ऐसा साधन है जिससे श्रीमती विश्वास की मान-मर्यादा खतरे में पड़ गई है। मैंने यहाँ के वकीलों से बातचीत की तो मुझे ज्ञात हुआ कि कोर्ट से आर्डर लेकर इस पत्र का मुद्रण तुरन्त रोका जा सकता है। विशेषरूप से तब तक के लिए जब तक इस मुकदमे का फ़ैसला न हो जाय, किन्तु इसका 'इन्जक्शन आर्डर' मसूरी का कोर्ट ही दे सकता है। तुम आज ही इसकी कार्यवाही शुरू कर देना।

इस अवसर पर एक बात मैं तुमसे और कहना चाहता हूँ कि हमारी हो या तुम्हारी, श्रीमती विश्वास के साथ चाहे जितनी निकटता और आत्मीयता स्थापित हो चुकी हो, पर तुमको इसके संघर्ष में नहीं पड़ना चाहिए। जब अविनाश विमल विश्वास की जमानत कर सकता है, तो वह तुम्हारे विरुद्ध भी जा सकता है और नारी क्या नहीं कर सकती। मैं श्रीमती विश्वास पर किसी प्रकार का अविश्वास नहीं करता, लेकिन अविश्वास और विश्वास के बीच में एक सौंदर्योपासक युवक की जो चिन्त्य परिस्थिति और मनःस्थिति होती है, उसके संकट की कल्पना तो मैं कर ही सकता हूँ। इसलिए मेरी आन्तरिक कामना यही है कि तुम अब इस झमेले में मत पड़ो। तारीख पड़ने पर भले ही चले जाना। यह मेरा एक घोर सांसारिक दृष्टिकोण हो, किन्तु मैं किसी भी प्रकार और किसी भी अवस्था में तुमको वहाँ अकेला नहीं छोड़ सकता।

तुम्हारी तबीयत भी ठीक हो ही चुकी है। इसलिए वहाँ अब और

तुम्हारे ठहरने की आवश्यकता नहीं है।

ग़बन के सम्बन्ध में जो कुछ मुझे लिखना था, वह मैं तुमको पूर्व-पत्र में लिख ही चुका हूँ। मुनीम जी के साहबजादे जमानत पर छूट गए हैं। मुकदमे की पेशी की तारीख तीन सितम्बर है। मुन्ना पूछ रहा है—"ताता जी तब आएँगे?"

तुम्हारा,
भइया गिरीश

पत्र को पढ़ कर मैंने उसे जेब में रख लिया और ज्योंही मैं अविनाश के कमरे में पहुँचा, त्योंही क्या देखता हूँ कि विमल विश्वास और अविनाश दोनों अपने-अपने 'पेग' एक दूसरे से स्पर्श कर आज के प्रीति-पान का शुभारम्भ कर रहे हैं।



: १८ :

मैंने जो अविनाश और विमल दोनों को इस दशा में देखा तो उन्हीं पैरों मैं लौट पड़ा। अविनाश बोला—"आइए, सतीशबाबू, आइए!" और विमल ने अपना पेग टेबिल पर रखते हुए कह दिया—"एस-एस कम इन···कम इन···डोण्ट माइण्ड दैट यू आर मिस अण्डर स्टुड सम हाउ आर अदर! आॅफ्टर आॅल वी आर मोस्ट सिविलाइज्ड पीपुल, यू सी! अमारा कएने का मोतलब हइ कि आइडियोलोजिकल डिफ़रेन्सेज़ अमारा फ्रेण्डशिप के बीच में कोई इण्टरफ़ियर नेईं करने सेकता, अण्डर स्टैण्ड!···टेक युवर सीट, टेक युवर सीट, फ़ॉरच्युनेटली वी आर गेटिंग एन अपारच्युनेटी टु चिट-चैट विद ईच अदर, वेरी कॉमली, एण्ड फ्रैंकली! ओ··· आई सी, यू हैव गाट सच्च ए ब्युटिफुल पिस्टल! यू लुक लाइक ए हाई प्लेस्ड आर्मी ऑफ़िसर नाउ!···ब्युटिफुल···" नशे में झूमते हुए श्रीमन विमल विश्वास ने कहा—"आय एम मैनेजिंग जस्ट नाउ फ़ार यू टू···!···दिस इज़ वेरी कॉस्टली ड्रिंक···! इट इज़ रैयरली एवेलएबिल हियर···!"

मेरे मन में आया—यह व्यक्ति वास्तव में बहुत बना हुआ है। इसकी नस-नस में फ़ितरत भरी है। जो व्यक्ति श्रीमती विश्वास जैसी भाभी को समाप्त करने के लिए भोजन के साथ विष तक दे सकता है, वह दाँव-घात पा जाने पर किसको छोड़ सकता है? अतः मुझे साफ़ ही कह देना पड़ा—"आपकी स्मरणशक्ति बहुत कमजोर है। अफ़सोस कि आप इतना भी याद न रख सके कि खान-पान के सम्बन्ध में मेरे क्या विचार हैं? यू हैव टोटली फारगाटेन माई कल्ट एण्ड कल्चर, मैनर्स एण्ड सिविलीजेशन, इजिन्ट इट?"

विमल विश्वास नशे में धुत होने पर भी स्तब्ध हो उठा। बोला—"ओ, आई सी, वेरी सोरी फोर दैट! ऑफ़कोर्स, वी मेट वन्स, आय

रिमेम्बर ऑल दैट ! एक्सक्यूज़ मी ! देन ह्वाट उड यू लाइक टु हैव ?—लेमन, जिंजर, कॉफ़ी, टी, एनीथिंग ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"माफ़ कीजिएगा, मैं अभी श्रीमती विश्वास के साथ टी लेकर आ रहा हूँ। इसलिए अब आपके यहाँ कोई चीज़ न ले सकूँगा।"

अविनाश जो अब तक चुपचाप बैठा हुआ था, बोल उठा—"स्वार्थ और मोह जो कुछ न कराए सो थोड़ा है। अभी कल तक सतीशबाबू आप मेरे कितने निकट, कितने आत्मीय बन्धु थे, किन्तु आज मैं इस समय आपको इतना बदला हुआ पा रहा हूँ, जैसे हमारा कभी कोई परिचय ही न हो। क्या यह स्थिति दुःखद नहीं है ?"

मुझे अविनाश पर क्षोभ तो बहुत था, किन्तु उस पर परदा डाल कर मैंने कह दिया—"अविनाश बाबू, बी ऑर लिटल फ्रैण्ड्स !—केवल दृष्टिकोण की बात है, न स्वार्थ की, न मोह की ! समय आएगा, जब आप अनुभव करेंगे कि जिस भूमि पर आप इस समय हैं, वह कितनी लुचलुची है, गीली, पनीली और गसाऊ है ! अविनाशबाबू, आप पूरे दलदल में हैं। जितना ही निकलने की आप कोशिश करेंगे, उतने ही नीचे धँसते और फँसते जायँगे। सिद्धान्त इसलिए नहीं बने हैं कि उन्हें जब चाहे तब मस्तक का तिलक बना लीजिए, और जब चाहे तब गाजर-मूली के भाव बेच कर कुँजड़े की शक्ल में बदल जाइए।"

मेरी बात सुन कर अविनाश का चेहरा लाल हो उठा। होठ फड़कने लगे और भाषा ही नहीं उसकी 'टोन' भी बदल गई। तपाक से वह बोल उठा—"आप मेरे ही कमरे में आकर मेरे ही घर के अन्दर ठहर कर मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं इस बहस को तूल नहीं देना चाहता था।" कुर्सी से तुरन्त उठ कर मैंने उन्हें उत्तर दिया—"मित्रों में जब विचार-विनिमय होता हो और बहस का रुख जलते हुए तवे की तरह गरम हो पड़े, तब मित्रों को चाहिए कि वे तुरन्त एक दूसरे

को नमस्कार करके अलग हो जायँ ! मित्रता में मानापमान का प्रश्न ही नहीं उठता ! क्योंकि एक का मान दूसरे का भी मान ही होता है और एक का अपमान भी दूसरे का अपमान ही ठहरता है। मैं अगर आपका अपमान कर रहा हूँ······(अब मेरा स्वर कुछ तीव्र हो उठा) तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आपने मेरी मित्रता का अपमान किया है। बस, मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना है ! आय विल सी यू इन द कोर्ट एण्ड यू विल आलसो सी मी देअर···ओ० के०···!"

मेरा इतना कहना था कि अविनाश चिल्ला उठा—"सतीश, सतीश, तुम बहुत भ्रम में हो, इधर आओ, बात सुनो,···" लेकिन तब तक मैं श्रीमती विश्वास के निकट पहुँच चुका था, जहाँ अब तक कुछ नवीन अतिथि आ चुके थे। वह थे रुचिनाथ, सुचिता और किरण ! यद्यपि मैं बहुत उत्तेजित था और मेरा हृदय धक-धक कर रहा था, किन्तु किरण को सामने पाकर मेरा चित्त प्रसन्न हो उठा। मैंने उसे झट गोद में उठा लिया।

इतने में सुचिता बोली—"किरण तुमने पहचाना ये कौन हैं ?"

किरण ने हँसते हुए लाड़ से उत्तर दिया—"चा···चा···जी ?"

मुस्कराते हुए सुचिता ने कह दिया—"तुमने चाचा जी को नमस्ते नहीं किया ?"

लेकिन तब तक किरण बोल उठी—"लेकिन चाचा जी, हमने आपको ढूँढ़ लिया न ?"

इसी समय रुचिनाथ बाबू ने भरे हुए पान से गल-गल करते हुए पूछा—"कहिए, सतीशबाबू, आपका वह भीखू कहाँ है ? वह मुझको बार-बार याद आता है !"

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—"वह आपकी सेवा के लिए अभी आ जायगा। चलिए, आप मेरे रूम में तो चलिए।" और मैंने श्रीमती-विश्वास की ओर देखते हुए कह दिया—"आप भाग्य पर विश्वास तो

करती नहीं हैं, लेकिन मैं करता हूँ ! कल एक भाभी गई थीं, आज दूसरी भाभी—भाई और भतीजी को लेकर—"

रुचिनाथ बाबू हो···हो करके हँस पड़े। बोले—"सुचिता आपको रोज़ याद करती थी। आज आपसे मिलकर यह कितनी प्रसन्न हुई हैं, इसको आप नहीं समझ सकेंगे।" और उन्होंने सुचिता की ओर देखते हुए प्रश्न कर दिया—"क्यों, झूठ कहता हूँ ?"

सुचिता बोली—"यह गुण हो या दोष इसका निर्णय तो बाद में होगा, किन्तु स्त्री के सम्बन्ध में सारी पुरुष-जाति एक ही स्कूल की सी पढ़ी हुई जान पड़ती है।"

उनका इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"दीदी, तुम बिलकुल ठीक कहती हो। हम लोग आजकल इसी शास्त्र की जानकारी में लगे हुए हैं।"

श्रीमती विश्वास के इस कथन को सुनकर मुझको भी कम प्रसन्नता नहीं हुई। परन्तु हमको इस नवागन्तुक मित्र को तुरन्त आदरपूर्वक अपने यहाँ ठहराना था, इसलिए हम सब हँसते हुए अपने कमरे में चले आए। जिस समय मैं श्रीमती विश्वास के कमरे से बाहर की ओर आने लगा, उस समय किरण ने मेरी अँगुली पकड़ते हुए एक लाल फूलों वाली 'स्वीट पी' की झाड़ की ओर इशारा करते हुए पूछा—"चाचा जी यह फूल किसका है ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"किरण का ?"

रुचिनाथ को मेरा यह उत्तर बहुत पसन्द आया और वह बोल उठे—"लवली !"

इतने में इधर-उधर से घूमता हुआ आ पहुँचा भीखू, किन्तु रुचिनाथ बाबू, उनकी पत्नी और किरण को पहचानता हुआ-सा बोल उठा—"आप सबको मेरा परनाम है सरकार ! कब आना हुआ ?"

सुचिता ने उत्तर दिया—"अभी-अभी तो आ रही हूँ।"

भीखू ने प्रश्न किया—"मगर सामान तो आपका···।"

रुचिनाथबाबू ने कहा—"हम लोग तो कई दिनों से आए हुए हैं और 'न्यू एरा' में ठहरे हैं! कई दिनों से सोच रहे थे कि सतीश बाबू से मिलना है।"

सुचिता ने कुछ ढिठाई के साथ उत्तर दिया—"हाँ, आप तो खूब सोच रहे थे!"

रुचिनाथ बाबू हँसने लगे, तब मैंने भीखू से कह दिया—"अरे, भीखू आपको···।"

"हाँ···हाँ सरकार···अभी ले आया।" और फिर ठहर गया—"मगर···भोजन भी तैयार है।"

सुचिता ने उत्तर दिया—"भोजन तो हमारे यहाँ बन ही रहा है।"

भीखू हँसने लगा। बोला—"अच्छा···अच्छा··मगर···आप··· चाय लेहो कि काफी?"

सुचिता हँस पड़ी—"इनको चाय चाहिए, मुझको कॉफ़ी!"

भीखू बोला—"अच्छा···बहुत···अच्छा···।"

भीखू ज्योंही बाहर गया, त्योंही मैंने रुचिनाथ बाबू से पूछा—"आप तो यहाँ 'सीजन' भर रहेंगे न?"

सुचिता ने जवाब दिया—"सीजन भर तो क्या रह पाएँगे, लेकिन फिर भी अभी दस पन्द्रह दिन तो रहना ही पड़ेगा।"

इतने में रुचिनाथबाबू ने कहा—"माफ़ कीजिएगा, अभी हम लोग जिस कमरे में बैठे थे, वहाँ जो मैडम कुछ दुबली-दुबली-सी थीं, क्या उन्हीं का नाम श्रीमती विश्वास है?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ"

रुचिनाथ बाबू बोले—"मैंने उनके सम्बन्ध में अजीब किस्म की बातें सुनी हैं और आज तो उनके सम्बन्ध में एक खबर भी आई है!

आपने देखा होगा शायद ?"

मुझे कहना पड़ा—"देखा है, वह 'डिफ़ेमेशन सूट' भी दायर करने जा रही हैं—प्रिन्टर, पब्लिशर और एडीटर पर ! मगर, दरअसल बात यह है कि उनको तो उनके सगे देवर मिस्टर विमल-विश्वास ने खाने के साथ 'प्वायजन' दे दिया था। उन पर केस भी चल रहा है, जिसकी तारीख २५ है। जमानत अविनाश बाबू ने की है।"

रुचिनाथ बाबू बोले—" यह अविनाश साहब कानपुर के तो नहीं हैं ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ, हैं तो कानपुर के ही ! क्या आप उनको जानते हैं ?"

"एस, एस, आय नो हिम फुल्ली वेल ! ही वाज़ एक्यूज्ड इन ए मरडर केस, एण्ड ऑफ्टर एबाउट टू इयर्स ही वाज़ एक्विटेड बाई हाई-कोर्ट ! ···ही हैज़ स्पेण्ट एबाउट टेन थाउजैण्ड इन दैट केस।"

इस समाचार को सुनकर मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। जब भाग्य उदय होता है, जब दैवी अवलम्ब मिलता है, तब भगवान् की कृपा का हाथ किसी प्रकार मनुष्य के सिर पर आ जाता है और उसी क्षण मेरे मुँह से निकल गया—"तब तो भगवान् ने ही इस अवसर पर आपको मेरे पास भेजा है। शी इज़ माइ इन्टीमेट फ्रेन्ड ! आइ वाण्ट टु हेल्प हर इन एव्री रेस्पेक्ट ! अगर इस विषय में आपकी थोड़ी सी सहायता मुझे मिल जायगी, तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा।"

भीखू इतने में चाय और काफ़ी अलग-अलग ले आया और मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि चाय के साथ वह टोस्ट भी लाया था और किरण के लिए केक और पेस्ट्री भी।

मैंने तब किरण को अपने पास बुला कर पूछा—"तुमको चाय पसन्द है या कॉफ़ी ?"

किरण ने उत्तर दिया—"हम तो बिस्किट और पेस्ट्री ही खाते हैं।"

मैंने तब इतना और जोड़ दिया—"मक्खन लगा कर !"

किरण हँस पड़ी और बोली—"चाचा जी, आप सब कुछ जानते हैं।"

तब मैंने उसको अपने अंक से लगा लिया और तर्जनी उठाकर कह दिया—"अब तुम हमारे यहाँ रोज आया करना।"

किरण ने उत्तर दिया—"और चाचा जी आप हमारे यहाँ रोज नहीं आएँगे ?"

मैंने कह दिया—"जरूर आएँगे !"

सुचित्रा इतने में बोल उठी—"आजकल यह बड़ी ढीठ होती जा रही है।"

मैंने उत्तर दे दिया—"ढिठाई, बच्चों की स्वाधीनता के लिए बहुत आवश्यक होती है। इससे वे निर्भय और साहसी बनते हैं।"

रुचिनाथ बाबू बोल उठे—"यू आर सपोज्ड टु बी ए वेरीगुड साइकोलोजिस्ट !"

मैं मन-ही-मन हँसने लगा लेकिन मैंने यह नहीं बताया कि मैं इसी विषय का प्राध्यापक भी हूँ।



: १६ :

प्रफुल्लबाबू का मकान लन्धौर में था। नीचे एक ओर जनरल मर्चेण्ट की दूकान थी, दूसरी ओर 'स्पोर्टस वेराइटीज़' की। बीच से ज़ीना ऊपर को चला गया था। ज़ीने के दरवाज़े के ठीक ऊपर सफ़ेद पत्थर पर लिखा हुआ था—'स्वप्नलोक'! इस नामकरण का भी एक रहस्य था। प्रफुल्ल बाबू ने विवाह नहीं किया था। उनका स्वभाव कुछ ऐसा विचित्र था कि वह आग्रह किसी से कर नहीं पाते थे। खाने-पीने की बात दूसरी है, किन्तु जिसको प्रीति, स्नेह, आत्मीयता और एक बदनाम शब्द 'प्रेम' कहते हैं, उसका आग्रह तो वह किसी से, किसी रूप में, कभी कर ही न सकते थे। उनका 'बैङ्क-बैलेन्स' अत्यन्त साधारण था, यद्यपि आमदनी दो हज़ार मासिक से कम न थी। वह 'क्रिमिनल केसेज़' ही 'डील' करते थे और जिसको हाथ में लेते थे, उसको सफलता की अन्तिम सीमा तक पहुँचा कर ही मानते थे। इसका परिणाम यह था कि वर्ष भर में अगर वे तीन 'केसेज़' भी स्वीकार कर लेते तो उनका काम चल जाता था।

घर पर तीन नौकर थे। एक रसोइया, दूसरा शोफ़र और तीसरा निजी सेवक! रसोइया नाना प्रकार के व्यंजन आए दिन बनाता ही रहता था क्योंकि प्रफुल्ल बाबू के यहाँ मेहमान भी कोई-न-कोई बना ही रहता था। इसके अतिरिक्त प्रतिमास दो नहीं, तो कम-से-कम एक, बड़ी पार्टी तो वे बाहरी मित्रों और अतिथियों तथा स्थानीय सम्बन्धित अधिकारियों और गिने-चुने मित्रों को मिलाकर देते ही थे। उनके यहाँ 'डान्सर्स' ठहरते थे और संगीतज्ञ! उनके यहाँ कवि और कलाकार बहुत सम्मान पाते थे। कला और संस्कृति के क्षेत्र में वे चरित्र को विवाद का विषय कभी न बनने देते। अगर कोई गायिका वेश्या भी होती, तो उसको भी उनके यहाँ सम्मान अवश्य मिलता; लेकिन स्वभाव के वे ऐसे 'रिज़र्व्ड' थे कि कोई उलझन या इल्लत अपने पास फटकने

नहीं देते थे। उनका यह रेकार्ड था कि किसी भी सुन्दरी से उन्होंने अपने यहाँ ठहरने का कभी आग्रह नहीं किया। उनके सम्बन्ध में यह बात भी अब प्रसिद्ध हो चुकी थी कि उनका प्यार सदा अव्यक्त रहता है। सो भी इतना कि न कोई यह कह सकता कि वे मुझे चाहते हैं, बहुत चाहते हैं और न कोई यह कह सकता कि नहीं चाहते, क़तई नहीं चाहते! एक वाक्य में वह न 'हाँ' थे, न 'नाँ'!

प्रफुल्ल बाबू का व्यक्तित्व अगर बहुत सुन्दर और अभिराम न था, तो वैसा कुछ साधारण भी न था। निजी जीवन में अब तक उन्होंने अपनी बंगीय वेश-भूषा को अब तक सुरक्षित रक्खा था। हाँ, बाहर निकलने पर वे सूट ही धारण करते थे। वेश-भूषा और शृंगार-प्रसाधन का उनका कमरा दर्शनीय था। तीस प्रकार के तो जूते, जूतियाँ, चप्पल, बूट, स्लीपर, लौंग बूट, फुल स्लीपर, पेशावरी सैण्डिल, मद्रासी चप्पल, मराठी जूता, यहाँ तक कि कपड़े, रबर, प्लास्टिक और मृग, साबर, घड़ियाल, खरगोश और लोमड़ी के चर्म के जूते भी उनके यहाँ पंक्ति-बद्ध लगे रहते थे। धोतियों, पैण्ट, गाउन, चेस्टर, शर्ट्स, वेस्ट कोट्स, ओवर कोट, हंटिंग कोट, नेकटाई, मोजे, रूमाल, हैट्स और कैप्स की भी विविध जातियाँ और शैलियाँ उनके यहाँ पोषण पाते थे। ऑयल, क्रीम, स्नो, लैवेण्डर, इत्र, पाउडर, सोप, टूथ-पेस्ट, ब्रश, शेविंग की सामग्री आदि से उनके कई ड्रेसिंग टेबिल, अलग-अलग कमरों में सुरक्षित रूप से रक्खे रहते थे। अपना हिसाब-किताब बिलकुल अलग रहता और अतिथियों का सर्वथा पृथक।

उनके यहाँ दो पिस्टलें, एक रॉयफल और दो बाहर बोर की बन्दूकें थीं। उनकी अँगरेजी और बँगला की लायब्रेरी यद्यपि बहुत बड़ी थी, किन्तु इधर उन्होंने हिन्दी के नाटक, काव्य और उपन्यास-साहित्य की भी एक ऊँचे दरजे की लॉयब्रेरी बना ली थी। 'लॉ बक्स' की लॉयब्रेरी तो दर्शनीय थी ही।

अतिथियों और अन्य लोगों के लिए तो यहाँ एक निश्चित समय के लिए ही ठहरने की सुविधाएँ रहतीं, किन्तु साहित्य और विज्ञान के तत्वशोधकों के लिए इस विषय में पूरी छूट रहती थी। वे 'सीज़न' भर स्वतन्त्रतापूर्वक उनके यहाँ ठहर सकते थे।

इन सब बातों में वह बड़े ही शीलवान और उदाराशय थे। बस, एक बात में वह बहुत कड़े और निष्ठुर थे। वह यह कि अगर उनको किसी अतिथि या मित्र के द्वारा ऐसा अनुभव होता कि मेरा समय नष्ट हो रहा है और मेरे सौजन्य का अनुचित रूप से शोषण किया जा रहा है, तो उनका बाहर जाने का कार्यक्रम तुरन्त बन जाता! कोई कितना ही बड़ा या सम्मानित बैठा रहता, इसकी वह क़तई चिन्ता न करते। उठ कर चल देते। और इस कार्यक्रम का अर्थ यह होता है कि अगर कोई उनकी अनुपस्थिति में रहना भी चाहता, तो न रह सकता। क्यों कि उनके बाहर जाने का अर्थ यह होता था कि रसोइया और निजी सेवक को तो वह कभी छोड़ नहीं जाते थे।—और मोटर गैरेज की ताली भी किसी को न दे जाते। सारा मकान बन्द हो जाता और ठहरने के सारे द्वार अपने आप बन्द हो जाते। परिणाम यह होता कि अतिथि हो या मित्र उसको तुरन्त इनका निवास-स्थान त्याग देना पड़ता। कई बार ऐसा हुआ कि सुबह लोगों को पता लगा कि प्रफुल्ल बाबू दिल्ली चले गए, किन्तु सायंकाल नीचे सड़क से गुज़रते हुए लोगों ने अनुभव किया कि ऊपर तो मृदंग बज रहा है। वायोलिन की मधुर झंकार गूँज रही है और बीच-बीच में किसी गायक या गायिका की मधुर रागिनी सुनाई पड़ रही है।

इन सब प्रसंगों और घटनाओं का उनसे एक तो कोई कभी भेद ही न पूछता, दूसरे अगर पूछता भी तो उसके प्रश्नों का उत्तर एक हल्की मुस्कान अथवा सिगार के धुएँ की उड़ान में ही मिल जाता। अगर कोई खोजने लगता, तो प्रफुल्ल बाबू यही उत्तर देते—"आपको

श्रौर कुछ बात भी करनी है ?" उनके इस उत्तर का स्पष्ट श्रर्थ यही होता था कि श्रब श्राप चुप रहिए श्रौर श्रगर कोई काम न हो, तो चाल दिखलाइए—"प्लीज़ बी श्रॉफ़ !"

मैं जब इन प्रफुल्ल बाबू के यहाँ पहुँचा, तो मालूम हुश्रा कि वह श्रन्दर तो जरूर हैं, मगर कोई जरूरी बात कर रहे हैं, किसी से ! नौकर जो पहाड़ी था, बोला—"श्रापको थोड़ी देर बैठना पड़ेगा। कोई कागज़ हो तो दे दीजिए, पहुँचा दूँ। चाहेंगे, तो श्रपने श्राप बुला लेंगे।"

मैंने उसको श्रपना 'विज़िटिंग-कार्ड' दे दिया श्रौर कहा—"मैं इस समय उनसे मिलने की बात सबेरे ही फ़ोन पर तय कर चुका हूँ। तुम मेरा यह कार्ड उनको दे दो। मैं ज़्यादा देर तक यहाँ नहीं बैठूँगा।"

थोड़ी देर बाद जब नौकर भीतर से लौटा तो उसने कहा—"साहब श्रापको श्रन्दर बुला रहे हैं।"

श्रब मैं जो श्रन्दर गया, तो क्या देखता हूँ कि वह एक पलँग पर लेटे हुए हैं। मच्छरदानी उलटी हुई है। पलँग बहुत बड़ा है—स्प्रिंग-दार !—श्रौर फ़र्श पर घुँघरू का एक जोड़ा पड़ा हुश्रा है। सामने जो परदा पड़ा है, उसके उस पार बड़ी दूर से वीणा के तारों की मन्द-मन्द टुन···टुन, टु···नु···नु, तुन···तुन···तुनुन, तुनुन तुनुन···तुनुन···तुन, तुनुन···तुन···तुन···तुन—तुनुन सुनाई पड़ रही है। पलँग के पास ही दो बैठक वाली कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। कुर्सियाँ यद्यपि बेंत की हैं, किन्तु बैठने श्रौर पीठ के स्थान पर रुई की पतली-पतली गद्दियाँ मखमली श्रावरण के साथ चिपटी हुई हैं, जिन पर रेखांकित मोर श्रंकित हैं।

मेरे पहुँचते ही प्रफुल्ल बाबू उठ कर बैठ गए। मैंने उनका श्रभि-वादन करने के साथ ही कह दिया—"श्राप लेटे रहिए आराम से ! मैं श्रापके पास ही बैठ जाता हूँ।" मैंने एक कुर्सी उठा कर उनके निकट रख ली श्रौर उस पर बैठ गया।

प्रफुल्लबाबू के पलँग के पास एक छोटी, गोल टेबिल रक्खी थी, उस पर पुष्पों का एक गुच्छा पारदर्शक प्लास्टिक-पात्र में रक्खा हुआ था, जिसमें थोड़ा रंगीन पानी भी भरा दिखलाई पड़ता था। उनके सिरहाने की तरफ़ एक पनडब्बा था, जो था तो चाँदी का, किन्तु उस पर बनी हुई कोयल सोने की थी। प्रफुल्लबाबू ने पनडब्बा खोल कर मेरे सामने रख दिया। मैंने उसी से दो पान उठा लिए। इस पर उन्होंने दो पान स्वयं भी लेकर होठों में दाब लिए। इसके बाद उन्होंने उस पनडब्बे के बाएँ ओर का खाना खोल कर चाँदी के वर्कों में लिपटी नन्ही-नन्ही गोलियाँ मेरे सामने कर दीं। मैंने कहा—"क्षमा कीजिएगा, मैं तम्बाकू नहीं खाता।"

प्रफुल्लबाबू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्षमा कीजिएगा, ये गोलियाँ तम्बाकू की नहीं हैं।"

मुझे हँसी आ गई और मेरे मुँह से निकल पड़ा—"श्रीमती विश्वास ने मेरी समझ से, आपकी प्रशंसा बहुत काफ़ी कर दी थी। किन्तु इस समय मैं अनुभव कर रहा हूँ कि वह तो आपके इस रूप और ऐश्वर्य के सामने कुछ भी नहीं है।"

प्रफुल्ल बाबू ने बहुत संक्षेप में उत्तर दिया—"उनकी तो बात ही और है।"

मैं इस विचार में पड़ गया कि क्या प्रफुल्लबाबू अपने इस कथन में भी कोई उपालम्भ ही प्रकट कर रहे हैं। पर तब तक प्रफुल्लबाबू बोल उठे—"कहिए, अब तो उनका स्वास्थ्य ठीक है न ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ पहिले से तो अच्छा है, लेकिन थोड़ी कमजोरी अब भी है।"

प्रफुल्लबाबू बोले—"हां···आं, कमजोरी···!"

मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे प्रफुल्ल बाबू कोई बात कहते-कहते रुक गए हों। अब मैंने अपना मन्तव्य उनके सामने जो रखना चाहा, तो

एकाध बात सुनने के पश्चात्, स्मरणशक्ति पर किञ्चित जोर डालते हुए बोले—"आप तो गिरीश बाबू के छोटे भाई हैं न ?"

मुझे उनकी इस बात को सुनकर विस्मय हुआ और मैंने पूछ लिया—"आप उनको जानते हैं ?"

उनके मुँह से निकल गया—"ही इज़ जस्ट लाइक माई ब्रॉदर—यंगर ब्रॉदर !"

तब मैंने विनीत होकर, हाथ जोड़कर कहा—"मैं आपको प्रणाम करता हूँ !"



: २० :

तीसरे दिन, प्रातः काल, भीखू ने आकर सूचना दी—"विमल बिश्वास औ अभिनाथ दूनो जनें बँगला छोड़ि कै आजु चले गे।"

मैंने कुछ सन्तोष के भाव से उत्तर दिया—"अच्छा, चले गए!"

भीखू बोला—"अबै-अबै तो गे हैं छोटे भइया!"

इतने में रामू ने आकर कहा—"मेमसाहब आपको याद कर रही हैं।"

मैंने पूछा—"और कौन है?"

रामू ने उत्तर दिया—"अभी तो कोई नहीं आया है। लेकिन शायद आने वाले हैं।"

कल कोर्ट में जो पहिली 'हियरिंग' हुई, उसकी सारी दृश्यावली अब भी स्वप्न-चित्र की तरह मन में स्थिर थी। विमल विश्वास ने जो बयान दिया था, उसकी कहानी गढ़ी हुई जरूर थी, किन्तु उसकी भूमिका उसके बचाव के लिए यथेष्ट थी। इस सिलसिले में बात करती-करती श्रीमती विश्वास बोलीं—"सतीश बाबू, मुकदमा तो कुमार के विरुद्ध जा ही रहा है और पूरी सम्भावना है कि उनको कम-से-कम पाँच वर्ष की सजा भी हो जाय, लेकिन एक बात बार-बार मेरे मनको बराबर मथने लगती है। सही है, कि वह मुझे अपने साथ नियन्त्रण में रखकर मेरी सारी स्वाधीनता छीन लेना चाहता था। यह भी सही है कि उसका इरादा जायदाद की सारी सुविधाओं का भोग एकाधिकारी के रूप में करना चाहता था, किन्तु कचहरी, अदालत में उसका यह सिद्ध करना कि मैं एक कुलटा नारी हूँ, क्या मेरी मान-प्रतिष्ठा को जीवित रख सकेगा? अदालत से जो फ़ैसला होता है वह जैसे सदा उचित नहीं होता, वैसे ही उचित फ़ैसला ऐसा नहीं है कि जनता की दृष्टि में सदा उचित ही ठहरता हो। यश और कीर्ति मिट्टी की उस कच्ची गगरी के

समान होती है, वह जब फूट जाती है, तो यह कोई नहीं कहता कि अगर लात मार कर अथवा ज़मीन में पटक कर फोड़ी न जाती, तो कभी न फूटती। सब कोई यही सोचता है, गगरी कच्ची थी, इसलिए फूट गई। कच्ची थी का अर्थ यह होता है कि कमज़ोर थी। मैं नारी हूँ और जब सगा देवर मुझ पर यह आरोप लगाता है कि मैं कुलटा हूँ, तो दुनिया यही समझेगी कि इस आरोप का कुछ तो आधार होगा ही! इसलिए सतीशबाबू, अब मैं श्रीमती विश्वास नहीं रह गई। वास्तव में, अब मैं श्रीमती विश्वास बन गई हूँ···" और इतना कहते-कहते उनका कण्ठ भर आया। आँखों में आँसू डबडबाने लगे।

श्रीमती विश्वास के जीवन के कथन का यह पहलू मेरे लिए नया था। सच बात तो यह है कि एक छोर से दूसरे छोर तक हमारा सारा समाज उस खिलौने की भाँति व्यवहार करता है जो हमारी इच्छा-शक्ति के अनुसार हिलता-डुलता और नाचता है। यह एक ऐसा विषय है जो हमारी सम्पूर्ण जातीयता, नैतिकता और संस्कृति को घुन की तरह नित्य खाता रहता है।···अतएव एक बार स्वयं यह बात मेरे मन में आ गई कि यदि श्रीमती विश्वास मेरी बहन होतीं, तो मैं उनको अपने देवर के विरुद्ध इस तरह का अभियोग चलाने का अनुरोध कभी न करता। इतना ही नहीं, यदि वे इसके लिए हठ भी करतीं तो जिस तरह भी होता मैं उनको अवश्य रोक देता. लेकिन श्रीमती विश्वास के साथ अपनी आत्मीयता का दावा करने पर भी मेरा ध्यान उनके सम्मान-रक्षण के इस पहलू की ओर आकृष्ट नहीं हुआ।—और आज, परिणाम यह हुआ है, कि मैं श्रीमती विश्वास के इस कथन के सामने निरुत्तर हूँ। स्पष्ट रूप से यह क्या मेरी लघुता और हीनता नहीं है?

श्रीमती विश्वास के कथन को समाप्त हुए अभी एक मिनट भी नहीं हुआ था कि यह विचार मेरे मन को मथने लगा। मुझे चुप देख-कर उन्होंने कहा—"बोलो, सतीश बाबू, बोलो, तुम चुप क्यों हो?

मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मुझे अपना मानते हुए भी मेरी अप्रतिष्ठा को तुमने अपनी अप्रतिष्ठा क्यों नहीं समझा ?" मुझे अब स्मरण हो आया कि उस दिन प्रफुल्ल बाबू से जब मैं बात करने गया था तो उन्होंने इस विषय को उठाते हुए कहा था कि इस केस का सबसे अधिक दयनीय स्थल यह है कि एक ओर तो एक सम्भ्रान्त परिवार का नायक सम्पत्ति के लालच में पड़कर अपनी भाभी को विष देता है, दूसरी ओर प्राण हानि का प्रयत्न करने का अभियोग लगने पर यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि मेरी भाभी चरित्रहीन है। इस प्रकार एक ओर हिंसा और दूसरी ओर प्रतिहिंसा का प्रयोग करते हुए वह उस नारी का चरम अपमान करता है, जिसके साथ उसकी जायदाद की स्वामिनी होने का सम्बन्ध तो है ही, साथ ही उसकी सगी भाभी होने का नाता भी है। यह दोनों अपराध एक दूसरे के विरुद्ध भी हैं और पूरक भी। ऐसे घोर पापी के साथ दया, क्षमा और उदारता का व्यवहार करना स्पष्ट रूप से साँप को दूध पिलाने जैसा है। अतएव, मुझे कहना पड़ा— "कहती तो आप ठीक ही हैं किन्तु इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। अब विमल विश्वास के साथ आपका देवर और भाभी का सम्बन्ध समाप्त हो चुका। अब तो वह आपके जान-माल का ही शत्रु नहीं, आपकी लज्जा का भी एक मात्र लुटेरा है। ऐसी दशा में उस प्रतिष्ठा की हानि का सोच करना आपके लिए कदापि उचित नहीं है। कर्तव्य बड़ा कठोर होता है। उसकी रक्षा करने में सदा हमको घोर-से-घोर दुःख सहना ही पड़ता है। रह गई बात प्रतिष्ठा के नाश की, किन्तु प्रतिष्ठा का सम्बन्ध तो जीवन के साथ अक्षुण्ण रूप से रहता है। जो आपके प्राण लेने पर तुल गया है, वह आपकी प्रतिष्ठा का ध्यान ही कैसे रख सकता है ?"

इस पर श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"अब भी आप मूल विषय से अलग ही बने हुए हैं। मेरा कहना तो यह है कि क्या यह उचित न

होता कि हॉस्पिटल से लौट आने पर मैं इस अभियोग को चलने ही न देती। और जैसे भी हो सकता, उसको चुपचाप दबा देती!"

अब एक ऐसा विषय मेरे सम्मुख था जिस पर मुझे अधिकारपूर्वक कुछ कहने का गर्व सदा रहा है और रहेगा। इसलिए मैंने उत्तर दिया–"मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ जो पाप के फल को पका-पकाकर, भीतर-ही-भीतर सड़ने दिया करते हैं। मैं लीपा-पोती का घोर शत्रु हूँ। मैं समाज के नव-निर्माण का स्वप्न देखता रहता हूँ, उसमें इस दुनियाँदारी के लिए क़तई जगह नहीं है। मैं दावे के साथ यह कहना चाहता हूँ कि जब विमल विश्वास कारागार का दण्ड भोगेगा, तब वह स्वयं भी यह समझने का अवसर पाएगा कि उस जैसे पापियों के लिए अब हमारे देश में कोई स्थान नहीं रह गया है—और मेरा तो यह भी विश्वास है, कि तब समाज का कोई व्यक्ति यह कहने का साहस कभी कर नहीं सकता कि श्रीमती विश्वास का ही दोष था और विमल विश्वास निर्दोष होते हुए भी दण्ड भोग रहा है। मैं कानून की प्रतिष्ठा का समर्थक नहीं हूँ, मैं व्यक्ति की उस बनावटी और झूठी प्रतिष्ठा का भी समर्थक नहीं हूँ, जो यह मानता आया है कि नारी की लाज और उसका गौरव छुई-मुई की तरह हीन और तुच्छ वस्तु है। एक मिथ्या आदर्श के लोभ में पड़कर आपको नारी-सुलभ उस भावुकता को तो अपने मन से निकाल ही देना चाहिए, जो आज नारीत्व के नाम पर एक परम्परा बन गई है। इस स्थल पर मैं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि यह आप समझ बैठी हों कि आप रूढ़िवादी समाज की कोई कुल-वधू नारी हैं, और इसलिए इस अभियोग के कारण, आप समाज के सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा करके चल सकने में कदापि समर्थ न रह जाएँगी, तो यह आपका भ्रम है। और मुझे आश्चर्य है कि आप जैसी शिक्षित और सुसंस्कृत नारी को इस तरह की दुर्बलता और भावुकता का भाव ही मन में लाने का साहस कैसे हुआ?"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास रक्खी हुई अपनी रिस्टवाच को कान पर लगाती हुई मुस्कराईं और बोलीं—"मैं समझती थी, यह बन्द हो गई है, लेकिन देखती हूँ कि यह मेरा भ्रम था। घड़ी चल रही है।"

अब मेरे मुँह से निकल गया—"हर घड़ी हमेशा चलती रहती है। जीवन की कोई घड़ी कभी बन्द नहीं होती और जब आप मृत्यु की घड़ी के चारों ओर परिक्रमा कर आई हैं, तो यह घड़ी जिसकी सुइयाँ आपके स्पर्श मात्र से नाचा करती हैं, कैसे बन्द हो सकती है!"

अब श्रीमती विश्वास अपनी कुर्सी से उठकर खड़ी हो गईं और बोलीं—"अच्छा, अब तुम भी सोओ।"

मैंने झट कह दिया—"और तुम?"

वह बोलीं—"तुम नहीं जानते सतीश बाबू कि नींद तो मुझे कभी आई ही नहीं, यद्यपि रात सदा पलकों पर झूलती रही है।"

मैं उनके कमरे से बाहर निकल ही रहा था कि मुझे कह देना पड़ा—"आपको नींद अब आने लगेगी, मगर शर्त यह है कि पलकों पर नींद बुलाने की चेष्टा आपको अवश्य करनी पड़ेगी।"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास खिलखिला कर हँस पड़ीं।

मैं अब अपने शयन-कक्ष में था। लेटने से पूर्व मैंने ड्राअर खोला और उससे अपनी डायरी बाहर निकाल ली। आज के उन प्रभावों को जो मेरे मानस-पट पर स्थायीरूप से अङ्कित हो गए हैं, जब मैंने डायरी में लिपिबद्ध करने की चेष्टा की तो कलम रखते समय एक ओर तो मुझे ड्राअर के अन्दर मिल गया, भाई साहब का चश्मा, जिसको वे यहाँ भूल गए थे, दूसरी ओर मैंने सुना कि दरवाजे पर 'कुट्ट! कुट्ट! कुट्ट!' तीन बार शब्द हुआ। मैंने उसी स्थान से पूछा—"कौन?"

तब मेरे इस प्रश्न का उत्तर भाषा के रूप में न मिलकर संकेत में

मिला और पुनः शब्द हुआ—'खुट्ट ! खुट्ट ! खुट्ट !' तब सशंकित होकर मैंने जो दरवाजा खोला तो क्या देखता हूँ—श्रीमती विश्वास सामने खड़ी हैं। इस समय उनको नाइट-गाउन में अपने यहाँ यकायक अप्रत्याशित रूप से देखकर सहमें स्वर से मैंने पूछा—"क्यों ? क्या हुआ ?"

श्रीमती विश्वास मेरे कमरे के खिले प्रकाश में अन्दर आकर निकट पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गईं और मुस्कुराती हुई बोलीं—"तुमने अभी कहा था कि अगर तुम स्वयं चेष्टा करो, तो तुम्हें नींद आ जायगी। सतीश बाबू, मैंने बहुत चेष्टा की, किन्तु मुझे नींद नहीं आई।"

तब अनायास मैंने कह दिया—"नींद आपको इसलिए नहीं आई कि आप अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो पाई हैं।"

मेरे इस उत्तर को सुनकर श्रीमती विश्वास कुछ अप्रतिभ हो उठीं और झट कुर्सी से उठकर बिना कोई उत्तर दिए, अपने कमरे में चली गईं। जाते समय मैंने लक्ष किया कि एक शीतल निश्वास उनके नासिका-रंध्रों से निःसृत होता जा रहा है; पहले कुछ धीरे-धीरे, फिर एक साथ वेग से।

अब पुनः कुर्सी पर बैठ कर मैंने अपनी डायरी में जो वाक्य लिखा वह यह था :

जो व्यक्ति अपनी वासनाओं और इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रख सकता, वह जीवन में कोई भी महान् कार्य करने में सफल नहीं हो सकता।



: २१ :

मैं चाय पी रहा था। पिछली रात की घटना मेरी आँखों के सामने थी। कमरे का पिछला दरवाजा बन्द था और अगला खुला हुआ था, जिस पर पीले रंग की चिक पड़ी हुई थी। एक कोने में बिस्किट का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था, जिसको बहुत इतमीनान से एक चुहिया कुतर-कुतर कर खा रही थी। उसके दोनों हाथों के बीच में वह टुकड़ा था और चुहिया का मुँह कुछ जल्दी-जल्दी चल रहा था, जैसे सीनेवाली मशीन की सुई कपड़े पर चलती है, बिलकुल उसी तरह चुहिया का मुँह भी चलता जाता था।

इतने में चिक का पर्दा उठा और रामू ने गरम-गरम मूँग की पकौड़ियों की डिश मेरे सामने रख दी। मैंने उसमें से एक पकौड़ी मुँह के भीतर करते हुए पूछा—"मेम साहब क्या कर रही हैं?"

हाथ में लिए हुए तौलिए को बाँए कन्धे पर डालते हुए उसने उत्तर दिया—"अभी तो उनके कमरे का दरवाजा ही नहीं खुला।"

रामू की बात सुनकर मुझे कुछ विस्मय हुआ। मैंने पूछा—"सामने का दरवाजा अगर बन्द है, तो जाकर देखो पीछे का दरवाजा तो खुला है।"

रामू ने उत्तर दिया—"बहुत अच्छा।" और इतना कहकर वह बाहर चला गया। अभी वह भोजन-शाला में पहुँचा भी न होगा कि मेरे कमरे के पीछे के दरवाजे का किवाड़ बोल उठा और मैंने देखा—भैलू चला आ रहा है।

मैंने उससे पूछा—"मेम साहब उठीं या नहीं?" उसने उत्तर दिया—"अबै-अबै उठी हैं। आजु उनके तबीयत कुछु गड़बड़ है।" मैंने पूछा—"क्या गड़बड़ है?—ज्वर आ गया है?—या नींद न आने के कारण सिर में दर्द है?"

भीखू के दाँत दिखाई पड़ने लगे और उसने एक क़दम आगे बढ़कर उत्तर दिया—"छोटेभइया, उनकै लीला न्यारी है ! कुछ पतै नहीं चलत ! हम बड़े-बड़े घरन की मेहरियन का दीख है, मुला इनका सुभाव आजु तक न जानि पावा। सूनी सूनी, उदास-उदास बनी रहै मा इनका न जानी कौनु मजा मिलत है।"

मुझे भीखू की उस बात पर हँसी आरही थी, लेकिन जानबूझ कर मैंने उसे आगे बढ़ने से रोक लिया। हँसी को कभी-कभी रोकना पड़ता ही है। विशेषरूप से वह हँसी, जिसका थोड़ा भी सम्बन्ध अपनी रुचियों और प्रवृत्तियों से हो। मैं समाज के किसी व्यक्ति को अकेला नहीं मानता, हर एक व्यक्ति अपने समाज से प्रभावित होता रहता है। उसका निजत्व समाज-व्यवस्था से अनुप्राणित होता है।

कोई उत्तर न पाकर जब भीखू जाने लगा, तो मैंने उससे पूछा—"क्या तुम उनके कमरे के अन्दर गए थे ?"

उसने ठिठुकते हुए उत्तर दिया—"हाँ, विइ हमका बोलाइन रहै छोटे भइया ! उनका टूथ-पेस्ट चुकि गा रहै। फिर विइ आपका टूथ-पेस्ट माँगेनि रहै। जब हम उनका टूथ-पेस्ट दइ दीन, तब बहुत 'ना नू' करै के बादि हमका पैसा लेक पड़ा।"

"और तुमने ले लिए ?—क्यों ?" मेरे इस कथन में कुछ ज़ोर था। इसलिए भीखू सिटपिटा गया बोला—"छोटे भइया, आप हमते काहेक नाराज होति हौ। जब विइ बिगड़ उठीं कि तुमका पैसा लेक पड़ी, तब हम लाचार होइ गएन।"

अब मैंने भीखू से कुछ नहीं कहा।

इतने में मेरे बाएँ ओर के दरवाज़े का पर्दा उठा और रामू ने आकर कह दिया—"मेम साहब ने कहलवाया है कि आज आपको खाना उन्हीं के यहाँ खाना पड़ेगा।"

तब मैं कुछ विचार में पड़ गया। मैंने पूछा—"मेम साहब इस

समय कर क्या रही हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"अब तो गुसलखाने में हैं।"

इतने में रामू तो मेरी टेबिल पर से चाय के बरतन उठा कर लेगया और मैं कुछ सोचता हुआ कमरे में इधर-उधर टहलने लगा।

मेरे मस्तिष्क में रात की बातों के प्रभाव नाच रहे थे और बार-बार मैं यह सोच-सोच कर गौरव का अनुभव कर रहा था कि ग़लतियाँ तो मुझसे होती हैं, लेकिन उनसे बहुत ही सफ़ाई के साथ बचकर निकल जाता हूँ!

यहाँ यह सवाल उठाना बिलकुल स्वाभाविक है कि ग़लतियों से बच कर निकल जानेवाला व्यक्ति ग़लतियाँ करता ही क्यों है ? मेरे मन के भीतर से कोई बोल उठा—"मनुष्य हर क्षण जो कार्य करता है, वह अगर सही होता है, तो ग़लत भी तो होता है। सही का मुख अगर उज्ज्वल रहता है, तो उसके सिर का पिछला भाग अवश्य काला रहता है। हमारी आकृतियाँ अगर अपना नाम 'सही' पाती हैं, तो हमारे पृष्ठ भाग अगर 'ग़लत' नाम से पुकारे जाते हैं, तो इसमें हमारा क्या दोष है ? दोष तो पुकारनेवालों का है, समाज का है, जगत् का है, मेरा—निज का, अपना, कहीं, कोई दोष नहीं है।

मुझे अपने इस विचार में आज कोई त्रुटि नहीं जान पड़ती। इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न मैं इस विचार को अपनी डायरी का सुबह का नाश्ता बना दूँ और इतना सोचते ही मैं डायरी लिखने लगा।

उस समय जब मैंने क़लम उठाई तो सबसे पहले मेरे मन में एक और इच्छा उत्पन्न हुई कि आज मैं श्रीमती विश्वास के यहाँ बिना बुलाए तो जाऊँगा ही नहीं! मुझे अब अपना काम करना है और अपने को देखना है। मैं लगभग आध घण्टे तक अपना यह विचार डायरी के पन्नों में उँडेलता और सँवारता रहा। इतने में भीखू ने आकर एक पत्र मेरे सामने रख दिया और यह पत्र एक लम्बे लिफ़ाफ़े में था और था भइया

-का। उसमें लिखा था :

प्यारे सतीश,

जियो, जागो ! मैंने तुमको, पिछले पत्र में, लिखा था कि अब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है। इसलिए फ़ौरन चले आओ। मगर तुमने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। आज मैं तुमको एक पेपर की एक कटिंग भेज रहा हूँ और इस विषय में कुछ न लिखकर इसका उत्तर चाहता हूँ।

मुन्ना अच्छी तरह है। मगर तुम्हारी भाभी को बड़े जोर का 'इन्फ्लुइञ्जा' हो गया है। बस.

तुम्हारा,
भइया गिरीश

इस पत्र को देखकर मैं चिन्ता में पड़ गया। अब मैंने साथ की कटिंग जो देखी, उसको पढ़कर मैं स्तब्ध हो उठा। क्योंकि उसमें लिखा हुआ था :

"आज का युग वाद और सिद्धान्त का नहीं है। अब तो वह प्रयोग और व्यवहार का हो गया है। जो अध्यापक और विचारक मनोविज्ञान का अध्ययन बड़े-बड़े ग्रन्थों से करते हैं, वे बहुत दकियानूसी और पिछड़े हुए हैं। मनोविज्ञान के अध्ययन की नई प्रणाली का इधर एक बड़ा सुन्दर आविष्कार हुआ है। और वह यह कि स्वास्थ्य-सम्पादन और सैर-सपाटे के बहाने किसी मनचाही जगह पर चले जाओ और मनचाही प्रेरणाओं का प्रत्यक्ष और व्यावहारिक ज्ञान ही नहीं, अनुभव भी प्राप्त करो। सरलतापूर्वक जो रमणी अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए तत्पर न हो, उसके साथ खूब घुलमिल कर रहो। एक मास, दो मास, चार मास···वर्ष···दो वर्ष···चार, छः वर्ष ! उसके मन को उठाओ, खींचो और पत्थर की शिला पर ऐसे पटको जैसे धोबी कपड़ों को भींचता और पटकता है। धोबी तो कपड़ों की रक्षा का ध्यान भी थोड़ा बहुत रखता है, पर आपको अधिकार है कि उठा-पटक कर

आप उसके मन की धज्जियाँ उड़ा दें ! उसे चीर डालें और चाहें तो सर्वथा नष्ट ही कर दें ! इस प्रकार का एक प्रयोग स्थानीय डिग्री कॉलेज के एक प्राध्यापक आजकल मसूरी में कर रहे हैं। उनका नाम बहुत बड़ा है। वह सत्य के अन्वेषक ही नहीं, उसके विधाता हैं। और इधर हाल ही में अपने एक प्रयोग में उनको बड़ी सफलता मिली है। कानों में कोई कह रहा है कि वे अपनी एक प्रेयसी को लेकर शीघ्र ही स्विटजर-लैण्ड को प्रस्थान करने जा रहे हैं। ऐसी अनुपम सफलता के लिए वह इस नगर के बुद्धिजीवी वर्ग की हार्दिक बधाइयों के पात्र हैं।

—एक प्रत्यक्षदर्शी·

डायरी का आधा पृष्ठ समाप्त हुआ ही था कि भीखू आ पहुँचा और बोला—"मेमसाहब आपकै यादि कै रही हैं ?"

मैं अब ज्योंही उनके यहाँ पहुँचा, त्योंही यह देखकर दंग रह गया कि वहाँ प्रफुल्लबाबू जमे हुए हैं। यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"क्या अभी-अभी आ रहे हैं ?"

वे उत्तर में जरा भी अस्थिर न होकर बोल उठे—"नहीं, मैं रात को भी यहीं था।"

मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मैं सचमुच किसी दूसरे लोक में जा पहुँचा हूँ।



: २२ :

मैं जब घर पहुँचा, तब प्रकाश—मुन्ना—घोड़े की मुँहवाली साइकिल चला रहा था। भाभी मशीन पर बैठी हुई ब्लाउज़ पर बखिया कर रही थीं। नौकरानी धोती में साबुन लगा रही थी और भाई साहब बैठक में हिसाब-किताब देख रहे थे। मैं जैसे ही सहन में पहुँचा, मुन्ना ने साइकिल पर चढ़े-चढ़े शोर मचाना शुरू किया—"चाचा जी आ गए, चाचा जी आ गए।" साइकिल छोड़ कर वह मेरे पैरों से लिपट गया। मैं उसको कमरे में ले गया और कई नए किस्म के खिलौने जो मने उसको दिखलाए, तो वह वहीं उछलने लगा। इतने में भाभी आ पहुँचीं। मुन्ना बोला—"सड़क खाली करो, मोटर आ रही है। मोटर चलेगी, ये चली, ये चली।" और उसने मोटर में चाभी भरकर छोड़ दी। मोटर सहन के उत्तर से चली और दक्षिण में पड़ी हुई चटाई पर जहाँ गेहूँ सूख रहे थे, चढ़ गई।

भाभी के चरण-स्पर्श कर मैंने पूछा—"कहो भाभी, सब आनन्द है न ?"

उन्होंने बतलाया—"और तो सब ठीक है, लेकिन मुनीम जी बहुत बीमार हैं। उनके बचने की बहुत कम आशा है।"

मैंने पूछा—"बीमार क्या हैं ?"

उन्होंने बतलाया—"लज्जा के कारण वह किसी से मिलते-जुलते नहीं हैं। उस दिन से बाहर नहीं निकले। उठ-बैठ नहीं सकते। शरीर भर में सूजन आ गई है। उन्होंने कोई औषध ऐसी खा ली है, जिससे उनका बदन भर सूज गया है। जहाँ अधिक सूजन है, वहाँ अँगुली गढ़ाने से गड्ढा पड़ जाता है और फिर अँगुली निकाल लेने से तुरन्त भरता नहीं।"

मैंने पूछा—"दवा किसकी चल रही है ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"डॉक्टर रघुबीर को" और यह भी कहने लगीं—"उनको बीमारी तो लज्जा की है। आत्मग्लानि उनको इतनी अधिक है कि अब तक वे जीवित हैं, यही आश्चर्य की बात है।"

मैंने पूछा—"ग़बन के रुपयों का क्या हुआ ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"उनके चिरंजीव जमानत पर छूटे हुए हैं। रुपया उन्होंने कहीं ग़ायब कर दिया है, लेकिन मुनीम जी ने अपना मकान गिरवी रख दिया है।"

मैंने पूछा—"किसके पास ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मेरे पास! दस्तावेज़ की रजिस्ट्री हो गई है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"चलो यह बहुत अच्छा हुआ।"

तब वे बोलीं—"मकान गिरवी रखकर जब उन्होंने ग़बन का रुपया चुकता कर दिया, तब उनके चिरंजीव के ऊपर जो ग़बन का मुक़दमा है, वह भी तो हमको क़ायदे से उठा लेना चाहिए। पर तुम्हारे भइया का यह कहना है कि दण्ड तो अपराधी को हर हालत में मिलना ही चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा है कि जब उसको दण्ड मिल जायगा और वह जेल चला जायगा, तब मैं मकान का वह रेहननामा मुनीम जी की धर्मपत्नी को वापस कर दूँगा। रेहननामा तो हमने अमानत के रूप में रख लिया है। वह तो तराज़ू का एक पल्ला मात्र है। दूसरा पल्ला उनके सुपुत्र के दण्ड का है। दण्ड भोग लीजिए तो रेहननामा वापस, न भोगिए, अपने भाग्य से छूट जाइए, तो रेहननामा तो अपना है ही।···बस, मुनीम जी की बीमारी तुम्हारे भइया के इसी निश्चय का एक रूपमात्र है।"

इतने में एक बिल्ला और बिल्ली गुर्राती और लड़ती हुई बग़ल में आ पहुँची। बिल्ला अन्त में भाग खड़ा हुआ। बिल्ली भी उसके पीछे दौड़ती हुई चली गई। मैंने कहा—"बिल्ला तो मैंने इसके पहले

इस मकान में कभी नहीं देखा था!"

भाभी ने उत्तर दिया—"तुम्हारे भइया कहते हैं कि यह बिल्ला मुनीम जी के साहबजादे का प्रतीक है।"

सब बातें सुन और समझ कर मैं बहुत सोच-विचार में पड़ गया। यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी कि जब मुनीम जी के साहबजादे से उन्होंने ग़बन का केस नहीं उठाया, तब रेहननामेवाले दस्तावेज को क्यों अपने पास रहने दिया। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा कि इस मामले में भइया का व्यवहार आवश्यकता से अधिक कठोर है।

सन्ध्या को जब मैं भइया के साथ खाना खाने बैठा, तब उन्होंने सारी घटना विस्तार से बतला दी। उन्होंने कहा—"जब मैं तीस हज़ार के चेक को संकट के समय के लिए उनको सौंप गया था, तब उन्होंने उसकी जिम्मेदारी का पूरा अनुभव नहीं किया। उन्होंने कैशबक्स की तालो उस बदमाश लड़के को दे ही क्यों दी!"

भाभी खाना परोस रही थीं। तरोई और मूली का मिश्रित साग जब वह परोस चुकीं और उसके बाद एक खस्ता कचौड़ी और रखने लगीं, तो भइया बोल उठे—"बस, अब और मत रखना। मुझे भूख बहुत कम थी। सतीश बहुत दिनों बाद आया है, इसलिए साथ भोजन करने के इरादे से मैं खाना खाने बैठ गया हूँ।"

तब मेरे मुँह से निकल गया—"भइया और तो सब ठीक ही है। मगर एक बात मेरी समझ में नहीं आई कि जब मुनीम जी ने अपना मकान गिरवी रख दिया है, तब आपने उनके लड़के पर से ग़बन का केस उठाने की चेष्टा क्यों नहीं की?"

भाई साहब कुछ गम्भीर हो गए और बोले—"यह तुम मुझसे पूछ रहे हो? मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है तुम्हारे इस प्रश्न पर! तुम कभी किसी भ्रम में पड़कर अपनी भाभी को गाली दे बैठोगे, और उसके बाद मेरे डाटने पर उससे माफ़ी माँग लोगे, तब तुमको माफ़

करने के बाद भी उसके मन में तुम्हारे प्रति प्यार की जो भावना रहेगी, मैं पूछता हूँ क्या वह ज्यों-की-त्यों हो गई ? उसके मन में सदा के लिए एक भय नहीं बैठ जायगा ? एक आशङ्का नहीं जम जायगी कि मौका पड़ने पर यह मेरा अपमान फिर इसी तरह कर सकता है। भगवान् के राज्य में ऐसा कोई विधान नहीं है कि किसी आदमी की हत्या कर डालने पर अगर वह लाख, दो लाख रुपए अदालतबाजी में फूँककर बच भी जाय, तो हत्या के अपराध से उसको मुक्ति मिल जायगी ! हत्या सदा हत्या रहेगी और ग़बन हमेशा ग़बन रहेगा !"

भइया का उत्तर सुनकर मैं स्तब्ध हो उठा और तुरन्त तो कुछ न कह सका, किन्तु थोड़ी ही देर बाद मेरे मुँह से निकल गया—"आपका विचार ठीक ही है भइया ! मुझको अभी आपके चरणों के निकट बैठकर बहुत कुछ सीखना है।"

भोजन करने के बाद मैं जब बाहर आया तब बैठक में जो महाशय मिले, वे इलाहाबाद से आए थे और एक पत्र के उपसम्पादक थे। उनका पत्र बन्द हो चुका था और माफ़ीनामे का एक ड्राफ्ट उनके हाथ में था। उन्होंने पूछा—"गिरीश बाबू कहाँ हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—"अभी आ रहे हैं।"

अब भइया के तर्क से प्रभावित होकर मेरा मन कह रहा था, यदि इस पत्र-सम्पादक को भी वह क्षमा न करें, तो कितना उत्तम हो। भइया कमरे से बाहर आ रहे थे और मैं हँस रहा था।



: २३ :

अग्नि···अनुभूति की अग्नि, पार्थक्य की अग्नि, वियोग की अग्नि और अग्नि स्वयं···! आँच लग रही है, शरीर झुलस रहा है, मनप्राण विकल हैं, चेतना मूर्छित है! कैसा है यह क्षीरफेन, कैसा है यह उद्वेलन और है कैसा यह द्वन्द्व!

नीचे की गली से जाता हुआ एक व्यक्ति बड़ी मस्ती और अदा के साथ गा रहा है :

> ज़माना रंग बदलता है,
> रोज़ सबेरे दिन चढ़ता है, शाम को ढलता है!
> ज़माना रंग बदलता है!

ये पंक्तियाँ निश्चय ही मेरी आज की परिस्थियों से कुछ कहती-सी जान पड़ती हैं 'किन्तु क्यों सतीश, एक लम्बे अरसे से जो तू इस प्रकार एक कोमल भावना को अपने दिव्य आदर्श, अपने प्रभावोद्भूत चरित्रबल और अपने ज्ञान के उज्ज्वल धवल आलोक से पदाक्रान्त, पददलित, चूर्णविचूर्ण करने की कला का प्रदर्शन कर रहा है, वह कला अब कहाँ चली गई, कहाँ विलुप्त हो गई?'—अन्दर से भी, कभी-कभी कोई मुझसे प्रश्न करता है, इसका अनुभव अब मैं विशेषरूप से करने लगा हूँ।

'ओह! कितना शिथिल है तू सतीश—तृणवत!—मानव सतीश! तेरे पैर कम्पित हो रहे हैं, तेरी गति शिथिल है और पराजय को तेरा हृदय—अहंकार—अपनी विजय समझ बैठा है।'

'धिक्कार! छिः छिः!'—मैंने देखा कि दीवार पर यह शब्द बनते और मिटते जा रहे हैं, किन्तु बड़ी शीघ्रता के साथ।

अनेक ध्वनियाँ—'तू अब यहाँ नहीं रह सकता, नहीं रह सकता··· क्योंकि तू वास्तव में यहाँ है ही नहीं! तू तो वस्तुतः वहाँ है और वहीं

से बोल रहा हूँ।'

मेरा सम्पूर्ण शरीर स्वेद से भीग गया। सर फटने लगा। रोमांच हो उठा। जी में आया—'चलो, निकलो, निकलो यहाँ से सतीश, अब तुम यहाँ कैसे रह सकते हो···कैसे ?'

कुछ क्षण तक ज्वालामुखी का रौद्ररूप लिए, पराजय की गहरी कालिमा लिए, हृदयविदारक आकाश की गड़गड़ाहट लिए मैं अपने मकान के ऊपरी कमरे में चंचल मन, अस्थिर गति टहलता रहा।··· मकान जिसमें भाभी इस समय स्नान कर रही हैं, मकान जिसमें भाई साहब बैठे ईश्वर की आराधना में लीन हैं···मकान जिसकी बैठक में कभी मुनीम जी बैठा करते थे, हिसाब-किताब की बहियाँ, लाखों रुपए के लेन-देन तक जिनका नियंत्रण था।···मकान, जिसके हरेक प्राणी पर उनके स्नेह का बलिष्ट हाथ था, जिसकी सम्पूर्ण श्री-समृद्धि पर उनके कर्म जीवन के लम्बे-लम्बे हाथों की छाया थी। ऐसा जान पड़ता है कि वह सेनानी अपना सहयोग छोड़ बैठा है। मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ वह कराह रहा है।···केवल एक कर्तव्य का वंशीरव कभी-कभी भाई साहब के कथनों से गूँज उठता है। भइया न्याय, धर्म, सत्य, दया और ममता आदि की साकार मूर्ति ! सब काम में लगे हैं। सब अपने मार्ग से जा रहे हैं। मैं भी अब कॉलेज जाने लगा हूँ। मनुष्य अपने-अपने कर्म से बँधा हुआ है, किन्तु उसकी कुछ इच्छाएँ हैं, वासनाएँ हैं, स्वार्थ हैं और महत्वाकांक्षाएँ हैं, जो उसके नैतिक कर्म और धर्म का अनुशासन नहीं चाहतीं, हस्तक्षेप और नियमन नहीं चाहतीं। मैं भी नियमन नहीं चाहता। मेरा मन यहाँ है ही नहीं। मैं तो खो गया हूँ ! मेरे सामने कोई निश्चित कार्यक्रम ही नहीं है। भाई साहब अब विवाह की चर्चा भी नहीं करते कभी ! क्या वह भीतर कुछ टटोलते रहते हैं ? क्या उन्होंने मेरा कुछ मनोभाव समझ लिया है कि ये जो दो प्रकार के वक्तव्य समाचार-पत्रों में आए हैं, क्या उनके भीतर बैठकर उन्होंने मेरा

नग्नरूप देख लिया है ?—नहीं देख लिया है, तो वे विवाह के सम्बन्ध में क्यों चुप हैं ?

मैं आज कई दिन से श्रीमती विश्वास के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरे मन में कभी प्रफुल्लबाबू भी बोलते हैं। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि वे मुझसे कुछ छिपा रहे हैं, लेकिन यहीं मैं ग़लती कर रहा हूँ। उस दिन जब मैंने पूछा था—"अरे, आप कब आ गए ?" तो उन्होंने मुझसे कुछ छिपाया नहीं ! बिना कुछ सोचे, संकोच किए, चट से कह दिया था—"नहीं, मैं रात को भी यहीं था।" तो उनके कथन में कितनी स्पष्टता थी, कितनी सचाई थी ? लेकिन मुझे आज कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस संसार में मेरे लिए कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है !

क्या मैं अब भी ग़लती कर रहा हूँ जबकि इस परिणाम पर पहुँच रहा हूँ कि मेरे लिए कुछ भी नहीं है। जब कि श्रीमती विश्वास ने कहा था—"सतीश बाबू, मुझे नींद नहीं आ रही है।" यह एक ऐसा अवसर था जब मेरे लिए संसार में कुछ था, थोड़ा-सा था, कुछ-कुछ था, सम्पूर्ण नहीं था, सम्पूर्ण से कुछ कम था, कदाचित बहुत कम था, लेकिन ऐसा तो नहीं था, कि बिलकुल नहीं था। तब, मैं ऐसा क्यों सोच रहा हूँ कि मेरे लिए इस संसार में कुछ भी नहीं है।

श्रीमती विश्वास, मैं तुमको निष्कपट, निश्छल, बहुत भोली, बहुत सुकुमार, कोमलतम नारी मानता था, किन्तु तुमने अपना जो परिचय दिया है, वह बहुत घृणित है, बहुत ही गिरा हुआ है ! तुमने उस दिन रात को मेरे शयनकक्ष से निराश, निराश, लौट आकर निश्चयपूर्वक प्रफुल्लबाबू को फ़ोन किया होगा और प्रफुल्लबाबू, तुम मेरी दृष्टि में अपनी पहली भेंट में जितने ऊँचे उठ गए थे, उसके बाद उस दूसरी भेंट में मैंने जो तुम्हारा कुरूप देखा, उसमें तुम बहुत गिर गए। विलम्ब न एक क्षण का श्रीमती विश्वास ने किया और न तुमने किया।

तुम दोनों बहुत बुद्धिवादी बनते थे। तुम्हारी डींगें और घोषणाएँ बड़ी-बड़ी लम्बी और चौड़ी थीं, किन्तु तुम तो एक साधारण मानव से भी गिर गए! धैर्य नाम की वस्तु ही तुम में से किसी में नहीं रह गई। किसी ने भी यह नहीं सोचा कि हमारे बीच में एक और प्राणी है। प्रफुल्लबाबू, तुमने जो नहीं सोचा वह तो स्वाभाविक ही था; क्योंकि स्पष्ट है, कि तुम्हारे साथ श्रीमती विश्वास के कुछ पूर्व सम्बन्ध भी रहे होंगे! किसी बात पर एक मत न होने के कारण आपस में खटक गई होगी और इसलिए तुमने उनके यहाँ आना-जाना त्याग दिया होगा। किन्तु श्रीमती विश्वास, तुम? मैं तुमको बिलकुल पशु समझता हूँ! मुझे तुम्हारे इस रूप पर दया आती है। तुमने वह जो किराया हमसे नहीं लिया था और कम्बल वगैरह जो नौकरों को बाँटे थे, वह सब तो मुझको दिखलाने भर के लिए था। क्योंकि प्रदर्शन के बिना तुम और तुम्हारा सारा वर्ग एक क्षण भी टिक नहीं सकता! तो तुम संस्कृति सभ्यता और प्रेम के नाम पर, मनुष्य को खींचने और उसकी आत्मा का रस चूसने का व्यवसाय करती हो! क्षण भर में ही 'अ' के बाद 'ब' पर उस मक्खी की तरह टूटती हो, जिसके पंख नाना प्रकार के घृणित और दुर्गन्धमय रस, मवाद, पंक, रक्त और मल-मूत्र में सने रहते हैं। तुम्हारे पास उस रूप और संस्कृति का प्रलोभन है, जो वंशी की तरह मछली को फाँस लेती है। तुम्हारे पास वह महीन, बारीक रेशमी जाल है, जिसमें कोई भी मक्खी आकर फँस ही जाती है! तो तुम मकड़ी हो, तुम वेश्या हो, नागिन हो, और तुम इतनी तुच्छ हो, इतनी पतित हो, कि तुम्हारा स्मरण-मात्र मुझे नारकीय मालूम पड़ता है!—और तुम्हारा वह आदर्श भी कितना निकम्मा, खोखला और कपट-जाल से भरा हुआ है! यह दो-दो नावों पर पैर रखकर खड़े-खड़े चलना, यह दो-दो, तीन-तीन व्यक्तियों को लोभ दे-देकर, फाँस-फाँस कर, रखना कितना व्यावसायिक है? प्रफुल्ल आज अगर मर जाय, तो लाखों की

सम्पत्ति तुम्हारे हाथ अनायास लग जायगी। और तुम जो विमल विश्वास के साथ न रहकर शैल-शृंग पर क्रीड़ा और कौतुक का जीवन बिताती हो, यह सब भी कितना कृत्रिम और अन्त में कितना विषाक्त है ?

ऐसी दशा में मुझे अब क्या करना चाहिए ? अब रात के बारह बजे हैं। भइया, भाभी सो रहे हैं। बगल में मुन्ना भी सो रहा है। आज भीखू बेचारा बहुत थक गया है और रामलाल की तो अँगुली ही कटते-कटते बची थी—साग बनाते हुए। उसकी वे रक्त की बूँदें ! मैंने ही तो पट्टी बाँधी थी ! भाभी ने तुरन्त रूमाल दे दिया था। हाँ, गगन पर बिजली की बत्तियाँ छाई हुई हैं। बड़ी-बड़ी चिमनियाँ, क्लाक-टावर, मस्जिदों के कँगूरे, छायाचित्र बनकर आँखों में अपनी मुद्रा सदा के लिए स्थापित कर देना चाहते हैं। ट्रेन कोई शंटिंग कर रही है : माल-गाड़ी के डब्बे एक दूसरे से भिड़ रहे हैं, ऐंजिन अपनी नाक से बोल रहा है, सड़क पर आती हुई कार हार्न दे रही है। कहीं किसी मकान से ग्रामोफ़ोन रिकार्ड—का स्वर 'कैसे जादू किया, मुझको इतना बता, जादूगर बालमा !···जादूगर···बा···ल···मा !!' यह स्वर इस रिकार्ड में जिसका है, उसके अन्तर का नहीं है। उसके प्राण का नहीं है, विशेष रूप से यह जादूगर शब्द तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी अंकुर का नहीं है, कली का भी नहीं है, उस पुष्प का है, जिसकी पहली पंखुड़ी अभी गिरी है। मगर प्रफुल्लबाबू, उस दिन तुमने जो जादू किया, वह जादू भी किसी व्यक्ति का नहीं था, आदमी का नहीं था, कीड़े का था और वह जादू भी चूँकि श्रीमती विश्वास के आह्वान से आया था, पुकार से आया था इसलिए श्रीमती विश्वास भी नारी नहीं थीं। ममतामयी नारी, आत्मा नहीं थी। साधना की जननी, वह भी एक कीड़ा थी, क्षुद्र ! ऐसे कीड़े जो बिजली के प्रकाश के इर्द-गिर्द नित्य सहस्त्रों और लाखों की संख्या में उतरते ही रहते हैं !—मौत के

घाट !

डायरी समाप्त हो चुकी है। अब मैं भी सोने जा रहा हूँ। बत्ती ऑफ़ कर दी है और करवट बदल ली है। दो काले-काले छायाचित्र मेरे सामने हैं। एक कहता है—'हटो, मुझे नींद आ रही है।'

दूसरा कहता है—'हट जाओ, मेरे सामने से, निकल जाओ, मेरे कमरे से ! कभी मत आना इधर······जाओ, जाओ······नहीं तो गोली मार दूँगी······'

इतने में अलमारी के ऊपर से कूदती हुई बिल्ली मेरे पास से निकल गई और मैं सोचने लगा—गोली छूट गई !

और मैं हँस पड़ा !



: २४ :

सुबह हुई—सोने की। भगवान् करे ऐसी सुबह सब की हो। आज आठ नहीं बजे होंगे कि भइया का पूजन समाप्त हो गया और चाय के समय उन्होंने टोस्ट के छिद्रों में मक्खन खूब अच्छी तरह भरकर और ऊपर भी एक दोहरी पर्त देकर टोस्ट मेरे सामने बढ़ा दिया। स्वयं अपने टोस्ट को दाँत से काटते और मुँह चलाते हुए बोल उठे—"खाओ न, मैंने तुम्हारे ही लिए बनाया है।" भाभी सामने थीं। मैंने उस टोस्ट को चाकू से बीच से काट कर उसका एक टुकड़ा उनको दे दिया और दूसरा मैंने स्वयं ले लिया। मुन्ना बिस्किट खा रहा था, लेकिन—सूखा! मैंने उसकी नोक पर भी मक्खन का एक टुकड़ा रख दिया और उसको मुन्ना के मुँह में देते हुए ज्यों ही मैं अपने टोस्ट को उठाकर खाने लगा, त्योंही भाभी बोलीं—"आज जब मैं सुबह उठी थी, तो मुझे नकुल ने दर्शन दिया था। अवश्य ही आज कोई ऐसा समाचार मिलेगा जो हमारे परिवार में प्रसन्नता की वृद्धि करेगा।"

भइया कुछ मुस्कराए और बोले—"आज श्रीमती विश्वास का ही कोई समाचार मिलेगा।"

मैं ऐसे अवसर पर भइया से आँख मिलाते हुए सदा संकुचित हो उठता था। आज भी मैं कुर्सी से उठ कर, घूमकर इधर-उधर देखने लगा।

भइया ने पूछा—"क्यों, क्या हुआ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई कीड़ा अभी मेरे सिर पर रेंग रहा था।"

भाभी बोल उठीं—"जमीन में तो नहीं गिरना चाहिए था।"

भइया ने कह दिया—"हाँ, जमीन में गिरना तो बिलकुल बेकार है। कान पर रेंगने लगता, तो कोई बात भी थी।"

भाभी इस पर हँस पड़ीं। मैं और अधिक संकुचित हो उठा। इतने में मुझे ऐसा जान पड़ा कि बराण्डे में पोस्टमैन खड़ा है। इतने ही में चिक का परदा उठा और सचमुच पोस्टमैन ने आकर भइया से कहा—"आपके नाम एक रजिस्ट्री है।"

भइया ने रजिस्ट्री ले ली और रसीद पर हस्ताक्षर कर दिए। इतने में मुन्ना मेरे पास से हटकर भइया के पास चला गया और भइया ने चाय का घूँट 'सिप' करते हुए रजिस्ट्री वाला लिफ़ाफ़ा मुन्ना को दे दिया और साथ ही यह भी कह दिया—"खोलो, तुम देखने आए थे कि इसके अन्दर क्या है, इसलिए खोलो!"

मुन्ना ने लिफ़ाफ़ा एक बार उलटा-पलटा और कह दिया—"यह तो बन्द है। कैंची के बिना नहीं खुलेगा।"

मैंने अब कह दिया—"तो फिर घन्टी वाली इस बटन को अँगुली से दबाओ। इसकी घन्टी भोजनशाला में है। जब तुम इसको दबाओगे, तब घन्टी वहाँ बजेगी, फिर भीखू आ जायगा। तब तुम उससे कैंची मँगवा कर यह लिफ़ाफ़ा खोलना।"

मुन्ना बोला—"इस बटन पर···?"

मैंने कहा—"हाँ, दबाओ इसको।"

और मुन्ना ने बटन दबा दिया। दो मिनट बाद भाभी ने लिफ़ाफ़ा भी खोला, तो क्या देखता हूँ कि सबके नाम श्रीमती विश्वास की अलग-अलग चिट्ठियाँ हैं! एक बिल्टी है।

भइया ने बिल्टी फ़ौरन भीखू को दे दी और कह दिया—"जाओ, छुड़ा लाओ।" थोड़ी देर बाद जब पार्सल खोला गया तो उसमें कई चीजें निकलीं। श्रीमती विश्वास ने ताजे, किन्तु ग्राइप फ़ूट्स भेजे हैं! साथ में मुन्ना के खेलने के लिए कुछ बुद्धिवर्द्धक 'गेम्स' हैं। एक नए प्रकार के 'कार्ड्स' हैं, जिनमें चार व्यक्तियों की सेनाओं के चीफ़ कमाण्डर अपने सहायक उच्चाधिकारियों के साथ हैं। सभी ताशों के

इक्कों पर बापू की तस्वीरें बनी है, जिसके नीचे लिखा हुआ है—'एकता ने स्वतंत्रता दी।' दूसरा इक्का पटेल का है, जिसमें उनके चित्र के नीचे लिखा हुआ है—'मैंने कोई कार्य असमय पर नहीं किया।' तीसरा इक्का पंडित नेहरू का है, जिसमें उनकी तस्वीर के नीचे लिखा हुआ है—'राष्ट्र के नवनिर्माण के अवसर पर आराम हराम है।' चौथा इक्का सुभाषबाबू का है, जिसके नीचे लिखा हुआ है—'मैंने अपने महान् उद्देश्य को ही सदा अपने सामने रक्खा ! —और प्रतिक्रियाओं के हाथ उसको कभी बेचा नहीं !'

भाईसाहब ने जब ये कार्ड्स देखे, तो वे उछल पड़े। बोले—"वाह आज श्रीमती विश्वास ने तबीयत खुश कर दी !"

भइया जब इस प्रकार अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे, तब मैं अपने कमरे में बैठा हुआ श्रीमती विश्वास का पत्र दुबारा पढ़ रहा था। उसमें लिखा हुआ था—

प्रिय सतीश,

तुम यहाँ से कुछ प्रतिक्रिया लेकर गए हो, यह मैं जानती हूँ। किन्तु तुमको थोड़ा भ्रम हो गया है। प्रफुल्लबाबू को रात में मैंने स्वयं नहीं बुलाया था, वे अपने मन से मेरे यहाँ उस समय आ गए थे। वे सिनेमा देखकर लौटे थे और बुरी तरह से 'डाउन' थे। मैंने जब उनको उस दशा में देखा, तो तुरन्त उसी कमरे में सुला दिया, जिसमें विमल विश्वास ठहरा हुआ था। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया था। 'एक भले आदमी की तरह जीवन बिताइए। खाना न खाया हो तो मैं अभी उसका प्रबन्ध करदूँ।' वे बोले—'मैं यहाँ तुम्हारा लेक्चर सुनने के लिए नहीं आया हूँ।' तब मैंने उत्तर दिया—'तो आप चुपचाप सो जाइए।' वे बोले—'तुम्हारे यहाँ ह्विस्की तो होगी, थोड़ी और लेना चाहता हूँ।' मैंने उत्तर दिया—'इधर आइए' और मैंने अलमारी खोल दी और कह दिया—"बोतलें जरूर रक्खी हैं, फिकबाई नहीं हैं। सब खाली पड़ी हैं। एक

बूँद उनमें से किसी में अब बाकी नहीं है। मैं अब अपने जीवन के साथ पतन का कोई सौदा नहीं करना चाहती। वासना, भूख, भोग और विलास मैंने त्याग दिया है। मैं प्रत्येक क्षण यह अनुभव कर रही हूँ कि मृत्यु मुझे याद कर रही है और हँस रही है। मैं जीवन चाहती हूँ और उस जीवन को बहुत कुछ और महान् बनाना चाहती हूँ। मैंने भूख को, तृष्णा और वासना को मसल कर, पीस कर, नष्ट कर डाला है। आप मुझसे कोई ऐसी आशा न करें, जो मेरे इस उद्देश्य के मार्ग में बाधा बन सके। जाइए, आप सो जाइए।' उन्होंने एक बोतल उठाई। हो सकता है, उत्तेजनावश वे उस बोतल को मेरे सिर पर दे मारते। इस-लिए मैंने आवेश में आकर बोतल उनके हाथ से छीन ली। तुम जानते हो प्रमाद में पड़कर मनुष्य की शक्ति मर जाती है। मैंने तुरन्त वह बोतल बराण्डे में खड़े होकर बाहर फेंक दी वह बाउन्ड्री से जाकर टकराई और वहीं चूर-चूर होकर गिर पड़ी। उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, मैं समझा। अब तुमको मजबूर नहीं करूँगा।' वे अब सचमुच सँभल गए और निकट आकर बिलकुल मेरे कन्धे से लगकर बोले--'तुम्हारे इन कोमल हाथों में अगर मेरे लिए अमृत नहीं है, तो विष तो है? तुम अब मुझे वह विष ही पिला दो, तो मैं जी जाऊँ!' मैंने उत्तर दिया—'तुम होश में नहीं हो, इसलिए मैं तुमको इसका उत्तर न दूँगी। मेरे जीवन में अब विष नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई। तुमको मालूम होना चाहिए कि अब मेरे शरीर में उस नारी का रक्त है, जो आज के इस युग में भी सीता के समान पवित्र एक महान् आत्मा है। उसमें अमृत-ही-अमृत भर गया है, छा गया है। तुम मुझको गलत मत समझो। मैं अब जीवन भर कोई ऐसा कार्य न करूँगी, जिससे मातेश्वरी सीता का रक्त, उसकी पवित्रता को आँच आए। तुम अब मेरे प्रेमी नहीं हो, मेरे एक बन्धु के समान हो। मैं तुमको प्यार दे सकती हूँ, किन्तु वह प्रेमी का नहीं, उस बहन का है, जिसकी लाज और

मर्यादा की रक्षा करना तुम्हारा पावन धर्म हो गया है। जाओ, चुपचाप जाकर सो जाओ। सबेरे जब उठोगे, तुम्हारा मस्तिष्क निर्मल होगा; चेतन होगा, तब तुम अनुभव करोगे कि रात के एक बजे जिस नारी से मेरी बातें हुई थीं, वह श्रीमती विश्वास नहीं बहन विश्वास थी।'

मेरा इतना कहना था कि प्रफुल्लबाबू की आँखों में आँसू भर आए और उनके मुख से निकल गया—'मुझे क्षमा करो, मुझे क्षमा करो।' और उसके बाद प्रफुल्लबाबू फूट-फूट कर रो पड़े। वहीं फ़र्श पर लेट गए, करवटें बदल-बदल कर वे रोते रहे। मैंने तुरन्त अपनी साड़ी से उनके आँसू पोंछे और उनको समझाया—'बापू की याद करो, राष्ट्र-पिता का स्मरण करो, भगवान् तुमको शान्ति, धैर्य और ज्ञान देगा।'

इसके बाद प्रातःकाल हुआ और उठते ही वे चुपचाप जाने लगे। मैंने उनके लिए टैक्सी मँगवा दी। गेट तक मैं उनको भेज आई। दिन बीता, सायंकाल उनका फ़ोन आया और उन्होंने कहा—'मैं यहाँ से बम्बई जा रहा हूँ, वहाँ दो-चार दिन रह कर स्विट्ज़रलैंड चला जाऊँगा। तुम्हारे केस को लड़ने के लिए मैंने बहुत उत्तम प्रबन्ध कर दिया है। तुम यह न समझना कि मैं तुमको मँझधार में छोड़ जा रहा हूँ। तुम और कोई प्रतिक्रिया भी अपने मन में न लाना।'

मैं आज यहाँ अपने अपने को सर्वथा अकेला अनुभव करती हूँ। बार-बार मेरे मन में एक बात आ रही है। क्यों न मैं विमल विश्वास पर से मान-हानि का दावा उठा लूँ। क्यों न मैं पुलिस को अपने पक्ष में करके विमल विश्वास को दण्ड से मुक्त करवा दूँ। मुझे रात-दिन अशांत रहकर अब जीवन नहीं बिताना है। मैंने अपने कार्य की एक योजना बनाई है। और मैं एक आश्रमवासिनी तपस्विनी का-सा जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ। नैतिक शिक्षण की एक पाठशाला मेरे यहाँ लगने लगी है। अभी तो केवल दो घण्टे का कार्यक्रम है। तुम जब

यहाँ आओगे, तो एक नई दुनिया पाओगे। तुम यह जानकर दुखी न होना कि इस कार्यक्रम के द्वारा मैं जीवन से किसी प्रकार की विरक्ति मोल ले रही हूँ। जीवन के साथ मेरा वैराग्य कभी नहीं होगा। बच्चों में रहकर इनके साथ हँस-खेल कर मैं बहुत सुख, शांति के साथ रह सकूँगी। एक-एक क्षण को मैं सदुपयोग के रूप में बिताऊँगी। घी, दूध, मक्खन, टोस्ट आदि वस्तुएँ मैंने त्याग दी हैं। मूँग की दाल, दलिया और कुछ 'ताजे फ्रूट्स' ले रही हूँ। गीता का पाठ आरम्भ कर दिया है। मैं सोचती हूँ कि इस प्रकार रह कर मैं तुम्हारे आदर्श के अधिक निकट पहुँच रही हूँ। इन अक्षरों का कोई अन्य अर्थ तुम न समझ लेना। अगर तुम्हारा मन यहाँ आने का हो और तुम यह समझो कि केस को उठा लेने में मेरी कहीं से भी पराजय है, तो मैं चाहूँगी कि इस विषय में हम लोग एक बार पास बैठ कर विचार-विनिमय कर लें। कोई ऐसी ग़लती मैं नहीं करना चाहती, जिससे तुमको उलाहना देने का कभी अवसर मिले। मुन्ना को मेरी ओर से प्यार कर लेना और काजू किशमिश अपने हाथ से उसके मुँह में छोड़ देना।

तुम्हारी,

वनवासिनी श्रीमती विश्वास

पत्र समाप्त हो गया। एक-एक अक्षर मैं अनेक बार पढ़ गया। कई जगह जो मात्राएँ और अक्षर कहीं-कहीं पूरा-का-पूरा शब्द कुछ धुल-सा गया है, स्याही भी हल्की-हल्की सी। उन स्थलों पर फैल रही है, धुँधली-धुँधली, उतरते-ढलते आश्विन के बादलों जैसे! जान पड़ता है कि ये रुई के से छोटे-छोटे फाहे उन आँसुओं ने बना दिए हैं, जो इस पत्र को लिखते समय श्रीमती विश्वास के कमल-नयनों से गिर पड़े हैं।

इस पत्र को लेकर जब मैं भाईसाहब के पास पहुँचा तो भाभी उनको अपना पत्र दिखा रही थीं और मुन्ना कह रहा था— 'अम्मा, मौसी

ने मुझको कोई चिट्ठी नहीं भेजी !' मैंने उसको गोद में उठा लिया और कहा—"देखो, मेरी चिट्ठी में तुम्हारे लिए लिखा तो है कि मुन्ना को प्यार कर लेना और यह भी लिखा है कि काजू और किशमिश उसके मुँह में डाल देना।"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"कहाँ लिखा है दिखाओ !"

इतने में भाभी बोलीं—"मेरे पत्र में भी तो लिखा है'''सो मैनी किसेज टु डियर मुन्ना यू योर लवली, स्वीट, लिप्स !"

जब भाभी ऐसा कह रही थीं, तब भाईसाहब मुस्करा रहे थे। इसी समय मैंने श्रीमती विश्वास का पत्र उनको पढ़ने के लिए दे दिया। थोड़ी देर में उस पत्र को पढ़ लेने के अनन्तर भइया बोले—"देखो सतीश, उस दिन मैंने श्रीमती विश्वास पर अपना कुछ अविश्वास प्रकट किया था, लेकिन आज मैं अपने उन शब्दों को वापस लेता हूँ।"

मैंने भाई साहब की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बाद दोपहर को खाना खाने के पश्चात् एक टेलीग्राम आ गया। उसमें लिखा हुआ था : "श्रीमती विश्वासेज कन्डीशन एलार्मिङ्ग। एडमिटेड इन हॉस्पिटल। कम बाई एयर। ए 'विल' टु मुन्ना !—रामू !"



: २५ :

भूकम्प जब आता है, तब गिरिशृंङ्ग टूट कर ढह जाते हैं। पाषाण शिलाएँ टूट कर चूर-चूर होजाती हैं। लोहे के स्तम्भ संघर्ष में आकर टेढ़े पड़ जाते हैं। बड़े-बड़े राजप्रासाद धराशायी हो जाते हैं, किन्तु कर्तव्य की कठोरता और दृढ़ता मानवता की रक्षा के नाम पर फिर भी अचल और अडिग बनी रहती है। मैं मसूरी जाने की तैयारी कर रहा था। होल्डाल बँध गया—एरोप्लेन में मेरी सीट 'बुक' हो चुकी। —और अभी-अभी फ़ोन से सूचना मिली है कि मुनीम जी अब इस संसार में नहीं रहे। बाज़ार बन्द हो गया है और हो रहा है। नाते-रिश्ते, परिचय और व्यवहार के बन्धन में बँधे हुए वृन्द-के-वृन्द उनके घर जा रहे हैं। मैं भी उनका अन्तिम दर्शन कर आया हूँ, लेकिन भइया कह रहे हैं —"तुम जाओ, एरोड्रोम पर समय से पहुँचो, दरवाज़े पर गाड़ी खड़ी है।" भीखू ने उस पर मेरा 'लगेज' भी रख दिया है। मुन्ना मेरी गोद में है और मैं उसे प्यार कर रहा हूँ। भाभी कह रही हैं—"पहुँचते ही वहाँ का समाचार फ़ोन से देना। यहाँ की चिन्ता मत करो। जाओ, आनन्द-पूर्वक।" और इतने में शोफ़र ने गाड़ी 'स्टार्ट' कर दी। मेरे मन में इस घटना-क्रम को लेकर एक उथल-पुथल मची है। मुनीम जी को आज ही इस जगत् से विदा लेना था?—और, श्रीमती विश्वास को इसी समय इस सीमा तक बीमार पड़ना था? मगर ख़ूब, श्रीमती विश्वास तुमने अन्ततोगत्वा अपने जिस रूप का परिचय दिया है, वह मुझे जीवन भर नहीं भूलेगा। गाड़ी जब लाटूशरोड से आगे बढ़ी, तो मूलगंज के चौराहे पर पहुँचती-पहुँचती यकायक रुक गई। उधर से मुनीम जी के शव का जलूस आ रहा था। सैकड़ों आदमियों की उस भीड़ में गाड़ी के अन्दर बैठा हुआ मैं यही सोच रहा था कि मुझको तो इस जलूस के साथ जाना चाहिए। परिचित और मित्र जो मेरी गाड़ी तक पहचानते थे, मेरे

पास आकर आश्चर्य से पूछने लगते—"अरे, छोटे भइया, आप कहाँ ?" तो उनका यह प्रश्न मेरी छाती पर गोली की तरह लग जाता। समाधान तो किया ही जाता है और मैं भी कर रहा था, किन्तु वह समाधान तो दूसरों के लिए है—मेरी पीड़ा का समाधान कहाँ है ? क्या मैं सम्पत्ति के लोभ में उधर भागा जा रहा हूं ? नहीं तो क्या मैं सौंदर्यलिप्सा के मोह से खिंचा चला जा रहा हूँ ? मैं क्यों जा रहा हूँ ? श्रीमती विश्वास के हृदय-दान और उनकी आत्मीयता की बात जब सोचता हूँ तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं बिल्कुल ठीक रास्ते पर हूँ। लेकिन मुनीम जी का स्वर्गवास हो गया है और उनके चिरंजीव जेल में हैं। इन दशाओं में क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं कि मैं यहाँ रहूँ और भइया से कहूँ कि मुनीम जी के परिवार के साथ आपको न्याय करना चाहिए। पर, फिर सोचता हूँ कि यह तो भइया पर स्पष्ट अविश्वास है—उनकी नैतिकता पर, उनके सत्य और न्याय पर। मुझे तो उनका सतत आज्ञाकारी ही बना रहना है। वे जो कुछ सोचते हैं—बिलकुल ठीक सोचते हैं।

अर्थी आगे बढ़ गई और मैंने देखा—आगे ही वे अपना कन्धा लगाए हुए हैं। लोग भइया के इस स्वरूप पर हैरान हैं। काना-फूसी करते हुए एक दूसरे से कह देते हैं, जिनका एक-आधा स्वर मेरे कान में अभी पड़ा है—'गिरीशबाबू, सचमुच विचित्र धातु के बने हैं। एक ओर तो उन्होंने ग़बन का मुकदमा चलवाकर उनके लड़के को जेल में ठूँस दिया, दूसरी ओर उनका मकान भी हड़प कर लिया और यहाँ आए हैं दिखाने मौखिक सहानुभूति ! ··· अरे साहब, बड़े आदमियों की सब बातें बड़ी ही होती हैं।' मुझे इन लोगों की बातें सुन-सुन कर ताव आ रहा है। मैं उनके मुँह पर थप्पड़ की तरह यह समाचार मार देना चाहता हूँ कि मुनीम जी की मृत्यु का समाचार पाकर रेहननामे का कागज़ उनकी स्त्री को वे तुरन्त वापस कर आए हैं। इतना ही नहीं, उस रेहननामे के पृष्ठ भाग

पर उन्होंने यह भी लिख दिया है कि ग़बन के उपलक्ष में दण्ड भोगने के कारण मैं अब इस मकान को मुनीम जी की धर्मपत्नी श्रीमती देवकी देवी को खूब सोच-समझकर, अपनी इच्छा से, वापस कर रहा हूँ। आज से अब इस मकान पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।—और इधर हालत यह है कि लोग भइया पर टीका-टिप्पणी कर रहे हैं। लेकिन सबसे बड़ा समाधान तो यह है कि संसार का स्वभाव ही कुछ इस तरह का है कि टीका-टिप्पणी वह प्रत्येक दिशा में करता है। जब बापू जीवित थे, तब जो लोग कहते थे कि वे हिन्दू-धर्म की जड़ें काट रहे हैं, विभाजन के समय बटवारे की जो रक़म पाकिस्तान को तुरन्त मिल जानी चाहिए थी, उसके भुगतान में थोड़ा-सा भी विलम्ब उनको सहन नहीं हो रहा है, जब कि वे देख रहे हैं कि वही पाकिस्तान पैशाचिक हत्या-काण्ड पर तुला हुआ है और उसी रक़म का उपयोग हमारे ऊपर आक्रमण करने की अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी व्यवस्था में किया जाएगा, वे बापू की हत्या पर आज आँसू बहाते हुए नहीं लजाते! स्पष्ट है, कि दुनिया दुरंगी है। संसार के दो मुँह हैं—एक सामने है, दूसरा पीठ पीछे! ऐसी अवस्था में कर्तव्यशील प्राणी के लिए यही उचित है कि वह अपना काम करता जाय! दुनिया क्या कहती है, दुनिया क्या कहेगी, इस पर कभी विचार न करे, कभी ध्यान न दे।

अर्थी चली गई। जलूस कभी का आगे बढ़ चुका था। मैं भी ठीक समय पर एयरोड्रोम पर पहुँच गया। अभी एयरोप्लेन नहीं आया था, इसलिए मैं निकट स्थित कैण्टीन में जा पहुँचा। इसी बीच मेरे सामान की तुलवाई कर ली गई। डॉक्टरी परीक्षा हो ही चुकी थी।

थोड़ी देर में वायुयान घहराता और चक्कर काटता हुआ नीचे आ गया। सीढ़ी लगादी गई। सामान अन्दर रख दिया गया और तब हम अपने कई सहयात्रियों के साथ अन्दर जा बैठे। थोड़ी देर में वायुयान पहले पक्के फ़र्श पर कुछ दूर चला और फिर यकायक उड़ने लगा।

जैसे पानी के नीचे से जब आदमी ऊपर आता है, तो एक शक्ति हमको नीचे से ऊपर ले आती है—रहँट में बैठकर जब हम आकाश के थोड़े से मार्ग में चक्कर काटते हैं और नीचे से ऊपर आते हैं, तब जैसे कुछ नया-नया-सा ऊपर को ओर खिचते और बढ़ते जाने का भान होता है बस, या कार पर बैठकर जैसे हम पहाड़ी चढ़ाई तय करते हैं, तब मोड़ के समय एक हल्का-हल्का-सा 'जर्क' भी कभी-कभी लग जाता है, वैसा मुझे अनुभव होने लगा। बगल में खिड़की है, उससे हवा बहुत तेजी से भीतर घुस आती है, पर उसे प्रायः बन्द ही रखना पड़ता है, किन्तु आकाशगामी यात्री को अपने ऊपर और दाँएँ-बाँएँ तथा नीचे देखने का अवसर न मिले और वह एक डब्बे में बन्द रह कर ही, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाय, तो वायुयान की यात्रा बहुत ही शुष्क और मन उबा देनेवाली हो जाय। इसलिए रोशनी, वायु तथा दृश्यावली देखते रहने का पूरा प्रबन्ध रखा गया है। सेविका जिसे 'वेट्रेस' कहते हैं, शायद छाँट कर रक्खी जाती हैं। वे पढ़ी-लिखी तो होती ही हैं, साथ ही अपनी सुन्दरता और आधुनिकतम वेशभूषा तथा शृङ्गार-प्रसाधन से सुसज्जित बहुत ही शोभन और बहुत ही आकर्षक प्रतीत होती हैं। उनके वार्तालाप का ढंग बहुत ही आत्मीयतापूर्ण होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो उनसे आत्मीयता बनाए रखने का लोभ मन में आ ही जाता है। एक सहयात्री ने तो मुझको यह भी बतलाया कि हमारे बहुतेरे अमीर साथी इनकी आत्मीयता पाने के लिए ही बार-बार एरोप्लेन से यात्रा करते हैं! किन्तु इस स्थल पर मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि श्रीमती विश्वास इनसे कहीं अधिक आकर्षक और मृदुल प्रकृति की हैं। उनका शील, सौजन्य ही नहीं, उनकी देहयष्टि की कमनीयता मेरे लिए संसार में दुर्लभ प्रतीत होती है। खैर, जो 'वेट्रेस' ने मुझसे पूछा—"नींबू लीजिएगा?" क्योंकि अब मुझे कुछ मचली-सी जान पड़ने लगी थी तो मुझे 'हाँ' कहना पड़ा। यह यात्रा

उतनी सुखद नहीं है, जितनी विचारोत्तेजक है। ऊपर उठते समय कम-से-कम मुझे उतना अच्छा नहीं लगता, जितना ऊपर से नीचे आते समय। कभी-कभी तो मैं यह भी सोचने लगता हूँ कि क्या जीवन की क्षरणात्मक परिस्थितियों के साथ शारीरिक सौख्य का भी कोई अमित और अमिट सम्बन्ध है? यद्यपि मेरी मान्यता इससे बिलकुल भिन्न है। मैं तो प्रत्येक परिस्थिति से कुछ-न-कुछ सीख ही रहा हूँ! यहाँ तक कि मेरे कुतूहल और साहसी मन में तो यह भी आ रहा है कि एक बार उतनी ऊँचाई पर से यात्रा की जाय, जितनी ऊँचाई से और अधिक आगे बढ़ना असम्भव हो जाय? लेकिन अब भी मैं वह बात नहीं कह पाया, जो बात मैं कहना चाहता हूँ। जैसे किसी पहाड़ पर चढ़ते समय मैं यह सोचता हूँ कि इससे भी ऊँची कोई चोटी हो, तो मुझे उस पर चढ़ना चाहिए, वैसे ही इस आकाश की यात्रा में भी बार-बार मेरे मन में आ रहा है कि जब ऊँचाई का अन्त नहीं है, तब ऊँचाई पर बराबर चढ़ते जाने की मेरी मनोकामना का अन्त कैसे सम्भव हो सकता है?

इन्हीं विचारों के साथ उस दिन थोड़े ही समय में मैं मसूरी जा पहुँचा।



: २६ :

घूम-फिर कर मैं पुनः उसी पार्वत्य प्रान्त में आ गया, जहाँ निर्झर कलकल गान करता है, सीरी सीरी पवन जब डोलती है, तब देवदार के वृक्ष अपने कोमल पल्लवों को हिला-हिला कर एक ऐसा मर्मर संगीत छेड़ देते हैं कि मानव प्राणी उस अद्भुत मोहक वातावरण में पड़कर समझने लगता है कि मैं कृतार्थ हो गया। ऊँचे-ऊँचे शृंग एक ओर चुपचाप खड़े हैं और अपने मूक आह्वान से हमें स्तब्ध कर देते हैं। हरीभरी सघन घाटियाँ नीचे उतरती हुई अपनी गहराइयों में हमें डुबो डुबो देती हैं। कहीं चारों ओर शृंग हैं और बीच में मैं हूँ। कहीं ऊँचाई असीम है, तो कहीं गहराई भी असीम है। दोनों एक दूसरे को जब चुनौती देती हैं, तब मैं ठगा-सा रह जाता हूँ। प्रश्न मेरे अन्तराल से फूट पड़ते हैं—"सतीश, सच-सच बतलाओ, तुम ऊँचाई पसन्द करते हो या गहराई ?" यदि मैं कह देता हूँ गहराई तो जान पड़ता है, ऊँचाई मेरे उत्तर की जल्दबाजी पर हँस देती है और अगर मैं कहता हूँ कि मुझे ऊँचाई पसन्द है, तो गहराई मेरे कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से कह देती है कि तुम पूरे ऊँट हो ! अब मैं अपने मन की बात कहूँ ?—यह सब कुछ जो विचारों के खेलों की जादूगरी है, यह दृष्टि-कोण का एक झुकाव है। विचार करने की पद्धति की एक लहर ! नहीं तो उस ऊँचाई का कोई मूल्य नहीं है, जिसमें गहराई न हो और गहराई स्वयं एक ऊँचाई है। मैं वायुयान पर जाता हुआ यही सब सोचता रहा हूँ और इस समय जब मैं श्रीमती विश्वास के बँगले पर चढ़ता जा रहा हूँ तब भी मेरा मन इस प्रकार के विचार-झकोरों से ओत-प्रोत हो उठता है। आगे बढ़ कर जब मैं बराण्डे में जा पहुँचा, तब बाईं ओर के कमरे में कुछ बच्चों की-सी ध्वनियाँ गूँजती हुई जान पड़ीं। तुरन्त मैंने समझ लिया कि श्रीमती विश्वास ने जिस पाठशाला का उल्लेख अपने पत्र में किया था, वह यही है। एक सेविका उसके द्वार पर बैठी

थी, जिसे मैंने पहले देखा नहीं था। संकेत से उसे अपने निकट बुला कर मैंने प्रश्न किया—"मेमसाहब कहाँ हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"मेमसाहब ? मेमसाहब तो यहाँ कोई नहीं हैं। एक देवी जी जरूर हैं, जिनका यह बँगला है।"

उसका यह उत्तर सुनकर मुझको प्रसन्नता अवश्य हुई। कुली मेरा सामान लिए मेरे पास ही खड़ा था। सेविका ने सहारा दे कर उसे नीचे उतरवा लिया।—और तभी मैंने कह दिया—"उन देवी जी से कहो सतीश बाबू आए हैं।"

सेविका पुनः उसी कमरे में लौट गई और दो मिनट के अन्दर मेरे कमरे का द्वार भीतर से खुल गया। रामू ने हाथ जोड़ कर मुझको नमस्कार किया और कहा—"आइए सरकार! देवी जी अभी आ रही हैं।"

अन्दर जाकर मैं एक कुर्सी पर बैठ गया और तभी रामू ने मेरा सामान रख दिया। मैं जब रामू को पैसे देने लगा और मैंने कहा—"कुली को दे दो।" तब रामू बाहर चला गया और तुरन्त ही फिर भीतर आकर बोला—"सरकार कुली को पैसे मिल गए और वह चला गया।" वह अभी अपनी बात पूरी कर ही रहा था कि श्रीमती विश्वास मुस्कराती हुई भीतर आ गईं।

सदा से मेरा यही विश्वास रहा है कि खुला हुआ और अलंकृत सौंदर्य अपनी चारुता में, अपने प्रभाव में शैली और उसके निखार में चाहे जितने उच्चकोटि का हो, किन्तु कुछ-कुछ छिपे हुए, दबे और मुँदे हुए, सात्विक रुचियों से घिरे हुए निर्मल, स्वस्थ सौंदर्य की अपेक्षा वह सदा हीन कोटि का होता है। श्रीमती विश्वास की इस भारतीय रूपरेखा में अमित सौंदर्य है।—और मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उनका वास्तविक सौंदर्य तो आज तक मुझसे छिपा ही बना रहा। श्वेत

बकलेदर की बहुत हल्की जूतियाँ उनके पैरों में हैं, श्वेत खादी की साड़ी उनकी देहयष्टि पर है, और एक मुलायम श्वेत शाल वे ऊपर से ओढ़े हुए हैं। सदा लाल रहनेवाले अधर आज गुलाबी हो गए हैं और कह रहे हैं—"आपने देखा यही मेरा मौलिक रूप है ?" केश उनके अवश्य सँवारे हुए थे, लेकिन आज वे दो भागों की चोटियों में बटे हुए न थे, वरन् अकेले गुँथे हुए वेणी के रूप में गोलाकार होकर मन-हरण छन्द बन गए थे। हाँ, एक फ्रेमलेस चश्मा उन्होंने अपनी नाक पर अवश्य चढ़ा रक्खा था। मैं जब उनको इकटक देखता रह गया, तब वे बोलीं—"मेरा तार तो आपको मिला ही होगा ?"

मैंने उत्तर दिया—"जो हाँ, अब मालूम हुआ कि बुला लेने का बहाना अपने आपमें पूर्ण समर्थ था।"

श्रीमती विश्वास इस बार मुस्कराईं नहीं, वरन् गम्भीरतापूर्वक बोलीं—"बहाना नहीं, यत्न और साधन देखन में आपको आश्चर्य में डाल रहे हैं और एक उपालम्भ आपको दे रहे हैं किन्तु यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि जिन श्रीमती विश्वास को आप यहाँ छोड़ गए थे, वे वास्तव में 'डेथ बेड' पर थीं और अब तो मर भी गई हैं। आपको, नहीं भाई, तुमको क्या उनके पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है ?"

अब मुझे बरबस हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"ग्रेट ! तुम वार्तालाप में सदा से ऐसी ही निपुण रही हो और पुनर्जीवन प्राप्त करने पर भी कम-से-कम अपने इस गुण में तो अब भी मेरी वही पुरानी श्रीमती विश्वास हो !"

अब श्रीमती विश्वास कुछ मुस्कराईं—"सच सच बोलो सतीश, तुमको मेरा यह परिवर्तन कैसा लगता है ?"

मैं कभी-कभी कोई उत्तर बिना सोचे दे देने का अभ्यासी रहा हूँ। आज इस अवसर पर भी मैंने बिना कुछ सोचे कह दिया—"कैसा लगता है, यह मत पूछो ! मुझे तो वह लगता भर है। स्पर्श कर रहा

है। छू रहा है।"

इतने में रामू ने आकर कहा—"पानी गरम हो गया है। सरकार अगर नहा लें, तो सफ़र की थकान कुछ कम हो जायगी।"

तब मैंने कह दिया—"हाँ, गरम पानी मुझे जरूर चाहिए, लेकिन नहाने के लिए नहीं, पीने के लिए।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"जाओ रामू, न तो इनको हमारे नए नियमों का ज्ञान है, न उनका पालन करने के लिए मैं इनको विवश ही कर सकती हूँ। तुम चाय बना ले लाओ, लेकिन जल्दी!"

रामू चला गया। अब मुझे ध्यान आ गया कि यह तो अभी बच्चों का कोई क्लास ले रही थीं। इसलिए मैंने कह दिया—"तुमतो अभी बच्चों को पढ़ा रही थीं न? बीच ही में उठकर चली आई हो। और इधर, धीरे-धीरे मेरा यह विश्वास बहुत पक्का हो गया है कि जीवन में कोई काम अधूरा नहीं छोड़ना चाहिए।"

श्रीमती विश्वास ने कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया—"अगर प्रारम्भ किए हुए काम की अपेक्षा नवीन आयोजन का कार्य भविष्य के नवनिर्माण में सहायक न हो..."

मैंने अनुभव किया कि सचमुच श्रीमती विश्वास के विचारों में बड़ा परिवर्तन हो गया है।

अभी यह बातें चल ही रही थीं कि श्रीमती विश्वास बोलीं—"तुम चले आए तो मुझे बड़ा सुख मिला, लेकिन तुम अगर मुन्ना को अपने साथ ले आए होते, तो आज अपनी इस नई पाठशाला में उसे भरती करके मैं अपने को बहुत सौभाग्यशालिनी समझती।...गिरीश बाबू ने कल ही मुझे फ़ोन से मुनीमजी के देहावसान और तुम्हारे इधर चले आने की बात बता दी थी। मैं बच्चों को पढ़ा जरूर रही थी लेकिन कोई मेरे मन के भीतर घुसकर मुझसे बार-बार यही कह रहा था कि कोई इधर उड़ा चला आ रहा है। वह अब मसूरी के एयरोड्रोम पर

होगा और अब रास्ते में और अब तो वह मेरे बँगले की सीढ़ियाँ पार कर रहा होगा। इतने में मैं क्या सुनती हूँ कि कोई सचमुच आ ही गया है और देख रही हूँ, अब देख रही हूँ कि तुम मेरे अन्तःपुर में हो और मेरे समक्ष हो। लेकिन तुम तो बहुत थके हुए होगे! पलँग पर लेट जाओ, लेट जाओ···लो मैं तुम्हारे निकट ही यहाँ, इस तरह, बैठी जाती हूँ।"

पलँग के ऊपर आज सदा की भाँति रंगीन चादर न थी। श्वेत खादी की चादर थी। मुझे उनका अनुरोध मानने में सुख मिला और मैं जब तकिए पर सिर रखकर लेट गया, तो उन्होंने मेरे कान के पास मुँह ले जाकर कह दिया—"तुमको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब मुझे नींद आने लगी है—दिन भर इतनी व्यस्त रहती हूँ कि नींद बिना बुलाए आ जाती है। वह नींद जिसको कि मैं तरसा करती थी, वह भी जब कि तुमको पाने के लिए मुझे सदा बुलाना ही पड़ता है, तुम इतने निर्मोही और निष्ठुर हो कि बिना बुलाए कभी नहीं आते हो!"

मैं आज श्रीमती विश्वास की वाणी में मूर्तिमान कविता का अनुभव कर रहा था और मैं यह कहने जा ही रहा था "अगर तुम मेरी साधना बन जाओगी, तो मैं बिना बुलाए ही आ जाया करूँगा।"

इतने में रामू ने चाय की ट्रे लाकर मेरे पास रक्खी हुई 'टेबिल' पर रख दी। श्रीमती विश्वास बोलीं—"देख रामू, मैंने तुझसे कहा न था, याद है तुझे कि सैण्डविचेज ही तू बनाया कर और आज तू यह हलुआ सोहन की टिकियाँ ले आया है। तू जानता नहीं, कि इन बाबू साहब का मन ही नहीं, तन भी कुमार है। आयु में सुकुमार। यह गरिष्ट पदार्थ अब मैं इनको खिलाना नहीं चाहती। इसलिए यह डिश तो तू उठा ले जा और झट से टोमैटो के सैण्डविचेज बना ला।"··'और देख, वो मुनैको के साल्टी बिस्किट ले आ। मैं नहीं चाहती कि ज्यादा

मिठास से मैं इनका मुँह बाँध दूँ।"

श्रीमती विश्वास की यह बातें मेरे ऊपर 'इन्जेक्शन्स' का काम कर रही थीं।

रामू चला गया। अब मैंने श्रीमती विश्वास से पूछा—"क्या तुमने सचमुच यह तय कर लिया है कि विमल विश्वास पर मान-हानि और मार डालने का प्रयत्न ये दोनों अभियोग जो तुम चला रही थीं, उनको उठा लोगी।"

श्रीमती विश्वास ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं अब यही सोचती हूँ कि देश के काम में लग जानेवाले व्यक्तियों को झंझट के किसी काम में नहीं पड़ना चाहिए।"

श्रीमती विश्वास की आज की इन सारी बातों का प्रभाव मेरे मन पर कुछ इतना व्यापक पड़ रहा था कि किसी भी क्षण मैं उनसे यह स्पष्ट कह देनेवाला था कि पूरे एक वर्ष तक मैं तुम्हारी परीक्षा लेता रहूँगा और बताऊँगा नहीं कि उसका उद्देश्य क्या है। किन्तु मैं अपने इस विचार को रोके हुए था, पर अब मुझे कहना पड़ा, सीधे तौर पर नहीं, कुछ घुमा-फिरा कर मैंने पूछा—"मुन्ना के नाम जो कुछ वह 'विल' करना चाहती हो, उससे तुम्हारा आन्तरिक अभिप्राय क्या है?"

मैं समझ नहीं सका कि मेरे इस प्रश्न को उन्होंने किस मन्तव्य का मूलाधार समझा है। किन्तु मैंने देखा कि कुछ ही क्षणों में उनकी आँखें डबडबा आई हैं और वे बोलीं—"क्या यह बात भी अब पूछने के लिए रह गई है सतीशबाबू? सच बतलाओ क्या तुम मेरे कोई नहीं हो? और मुन्ना मेरा बच्चा नहीं बन सकता? बोलो—जल्दी बोलो?"

और बस, इतना कहते-कहते वे अपनी आँखों से मोती गिराने लगीं, मोती अनबेधे! किन्तु जिन्होंने आज मेरे मर्म को बेध डाला है।



: २७ :

आज फिर मेरे मन में तूफ़ान उठा है। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि श्रीमती विश्वास मेरे मन को मोह रही हैं। मैं उनकी ओर खिंचा चला जा रहा हूँ। जितना ही मैं उनसे अपने आपको बचाता हूँ, उतना ही वे मुझे अपनी ओर खींच रही हैं। उनकी निकटता मुझे पकड़ रही है और मैं उनके अन्दर एक मोह उत्पन्न कर रहा हूँ। जब मैं कानपुर चला गया था, तब मैंने उनके सम्बन्ध में जो कुछ सोचा था, वह सर्वथा निराधार सिद्ध हो चुका है। मैं अब उनका मित्र ही नहीं प्राणों के साथ स्पन्दन करनेवाला जीवन-साथी बन गया हूँ। यह सब कैसे हो गया है, मुझे आज एक स्वप्न-सा जान पड़ता है—हो गया है, इतना ही जान पाया हूँ। आज मुझे आए दूसरा दिन है। मैंने पूछा—"आज तुम्हारी पाठशाला नहीं लगी ?"

उन्होंने नृत्य की-सी मुद्रा में उत्तर दिया—"आज सोमवार न ? सोमवार चन्द्रदिवस होता है। जब अँधेरी रजनी में चन्द्र झाँकने लगता है, तो रजनी के आनन्द का पारावार नहीं रहता। उसे उल्लास और तरंग मिलती है एक साथ। वही मुझको मिल गई है, इसलिए आज हमारी पाठशाला में छुट्टी हो गई है। यों यह छुट्टी एक नियम है, किन्तु यदि यह नियम न भी होती, तो भी मैं आज छुट्टी मनाती। तुम्हारे साथ बैठ कर मैं अपने जीवन का सूनापन भूल जाती हूँ। मैं अपना सब कुछ भूल जाती हूँ। क्यों ? तुम क्या सोच रहे हो ?"

श्रीमती विश्वास का इतना कहना था कि मैं सोते से जग पड़ा और मेरे मुँह से निकल गया—"एक बात पूँछूँ तो आप बुरा तो न मानेंगी ?"

उन्होंने बिना कुछ सोचे उत्तर दे दिया—"मैं अब तुम्हारी किसी बात का बुरा नहीं मानूँगी। तुम पूछो न ? संकोच क्यों करते हो ? मैंने तो तुमसे कभी संकोच नहीं किया !"

मैंने तुरन्त कह दिया—"यह तुम्हारे नाम के साथ जो विश्वास शब्द लगा हुआ है, इसका अर्थ यह होता है कि तुम मूर्तिमान विश्वास हो, जबकि तुम केवल विश्वास नहीं हो। विश्वास नाम का जो पुरुष था, उनकी स्त्री हो और श्रीमती हो। लेकिन मूलरूप में तो तुम कहीं से भी विश्वास नहीं हो, यहाँ तक कि अब श्रीमती विश्वास भी नहीं हो। तुम साधना हो, तपस्या हो, भूखी रहती हो, और इसलिए दुबली भी सदा बनी रहती हो। अच्छा, तुम्हारा असली नाम क्या है ?—असली नाम से मेरा मतलब यह है कि जब तुम श्रीमती विश्वास नहीं थीं, तो तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा क्या नाम रक्खा था ?"

वे तुरन्त उठकर चली गईं और एक 'फ़ोटो-ग्रुप' निकाल कर ले आईं। इसमें थोड़ा समय भी लग गया। वे अपनी वेशभूषा बदल कर आईं। वही वेशभूषा जिसमें उन्होंने फ़ोटो खिचवाया था। मैंने फ़ोटो-ग्रुप में उनको देख कर झट पहचान लिया। उस फ़ोटो-ग्रुप के नीचे कुछ नाम थे। उन्हीं युवतियों के नाम जिनका वह फ़ोटो-ग्रुप था। उसमें उनका फ़ोटो तीसरे नम्बर पर पड़ता था और तीसरे नम्बर पर जो नाम लिखा हुआ था, वह था—'शैलकुमारी !' मेरे मुँह से निकल गया "ओह, आज मालूम हुआ कि तुम मूलरूप में पर्वतकन्या । और नाम भी तुम्हारा शैलकुमारी है।'''अच्छा शैल सच सच बतलाओ, तुम मुझसे क्या चाहती हो ?"

टेबिल पर एक गुलदस्ता रक्खा था और धूपबत्ती सुलग रही थी। उसका सुरभित धुँआँ पवन के साथ उड़ रहा था—सफ़ेद सफ़ेद।

शैल ने धुँएँ की उड़ान की ओर इकटक देखते हुए उत्तर दिया—"इस धूपबत्ती में तुम देख रहे हो कि धुएँ की टेढ़ी-मेढ़ी, इठलाती बल खाती रेखाओं और गतियों में जो स्वच्छन्द उड़ान है वह कितनी प्यारी मालूम होती है ! मैं, बस, इस धूपबत्ती का यही धुँआँ और उसकी यही उड़ान बन जाना चाहती हूँ। लेकिन मुझे आश्चर्य हो रहा

है कि जो बात कहने की नहीं है, वही तुम मुझसे पूछ रहे हो ! तुम कैसे सतीश हो ?"

अब मुझे उसकी उस परिवर्तित वेशभूषा को देखकर कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह प्रकारान्तर से यह कहने जा रही हो कि तुम अभी ठीक कह रहे थे। मैं अब भी वही शैलकुमारी हूँ, श्रीमती विश्वास अब नहीं हूँ।

मैं बहुत विचार में पड़ गया। तब शैल बोली—"लो, तुम फिर खो गए। कहीं दूर चले गये। कुछ और सोचने लगे।"

मैंने कहा—"अच्छा शैल, तुम विवाह पर विश्वास करती हो ?"

उसने उत्तर दिया—"लो, तुम फिर पहेली बुझाने लगे ! यह बात भी क्या पूछने की है ? जाओ मैं ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं देती।" और इतना कहकर वह बोली—"अच्छा, अब मैं घण्टे-आध-घण्टे की छुट्टी चाहती हूँ।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं अब पूजा करने जा रही हूँ।"

"पूजा ? क्या तुम किसी की पूजा भी करती हो ?"

"पूजा तो मैं मन से करती हूँ, प्राण से करती हूँ, करती ही रहती हूँ।"

"क्यों ? इस पूजा का उद्देश्य क्या है ?"

"उद्देश्य ? पूजा का उद्देश्य ? पूजा का भी कोई उद्देश्य होता है ? पूजा का उद्देश्य स्वयं पूजा है। अथवा यों समझिए पूजा स्वयं उद्देश्य है। करनी है, सो करती हूँ।"

मेरी दृष्टि अब सामने के नील गगन पर जा पहुँची जहाँ रुई के से पर्वत छाए हुए थे, वे सामूहिकरूप से एक जगह स्थिर थे किन्तु कहीं-कहीं उड़ते हुए से जान पड़ते थे। वहीं एक पक्षी उड़ रहा था। उड़ता

उड़ता वह बड़ी दूर जा पहुँचा था और अब छोटा से छोटा और भी छोटा, बिलकुल चींटी के आकार का बन गया था। तभी मेरे मन में आया–जो वस्तुएँ हमसे बहुत दूर हो जाती हैं, वे देखने में चाहे जितनी छोटी जान पड़ती हों, लेकिन होती उतनी छोटी नहीं है। दूरी मात्र उनको छोटा देखने को विवश कर देती है। और तब मैंने कह दिया—"तो तुम्हारा मतलब शायद यह है कि जिसकी तुम पूजा करती हो, वह तुमसे दूर है—बहुत दूर ! इतनी दूर कि तुम्हारी पूजा उस तक पहुँच नहीं पाती ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है, पूजा उन तक पहुँच जाती है। नित्य पहुँचती है; लेकिन जिनकी मैं पूजा करती हूँ, वे देवता हैं न ?—इस-लिए, उत्तर में वे कुछ बोलते नहीं है। क्योंकि वे भी पत्थर के ही देव हैं। सदा मूक रहते हैं।"

"इसलिए मूक रहते हैं कि तुम्हारी पूजा से वह अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते ?"

"नहीं ऐसा नहीं है। सम्बन्ध तो जुड़ा-जुड़ाया है। और वे इस बात को जानते भी हैं, किन्तु जैसा कि मैंने अभी कहा न कि वे पत्थर के हैं, बोलते नहीं हैं और अगर बोलते भी हैं तो छिप कर बोलते हैं, भीतर से बोलते हैं, सामने नहीं बोलते। और सामने भी बोलते हैं, तो स्पष्ट कुछ स्वीकार नहीं करते, यहाँ तक कि प्रायः 'हाँ' के बदले 'ना' ही कहते हैं।"

"आय सी, तो तुमको इस बात पर पूरा विश्वास है कि उनकी 'ना' का अर्थ 'ना' ही नहीं होता, 'हाँ' भी होता है।"

"पूरा विश्वास है। और वह इतना दृढ़ है, जितना पत्थर होता है। जैसे पूजा का देव पत्थर है, वैसे ही पूजा की दृढ़ता भी अपने आपमें पत्थर ही है। इस अर्थ में दोनों एक हैं—स्वभाव और गुण में अन्तर

केवल इतना है कि वे मेरे आँसुओं को तो स्वीकार करते हैं, हास को नहीं। मेरा रुदन उनको प्रभावित करता है, मोह नहीं।"

"अच्छा शैल, सच-सच बतलाओ, तुमने यह कैसे समझ लिया कि तुम्हारे अन्दर जो मोह है वह उनको प्रभावित नहीं करता! यह बात कहाँ तक ठीक है?"

"मैं तो यही सोचती हूँ कि यदि प्रभावित करता होता, तो उस दिन जब मुझे नींद नहीं आ रही थी, तब उन्होंने एक बात कही थी और वह बात मुझको याद है—अच्छी तरह। उन्होंने कहा था— 'अगर नींद तुमको नहीं आती, तो तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है।' मुझे भी कुछ ऐसा जान पड़ा था कि उन्होंने ठीक ही कहा था। नींद तो उसी को नहीं आती, जिसका मोह स्वस्थ नहीं होता। लेकिन अब तो मुझको नींद आती है। इसलिए मेरा मोह भी स्वस्थ है। और स्वस्थ मोह का दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। मुझे विश्वास है कि मेरी पूजा व्यर्थ नहीं गई है, व्यर्थ नहीं जायगी!" और इतना कह कर वह जाने लगी।

मैंने पूछा—"क्यों? अब कहाँ···?"

उसने उत्तर दिया—"जरा भोग की व्यवस्था कर लूँ।"

मैंने पछा—"क्यों?"

उसने कहा—"पूजा जब पूरी हो जाती है, तब देवता के सामने भोग रखना ही पड़ता है।"

मेरे मुँह से पुनः निकल गया—"आय सी···" इसके बाद मैं आगे बढ़ गया और मैंने कह दिया—"एक बात तुमको नहीं मालूम है शैल, आज देवता के भोग का दिन नहीं है। आज सोमवार है न? और फिर एकादशी।···तो आज देवता को भी उपवास ही करना पड़ेगा। इसलिए तुम चिन्ता मत करो।"

अब शैल बोली—"देखो, सतीश, तुम मुझको तंग मत करो। मेरे ऐसे कोई देवता नहीं हैं, जिनको एकादशी व्रत लेना पड़ता हो। भोग

तो उनको नित्य लेना ही पड़ता है। आज भी वह बिना भोग लगाए नहीं बचेंगे।" अब मुझे हँसी आ गई और मेरे मुँह से निकल गया—"शैल ज़रा सोच कर देखो, तुम्हारे इस कथन का अर्थ क्या होता है?"

वह मेरी इस बात पर बहुत संकुचित हो उठी और कोई उत्तर न देकर कमरे से बाहर चली गई।

थोड़ी देर बाद मैं जो शैल के कमरे के अन्दर प्रवेश करने लगा तो पैर सहसा ठिठुक गए और मैंने देखा कि पुजारिन सचमुच पूजा कर रही है; मिस्टर विश्वास का आयलपेण्टिग उसके सामने है और उसकी दोनों आँखों से अश्रुधारा बह रही है।



: २८ :

आज सन्ध्या समय मैं रुचिता के यहाँ चला गया था। संयोग की बात कि दरवाजा खुला हुआ था और किरण पलँग पर लेटी हुई सो रही थी। मैंने सेवक से पूछा—"कहाँ हैं तुम्हारे साहब ?"

उसने उत्तर दिया—"वह तो कहीं घूमने गए हैं।"

तब मैंने पूछा—"और भाभी ?"

वह बोल उठा—"गुसलखाने में हैं।"

मैंने कह दिया—"ज्योंही बाहर निकलें, उनको सूचित कर देना कि सतीशबाबू आए हैं। मुझको तो पहचानते हो न ?"

"अरे बाबूसाहब···" वह बोला—"जिस दिन आपको न पहचानूँगा, अपना सर फोड़ डालूँगा !"

मेरे मुँह से निकल गया—"लो, यह रुपया इनाम का, तुमने बहुत बढ़िया जवाब दिया है। मेरी तबीयत खुश हो गई।"

सेवक ने लगातार मुझे तीन बार सलाम किया और मैं सोचने लगा अब मेरे इस रुपए का जिक्र, ये अपने समुदाय में, पचासों बार करेगा।

सेवक चला गया ! मैं उस कमरे में टहलने लगा। इतने में 'चित्रा स्टूडियो' का बना हुआ रुचिता का एक एन्लार्जमेण्ट मेरी दृष्टि में पड़ गया—अंधेरा बहुत घना है। उसके भीतर से उज्ज्वल आलोक, घनत्व को धीरे-धीरे मन्द करता हुआ, फूट रहा है। और उसके अन्दर से एक मुख झाँक उठता है, उस पर मुस्कराहट नहीं है; उस पर किसी प्रकार की वेदना की छाप भी नहीं है। एकदम शान्त, प्रकृतस्थ मुद्रा है जैसे कोई प्रस्तर-मूर्ति हो। तुरन्त मेरे मन में आया—अच्छा, तो भाभी कभी गम्भीर भी हो जाती हैं ! लेकिन मैंने तो उन्हें कभी गम्भीर नहीं देखा। सदा ही वे अधखिले फूल की भाँति अर्ध-परिपक्व आम-सी, गदराई हुई, सन्तरे के वर्ण की, कभी जोगिया आम-सी दिखलाई पड़ती

हैं। हँसती हैं, तो उनके कपोल 'क्रिमजन रेड' हो जाते हैं। व्यंग्य करती हैं, तो मटकती हैं दोनामरुआ-सी; प्यार करती हैं, तो लिली बन जाती हैं। बात करती हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि पवन के झकोरों से कमलिनी हिल रही है, डोल रही है।

इतने में साड़ी के आँचल को बाँएँ हाथ में थामे हुए भाभी आ पहुँची और बोलीं—"आए हुए कितनी देर हुई ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"अट्ठाइस वर्ष हो गए।"

अब वे हँस पड़ीं। बोलीं—"जाइए। आप बहुत उड़ने लगे हैं।"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ, इस बार तो मैं उड़ कर ही आया हूँ।"

वे बोलीं—"आज सरदी बहुत है या कुछ ऐसा है कि मुझ ही को लग रही है ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ, मौसम का रुख तो कुछ ऐसा ही है। हालाँकि सरदी का सम्बन्ध उमर के तकाजे पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। आपका क्या ख़्याल है ?"

वे बोलीं—"आओ, इधर अँगीठी के पास बैठें।" और फिर झट बोल उठीं—"धनी चलो···"

सेवक आ गया—"कुर्सी लाओ।"

दो कुर्सियाँ आ गईं। धनी जब जाने लगा तो वे बोलीं—"ठहरो" और फिर मेरी ओर देख कर पूछने लगीं—"तुम चाय पियोगे कि क़ाफी ?"

मैंने कह दिया—"न चाय, न क़ाफी, न मेवा, न फल, न मिठाई, न खटाई, कुछ भी नहीं।"

भाभी मुस्कराईं। बोलीं—"यह सब कुछ नहीं। तुम जो चीज छोड़ गए हो, आज मैं तुमको वही पिलाऊँगी।"

मैंने पूछा—"क्या ?"

वे बोलीं—"दूध !"

मैंने कहा—"माफ़ करो मुझको। अब मैं किरण का भैया बनने से रहा।"

वे मेरी ही तरह ढीठ हो पड़ीं और बोल उठीं—"तुम तो हो गए हो शैतान, जो मन में आता है, सो बक डालते हो ! अरे मैं तुमको बादाम का दूध पिला रही हूँ।"

बात कुछ मुझको जँच गई और स्वीकृति के भाव से मैंने पूछा—"उसमें और कुछ तो नहीं होगा ?"

वे बोलीं—"और कुछ क्यों नहीं होगा, उन्होंने आगे कहा—"उसमें बादाम का घी होगा ?" उसमें मिश्री की मिठास होगी, उसमें अमृत का स्वाद होगा और···और···मैं तुमको क्या बताऊँ—उसमें शैलकुमारी का प्यार होगा !—बोलो, इसके सिवा और तुमको कुछ चाहिए ? जाओ, जाओ जी धनी, दो गिलास बादाम का दूध बना कर ले आओ···देर मत करो, जाओ····"

धनी जो अब तक सर नीचा किए हुए इन बातों को चुपचाप सुन रहा था—लेकिन चिक के पास खड़ा हुआ, यानी काफ़ी दूर—बोल उठा—"जी सरकार, अभी बनाए लाता हूँ म···ग···र··· मिश्री···तो···?"

इतने में भाभी बोलीं—"अरे ग्लूकोज़ तो होगा, वही डाल के ले आ।"

धनी चला गया। भाभी लाल फ़ीतेवाली मख़मली चप्पल से दोनों पैर निकाल कर अँगीठी की ओर बढ़ाती हुई, उन्हें सेंकती-सी बोल उठीं—"तुम अपनी शैल से विवाह क्यों नहीं कर लेते ? अपने को धोखा क्यों देते हो ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"यह तुम क्या कह रही हो भाभी ?"

वे बोलीं—"मुझसे बनो मत, मैं सब जानती हूँ !"

"क्या इधर... ?"

"हाँ, इधर मैं कई बार उनसे मिल चुकी हूँ।" उन्होंने स्पष्ट ता नहीं, पर छिपे तौर से यह स्वीकार कर लिया है कि अगर तुम्हारी ओर से प्रस्ताव होगा, तो वे इन्कार नहीं करेंगी।"

अँगीठी की आग से लाल-लाल लपटें निकल रही थीं। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता था कि यह लपटें शैल के जीवन से फूट कर निकल रही हैं। अगर शान्त न की गईं, किसी उपयोग में न आईं, तो वे केवल उसी को ही भस्म करके तृप्त न होंगी। उनकी आँच उसके मर जाने के बाद भी मेरे तन और मन को झुलसाती रहेगी—जलाती रहेगी।

भाभी बोलीं—"तुम क्या सोचते हो?"

मैंने अपना मनोभाव छिपा कर उन से पूछा—"रुचिनाथ बाबू कहाँ गए?"

उन्होंने उत्तर दिया—"नाच-घर।"

मैंने पूछा—"और आप क्यों नहीं गईं?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मैं चली जाती, तो तुमसे कैसे भेंट होती?"

मैंने पूछा—"क्या मेरे आने की बात तुम्हें मालूम हो गई थी?"

उन्होंने कहा—"कल ही, शैल ने मुझे फ़ोन से बता दिया था।"

मैंने पूछा—"तो यह कहो, इधर शैल से तुम्हारी बड़ी मित्रता हो गई है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"जहाँ जहाँ तुम्हारी आँख पड़ जाती है, वहाँ वहाँ मेरी नजर भी घूम ही जाती है।"

मैंने पूछा—"तो तुम मुझ पर नजर रखती हो?"

उन्होंने उत्तर दिया—कुछ मुस्कराते हुए—"मैं नजर रखती नहीं हूँ, नजर झाड़ती हूँ। तुम यहाँ अस्वस्थ होकर आए थे न? तुमको किसी की नजर लग गई थी। मैंने उसे झाड़ दिया और तुम तोते की तरह से चहकने लगे।"

मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी आज मैं तुम्हारे सामने मात खा गया।"

भाभी बोलीं—"तुम हमारे सामने हमेशा मात खाते रहे हो, आज कोई नई बात कह रहे हो ?"

मैंने उनके पैर छू ते हुए कहा—"बस भाभी बहुत हो चुका, अब मुझे क्षमा कर दो।"

भाभी गम्भीर हो गईं। बोलीं—"अच्छा, यह सब तो रही मजाक, अब यह बताओ कि मैं तुम्हारा माध्यम बन कर सौदा पटा दूँ ?"

मैंने कह दिया—"एक बात तुमको नहीं मालूम शायद भाभी ! इस समस्या का समाधान इतना आसान नहीं है, इतना सरल नहीं है। असल बात यह है कि इसके लिए मेरी ओर से कोई प्रयत्न सम्भव नहीं है। और बिना प्रयत्न किए भइया इस सम्बन्ध को कभी स्वीकार नहीं करेंगे।"

भाभी बोलीं—"यू मीन गिरीशबाबू ?"

मैंने कह दिया—"हाँ !"

अब उन्होंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है। मैं देखूँगी।"

इतने म बज गए नौ और रुचिनाथबाबू खरामा-खरामा आ पहुँचे और मुझे बैठा देखकर दरवाजे से ही चिल्ला उठे—"हल्लो सतीशबाबू, हाउ डू यू डू ?"

मैंने उत्तर में कह दिया—"आपके आशीर्वाद से बहुत स्वस्थ और प्रसन्न हूँ।"

उन्होंने कहा—"आज प्रसन्नकान्ति घोष मिले थे, नाच-घर में ! उन्होंने जो समाचार दिया है, उसको सुनकर तुमको खुशी होगी।"

मैंने पूछा—"क्या ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"सात वर्ष सपरिश्रम कारागार-प्रवास श्रीमान् एक हजार आठ विमल विश्वास को।"

यह समाचार सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं सोचने लगा—शैल वास्तव में बहुत भली और भोली नारी है। उसको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मार डालने के प्रयत्न वाला यह अभियोग अब उठाया नहीं जा सकता! अब तो यह पुलिस-केस बन गया है। जान पड़ता है कानून के इस पहलू की ओर उसका ध्यान ही नहीं आकृष्ट हुआ। मगर अभी तो विमल विश्वास इसके विरोध में अपील भी करेंगे ही। इसलिए खुशी मनाना भी क्या मानी रखता है! पर इस सम्बन्ध में एक बात अवश्य आश्चर्यजनक है कि घोषबाबू ने 'जजमेण्ट' तब लिखा, जब प्रफुल्लबाबू स्विटजरलैंड चले गए। तो घोषबाबू से उनकी बातचीत भी अवश्य हो गई होगी।

क्षण भर में मैं यह सब सोच गया और उसी समय मैंने फ़ोन उठाकर शैल को इसका समाचार दे दिया। शैल ने उत्तर में कहा—"समाचार सुनकर मुझे दुःख ही हुआ। विमल विश्वास ने मेरे साथ चाहे जो कुछ किया हो, लेकिन कुछ भी हो, उसके प्रति मेरी मानवी सहानुभूति तो है ही। वह अगर जेल चला गया, तो मेरा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जायगा। जायदाद की सारी देख-रेख मुझे ही करनी पड़ेगी। और उस दशा में तुम्हीं सोचो कि साधना के जिस पथ पर आज मैं आ पहुँची हूँ, उसमें अब और आगे कैसे बढ़ूँगी! ख़ैर, वह सब तो देखा जायगा। रुचिनाथबाबू को मेरी ओर से बहुत बहुत धन्यवाद दे देना, बल्कि ठहरो, तुम यह फ़ोन उन्हीं को दे दो, मुझे भी इस सम्बन्ध में उनसे बात करनी चाहिए और मैंने रिसीवर बाएँ हाथ में लेकर रुचिनाथबाबू को देते हुए कह दिया—"लीजिए, श्रीमती विश्वास आपसे बात करना चाहती हैं।"

और इसी समय धनी ने बादाम के दूध वाला ग्लास मेरे सामने टेबिल पर रख दिया।



: २९ :

मेरी सदा से एक आदत रही है कि कैमिल्स-बैक-रोड पर टहलते-टहलते मैं एक बार उसकी उस चोटी को अवश्य देखता हूँ, जिसमें मुझे ऊँट की पीठ जैसा कूबड़ निकला हुआ जान पड़ता है। उसको देख-देखकर मुझे प्रकृति के सीमाहीन सौन्दर्य का भान होता है। मैं शैल के साथ घमने निकला हुआ था। हरे-भरे वृक्षों के कुञ्ज जहाँ एक गहराई के साथ कुण्ड बनाते हुए दिखाई पड़ते, पहाड़ की चोटियाँ अपने आकार-प्रकार के रूप में वैचित्र्य उत्पन्न करतीं और जहाँ मेघ-मालाएँ गिरिशृंगों पर झूम-झूम कर बरसतीं, वहाँ रेनकोट पहने और छाता हाथ में लिए हम दोनों किसी घनी पत्तीवाले वृक्ष के नीचे थोड़ी देर के लिए खड़े हो जाते। बादल जब यकायक बरसना बन्द कर देते और जैसे चिक के भीतर से कोई रंगीन तबीयत की नारी बाहर आकर खिलखिला कर हँस पड़ती है, वैसे ही धूप भी हमारे निकट से तत्काल निकलती हुई और कभी-कभी तो हमारे ऊपर से उड़ती हुई-सी भाग जाती, तब हम सड़क के एक किनारे खड़े होकर छाया और धूप के अलग-अलग क्षेत्रीय रूप और छवि को आँखों में भरकर अपनी कल्पना में, चेतना में, ठहरा कर और सुला कर ही मानते।

उस दिन कुछ ऐसा हुआ कि टहलते-टहलते जब हम काफ़ी थक गए और शैल ने कह दिया—"चलो भाई, अब तो मैं बहुत शिथिल हो गई हूँ।" तो मैं शैल के बँगले की ओर मुड़ गया। इसी समय एक चपरासी ने हमारे पास आकर पूछा—"आप ही का नाम सतीशबाबू है ?"

मैं कुछ शङ्कित हो उठा। रेनकोट मैंने तुरन्त उतार लिया और जानबूझ कर लटकते हुए पिस्टल को जैसे उसे दिखलाते हुए मैंने उत्तर दिया—"तुम्हारा मतलब क्या है ? पहले अपना मतलब बताओ। और उससे भी पहले यह बतलाओ कि तुम खुद कौन हो ?"

चपरासी ने कुछ डरते-डरते उत्तर दिया—"दो बाबू साहब उधर खड़े हैं। वे आपसे कुछ बात करना चाहते हैं। मैं उन्हीं का नौकर हूँ।"

अब शैल ने कह दिया—"हम रास्ते में किसी बाबू-आबू से नहीं मिला करते। जाओ, कह दो जाकर।"

चपरासी थर-थर काँप उठा। जान पड़ा—उसने शैल को पहचान लिया था। हाथ जोड़कर बोला—"सरकार, मैंने आपको पहचाना नहीं, मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं इसकी माँफ़ी चाहता हूँ। मैं आपका बहुत पुराना गुलाम हूँ। बहुत दिनों में देखा था, इसलिए······"

इतने में शैल बोल उठी—"अच्छा, अच्छा, समझ लिया। उनसे जाकर कह दो कि यहाँ कोई बात नहीं हो सकती। फ़ोन पर 'एप्वाइण्ट-मेण्ट' ले लें, तब जिस वक्त मैं आने के लिए कहूँ अपने पैरोकार को भेज दें। मैं उनसे तो अब कोई बात ही न करूँगी। समझ गए? जाओ! जैसा मैंने कहा है बिलकुल वैसा ही एक शब्द बिना इधर-उधर किए हुए कह देना।"

चपरासी चला गया। अब मैंने कह दिया—"तुम्हारे इसी गुण पर मैं मुग्ध हूँ शैल! तुम सचमुच राजकुमारी हो।"

शैल मुस्कराई और बोली—"तुम अधूरे हो सतीश; पूरी बात तो कभी कहना ही नहीं जानते। मैं पूछती हूँ अगर इस वाक्य के पहले 'रूपनगर की' शब्द और जोड़ देते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? या कुछ ऐसी बात है कि अब मैं रूप नाम की चीज़ खो चुकी हूँ?"

शैल की बात और उसकी आपत्ति में सार था। इसलिए मैंने कह दिया—"सब बातें एक साथ नहीं कह दी जातीं। क्यों कि हर बात समय-समय की होती है। फिर, अकेला राजकुमारी शब्द जो तुम्हारे लिए मेरे हृदय से फूटकर निकला है, क्या अपनी गरिमा में वह कुछ कम महत्व का है?"

शैल मुस्कराने लगी। बोली—"मैं तो मज़ाक कर रही थी। ख़ैर,

अब हम इस तरफ़ से न जाकर इधर से जायँगे।" और इतना कहकर वह प्रतिकूल दिशा की ओर मुड़ गई। मैंने पूछा—"क्यों, डरने की तो कोई बात थी नहीं!"

शैल ने उत्तर दिया—"मानती हूँ कि डरने की बात नहीं है, लेकिन जो बात मैंने अभी उस लोचन नाम के चपरासी से कही है कि मैं कुमार की शक्ल देखना भी पसन्द नहीं करती, बस, इसी कारण मैंने इस मोड़ को गति दी है।" यह बात भी शैल की ठीक ही थी। इसलिए मैंने कह दिया—"हाँ, ठीक है, ख़ैर! अब हमारा रास्ता बिल्कुल साफ़ हो गया। आज ये लोग तुम्हारे पास आएँगे। खुद नहीं आएँगे, तो किसी को भेजेंगे। और यह निश्चित है कि तुमको मिलाने की चेष्टा भी करेंगे। कहेंगे, जो कुछ हुआ, उसके लिए कुमार साहब बहुत लज्जित हैं। शायद यह भी कहें कि अगर भाभी मुझको क्षमा नहीं करेंगी और बचाएँगी नहीं, तो मैं आत्मघात कर लूँगा। इसलिए मैं तुमको सावधान कर देना चाहता हूँ कि अब उनसे किसी प्रकार का समझौता न होना चाहिए। जो पाप उसने किया है, उसका फल उसे मिलना ही चाहिए।"

शैल अब बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने उत्तर दिया—"नहीं, सतीश! मैं अब इस सम्पूर्ण जायदाद की देख-रेख की झँझट में नहीं पड़ना चाहती। इतना तो तुम मुझे अब तक जान ही चुके होगे कि मुझे धन और वैभव के प्रति कोई मोह नहीं रह गया है। विमल जेल में सड़ता रहे और मैं जायदाद की स्वामिनी बन कर क्वीन विक्टोरिया की तरह राज्य करूँ, यह मेरे बस का राग नहीं! मैं राज्य नहीं चाहती। मैं तो अब शान्ति चाहती हूँ। इसीलिए मैं सोचती हूँ कि अगर किसी भी तरह कुमार इस दण्ड से मुक्त हो जाय, तो बड़ा अच्छा हो। अगर हमको इस प्रयत्न में सफलता न मिली और कुमार को जेल भोगना ही पड़ा, तो मैं जीवित रहते हुए भी मर जाऊँगी। मेरे मुँह पर वह कालिमा

पुत जायगी, जो फिर किसी भी तरह से नहीं धुल पाएगी। ज़रा सोच देखो सतीश, वह नारी सुख शान्ति के साथ कैसे सो सकती है, जो एक ओर से पति-हीना हो और दूसरी ओर भले ही अपने कर्मों से हो, हो उसका देवर जेल में, मैं झूठ कह रही हूँ ?"

हम बँगले की ओर बढ़ते चले जा रहे थे। किन्तु मुझे शैल की इस बात ने फिर भ्रम में डाल दिया, तो क्या शैल फिर अपने को धोखा दे रही है ? क्या उसके मन में अब भी मेरे लिए कोई स्थान नहीं बना है ? क्या अब भी हम दूर-ही-दूर बने रहेंगे ?—लेकिन शायद इसीलिए शैल, कुमार को मुक्त करा देना चाहती है। अब सारी बात समझ में आ रही है। वह यह नहीं चाहती कि हम अगर शैल के साथ दाम्पत्य-जीवन भोग करें, तब दुनिया को यह समझने का अवसर मिले, कि इसी दिन के लिए, इन लोगों ने मिल कर कुमार को जेल में पहुँचा दिया है। ···वाह ! शैल, तुम धन्य हो ! लोक-लाज जीवन का बहुत बड़ा पहलू है। सम्पत्ति, वैभव और आनन्द के प्रमाद में आकर जो व्यक्ति लोक-लाज की उपेक्षा करता है, मैं उसको सफल नहीं मानता और सत्य तो यह है कि दुनिया उसको सफल नहीं मानती। अब मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा, मेरी ही आँखें मुँदी हुई रही हैं। शैल मुझसे अधिक दूरदर्शिनी है। और तब बँगले की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते मैंने विवश होकर कह दिया—"तुम ठीक कहती हो शैल ! हम ने जो सोचा था, वह उस समय भले ही सही रहा हो, पर अब बिल्कुल ग़लत मालूम पड़ता है। परिस्थितियों की पुकार है कि हमको कुमार को छुड़ाने में अब पूरा सहयोग देना पड़ेगा।"

मैं ये शब्द कह ही रहा था कि शैल बराण्डे में पहुँचते-पहुँचते, बहुत गम्भीर होकर बोली—"अब हमारा काम बहुत बढ़ गया है और गिरीश-जी की सहायता के बिना किसी तरह भी काम नहीं चलेगा। अच्छा, तुम भइया को 'ट्रँक कॉल' करने का प्रबन्ध करो, फ़ोन पर जा बैठो और जब वह बात करने लगें, तब मुझको बुला लेना। तब तक मैं देखती हूँ

कि खाने में क्या विलम्ब है। मैं तो बहुत थक गई हूँ और मुझे बड़ी भूख लगी है।"

इतना कहकर शैल भीतर चली गई और जैसे ही मैं फ़ोन पर गया, वैसे ही घण्टी अपने आप बज उठी। मैंने रिसीवर जो उठाया, तो अविनाश बोल उठा—"ओ ! सतीश, तुम मुझको बिलकुल ही भूल गए ? हाँ भाई, भूल ही जाना चाहिए ! तुम्हारी परिस्थिति में अगर मैं होता, तो शायद मैं भी भूल जाता। ख़ैर, मैं इसके लिए तुमको दोष नहीं देता। अच्छा, विमल की जमानत तो किसी तरह हो गई, हालाँकि बड़ी मुश्किल से हुई। मगर अब मुझे तुम से कहना यह है कि माई डियर जो कुछ हुआ, सो हुआ। विमल ने जो कुछ किया, उसका उसे बहुत दुःख है। सच पूछो तो उसकी हालत अब दयनीय हो गई है। थोड़े से ही अरसे में उसका वज़न दस पौण्ड घट गया है। एक तरह से बीमार ही उसे समझना चाहिए। बल्कि मुझको तो भय है कि कहीं उसे टी० बी० न हो जाय ! ···हल्लो···हाँ, तो अब इस मामले में तुमको उसके साथ सहयोग ही करना चाहिए। बिगड़ो मत, देखो मैं उपदेश नहीं देता हूँ। मैं तुमसे विनयपूर्वक कह रहा हूँ और अगर तुमको मेरी इस भाषा से पूरा सन्तोष नहीं है, तो लो, मैं स्पष्ट कहता हूँ कि मैं श्रीमती विश्वास के देवर को तुमसे भीख की तरह माँग रहा हूँ ! मेरे शब्दों में ज़रा भी 'एग्ज़ाग्रेशन' नहीं है। परिस्थिति सब करा लेती है। मैं भी परिस्थिति के हाथों बिका हुआ हूँ। ···क्या बकते हो, सुनो भी, मैंने किसी लोभ के वश विमल का साथ दिया था ? छिः छिः ! शर्म नहीं आती तुमको मुझ पर ऐसा चार्ज लगाते हुए ? तुमको मालूम नहीं, विमल के साथ मेरे कैसे सम्बन्ध रहे हैं ! ख़ैर, छोड़ो, छोड़ो, इस बात को ! यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है। ···अरे जाओ, उससे कहो, जो तुमको जानता न हो सतीशबाबू ! बातें छिपी नहीं रहतीं बाबू ! आख़िर तुम्हारी प्लानिंग तो थी ही स्विट्ज़रलैण्ड जाने की ! तुम नहीं गए, तो प्रफुल्ल

बाबू गए। एक नहीं गया, दूसरा गया···हाँ, हाँ···मैंने लिखा था; मैंने छपवाया था सब कुछ! तो, अब तुम क्या चाहते हो? सम्पादक से माफ़ी तो मँगवाली! तुम्हारे भैया ने कोशिश तो बहुत की थी, मुझको भी कटघरे में लाने की! लेकिन वह तो कहो कि भाग्य साथ दे गया, इसलिए इस तस्वीर के साथ में गिरफ़्त से बच गया। खैर, इस बात को भी जाने दो।···हाँ···हाँ अच्छा माफ़ी माँगता हूँ! बस, अब तो खुश हो न? तो मेरा कहना यह है कि भगवान् से डरो, कहा मानो, समाज की ओर भी ज़रा देखो! कुमार यदि जेल चला गया और तुमने अलग से, एक दूसरी जायदाद पर, जो तुम्हारी अपनी पूरी जायदाद से कहीं बड़ी है, अधिकार भी कर लिया और साथ-ही-साथ श्रीमती विश्वास के साथ तुम्हारी 'सिविल मैरेज' भी हो गई, तो इसमें तुम्हारी कौन सी इज्जत बढ़ जायगी! कानपुर में सिविललाइन्स पर अपनी गाड़ी में बगल में श्रीमती विश्वास को बैठाकर जब तुम घूमने निकलोगे, तो क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे पुराने मिलनेवाले हर चौराहे पर, रोक-रोक कर, तुम्हारा अभिनन्दन करेंगे, फूलों के गजरे तुम्हारे गले में डालेंगे? अरे प्रोफ़ेसर साहब···हल्लो···हल्लो, एस, हाँ, मैं यह कह रहा हूँ कि जैसे भी बने तुम कुमार को इस समय तो बचा ही लो। और फिर तुम्हारे मन में जो आए, जो तुम को भाए, वह कर उठाओ। कौन तुमको मना करता है! और सुनो, जब तुम्हारी 'सिविल मैरेज' होगी, तो फूलों का सबसे बड़ा गजरा सब से पहले मेरा ही तुम दोनों के गले में पड़ेगा। सच, और रह गया कुमार, सो इस विवाह का पूरा खर्च मैं कुमार से तुमको दिलवा दूँगा।···बोलो, अब तो खुश हो? कह दो मियाँ हाँ, एक बार प्रेम से प्यारे!···ह···ह···ह···ह, हाँ, हाँ···अच्छी बात है। हाँ··· हाँ···मैं ही आऊँगा!···अरे मैं मना लूँगा, उनको भी! तुम कैसी बात करते हो···और सुनो, हमारे भी दिन कभी रहे हैं बाबू। क्या समझते हो···मुझको? रहने भी दो, अरे जाओ भी,···तो मैं कुछ कहता थोड़े

ही हूँ। मैं तो सब तरह से तुम्हारे साथ ही हूँ···अच्छा, नहीं···नहीं··· आज नही···यह खाना वाना आज कुछ नहीं चलेगा···बस, डियर यह तो तभी शुरू होगा, जब कुमार इस केस से बिल्कुल मुक्त हो जायगा···कुछ भी कठिन नहीं है।···यार, यह सब हो जायगा···बस, तुम्हारा सहयोग हमें मिलना चाहिए···तो···कल सवेरे आठ बजे···एस···चेरियो···!"



: ३० :

शैल फ़ोन पर भाई साहब से बातें कर रही है और मैं पास ही बैठा सुन रहा हूँ :

"गिरीश बाबू हैं ?···अच्छा, अच्छा···नमस्कार करती हूँ···दीदी अच्छी तरह तो हैं ? ···मुन्ना को नहीं भेजा आपने···हाँ, हाँ···सो तो ठीक ही है माँ के बिना···अच्छा, खीर खा रहा है···बहुत थोड़े से थे खिलौने···अच्छा···अच्छा भगवान करे हज़ार वर्ष का हो···हाँ, वो तो तय है।···आपको ड्राफ्ट दिखलाए बिना, आपके आए बिना उसकी रजिस्ट्री कैसे होगी···हाँ···हाँ···मगर···फिर बहुत देर हो जायगी। देखिए, जो कुछ हमको करना हो, उसे अविलम्ब कर डालना चाहिए··· आपने देख ही लिया···क्या कसर रह गई थी मेरी 'डेथ' में ! कर्म का थोड़ा-सा भोग अभी शेष है, इसीलिए जीना पड़ रहा है।···नहीं···नहीं ···ऐसा कैसे हो सकता है···?···हाँ···हाँ···लीजिए, लीजिए, अब मैं नहीं बोलूँगी।···मगर क्या यह बात आपके मन के भीतर से उठी है ? क्या मेरा ऐसा भाग्य है ? मेरे सिर पर आपके वरद हस्तों की छाया रहेगी, तो···तो मन का धर्म है, इसलिए आँसू आ ही जाते हैं (कण्ठ भर आया है) अच्छा, मैं केवल मतलब की बात करूँगी। हाँ···अच्छा देखिए, अगर आपके मन में यह भाव उठा है, तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही समझती हूँ, मगर उस दशा में कुमार को जेल में सड़ने देना···दुनिया क्या कहेगी ?—यही न कहेगी कि मैं अपने पशुधर्म की तृप्ति के लिए एक अरसे से यह जाल बना रही थी। इसी दिन के लिए मैंने इस नाटक की रचना की थी ? मानती हूँ···हाँ···यह भी मानती हूँ···किन्तु लोक-लाज की उपेक्षा करके अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, बहिष्कार का जीवन बिताने में सुख और शान्ति भी मुझे मिलेगी ?···नहीं···नहीं···यह मुझे शोभा नहीं देता और आपका भी गौरव गिर जायगा। ऊँचा न उठ पाएगा। दुनिया से डर कर चलने में मैं कोई कायरता नहीं मानती।

आख़िर यह दुनिया भी तो उसी भगवान की बनाई हुई है, जिसके हम एक अंग हैं।···इसलिए उसका अनुशासन हमको मानना ही पड़ता है। ···यही सत्य है, यही न्याय है। अपराधी के प्रति दया का अर्थ मैं अन्याय नहीं मानती; अच्छा मान लीजिए कि आज विमल विश्वास को फाँसी हो जाय तो क्या समझते हैं कि मुझे सुख मिलेगा? मेरे आँसू सूख कर फूल की तरह आँखों में ही खिलकर बदल जाएँगे?···नहीं ···नहीं···बिलकुल नहीं···इसके बिना···मुझे कभी शान्ति नहीं मिलेगी! ···अच्छा···हाँ ··· हाँ ··· आँ ··· हाँ ··· बस, आपका यही आशीर्वाद मेरे जीवन का नवनिर्माण करने में सहायक होगा। ··· हर्ज तो होगा ही ··· असुविधा भी होगी ··· मगर यह सब तो मेरी ओर से हो रहा है न? इसलिए आप 'प्लेन' से आइए। ख़र्च की चिन्ता न कीजिए। ··· नहीं ··· नहीं ··· मैं इसे अपव्यय नहीं मानती। आप मेरे बड़े भाई के समान हैं और अब तो इस नए प्रस्ताव के अनुसार मेरे पिता के समान हो गए हैं। इसीलिए कहती हूँ कि सब यहीं छूट जाता है। कुछ भी साथ नहीं जाता। साथ जाता है केवल यही विश्वास, यही आस्था, यही धर्म और सत्य कि मैंने इस दुनिया में आकर कुछ ऐसे काम किए जिससे भगवान की इस अद्‌भुत रचना क्रम को थोड़ी गति मिली। यही सद्‌गति है मनुष्य की, यही मोक्ष है। बस,···अब मुझे आपसे यही निवेदन करना है कि कल का प्रातःकाल आप यहीं देखेंगे···अच्छा···अच्छा ··· दो दिन मैं और किसी तरह काट लूँगी। ···हाँ ··· हाँ ··· सुनिए, देखिए, तो ऐसा कीजिए, दीदी और मुन्ना को साथ लेते आइए। सच, आप जानते हैं, मुझे कितना सुख मिलेगा! ···अभी नहीं, नहीं, नहीं ··· जब तक कुमार इस अभियोग से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक यह सब मेरे लिए शोभन न होगा ··· हाँ ··· हाँ अच्छी बात है। ··· मैं चली आऊँगी ···वहीं सही ·· अब तो वही मेरा घर रहेगा। यहाँ रहकर मैंने क्या कुछ नहीं सहा है?—और जब मेरे जीवन का फिर से निर्माण हो

रहा है तब ··· तब तो मुझे वहीं रहना ही पड़ेगा, यह बात दूसरी है कि 'सीजन' आन पर आप सब के साथ ही मैं भी यहाँ आ जाया करूँगी ···हल्लो···हल्लो···ह···लो···ओ···एस···एस···मुन्ना ? मुन्ना ?··· मिट्ठी···जियो···जियो···खेलो; देखो दो दिन के बाद जब तुम यहाँ आओगे, तब मैं तुम्हारे साथ खेलूँगी, गाऊँगी। ···अच्छा···अच्छा नाचूँगी, गोद में लेकर···अच्छा···जियो···जियो।" और इतना कह-कर शैल ने फ़ोन का रिसीवर मुझको दे दिया और भइया का स्वर मेरे कान मे आने लगा। मैंने कहा—"चरण छूता हूँ।···अच्छा···यह सब आप क्या कह रहे हैं ?···"

वे बोले—"देखो सतीश, मन के धर्म को कोई मनुष्य छिपा नहीं पाता। व्यवहारों से और कर्म से वह कभी-न-कभी, किसी-न-किसी तरह प्रकट हो ही जाता है। लोग मन के धर्म में भी एक गाँठ लगा लेते हैं। उससे गति में अन्तर पड़ता है और गति का अन्तर अवरोध उत्पन्न करता है। वह अवरोध निर्माण को, सृष्टि को, हानि पहुँचाता है। इस से पहले तो मैंने तुमसे इस तरह का कोई प्रस्ताव किया नहीं था ! तुम सोचते होगे कि मैं इस सम्बन्ध में उदासीन बन गया हूँ, लेकिन कर्तव्य का भवन, अध्ययन की आधार-शिलाओं पर ही दृढ़ता के साथ खड़ा होता है। मैंने जब स्वयं आकर वहाँ तुम्हारे सम्बन्धों को अपनी आँखों से देखा, आत्मा के स्वरों से पहचाना और निरन्तर अनुभव किया, तुम्हारे यहाँ आ जाने पर भी और फिर यहाँ से चले जाने के बाद भी। मुझे इस सम्बन्ध में एक बात की खुशी और है कि तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं और श्रीमती विश्वास ने भी सदा अपना निर्मल रूप ही प्रकट किया। तुम दोनों का मन जब इस सीमा तक एक हो गया है, तब मेरे समक्ष इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि निकट भविष्य में वैधानिकरूप से भी तुम दोनों को एक कर दूँ ! हाँ···हाँ···मगर सारी बातें समझने में···मानता हूँ कि मुझे आवश्यकता से कुछ अधिक समय

लग गया है और वह 'विल' वाली जो समस्या है, उसे भी अभी मुझे समझना बाकी है।···नहीं···नहीं···ऐसी कोई बात नहीं है···पर एक बात मैं सोचता हूँ कि श्रीमती विश्वास तुम्हारे लिए सर्वथा उपयुक्त हैं, तब वे अपने जीवन से सन्यास लेने की प्रवृत्ति क्यों दिखला रही हैं? अगर मैं देखता कि वे बिना तुम्हारे जी सकती हैं और अपना जीवन एक आदर्श विधवा नारी की भाँति बिता सकती हैं, तब तो उनका अपनी जायदाद का मुन्ना के नाम कर देना, कुछ अर्थ भी रखता था, किन्तु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। मैंने अभी उनसे बात-चीत कर ली है और मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने अपने आपको कहीं से भी मुझ से छिपाया नहीं है। ऐसी दशा में यही उचित भी है।···नहीं···नहीं···नहीं···ऐसा नहीं होगा···ऐसा कभी नहीं होगा···इस सम्बन्ध को तुम्हारे साथ जुटा देने में मुझे तभी प्रसन्नता होगी, जब 'विल' का विचार वे अपने मन से बिलकुल निकाल देंगी···नहीं···नहीं सतीश, ऐसी कोई बात नहीं है, जो उचित और स्वाभाविक है, वही मैं कह रहा हूँ! ···हाँ,···हाँ···ओं···तुम्हारी भाभी की भी यही राय है।···बल्कि उस दिन जब श्रीमती विश्वास की बीमारी का तार आया था और 'विल' का भी उसमें उल्लेख था, तब मुझसे तुम्हारी भाभी ने ही इसका संकेत किया था। वैसे चाहे इस दिशा की ओर तुरन्त मेरा ध्यान न भी जाता, किन्तु अब सारी बातें मेरे समक्ष बिल्कुल स्पष्ट हो गई हैं और मैं सोचता हूँ कि केवल मेरे दो-चार दिन के सानिध्य से ही जो नारी हमारे परिवार के लिए इतना उत्सर्ग करने के लिए तत्पर है, वह अवश्य ही एक असाधारण नारी है। उसकी पवित्रता में किसी प्रकार का सन्देह करना अपनी ही हीन मनोवृत्ति का परिचय देना है। खैर...बाकी बातें मिलने पर होंगी! यहाँ अब सब काम ढंग पर आ गया है! और दो-चार दिन के लिए तुम्हारी भाभी और मुन्ना को लेकर मैं परसों यहाँ से चल दूँगा—परसों या कल! अच्छा, यह लो मुन्ना तुमको प्रणाम

कर रहा है।"—और मैंने सुना कि यह स्वर सुन्ना का ही है—"चाचा जी, मैं आपके पैर छूता हूँ ! और चाचा जी हमने अभी अम्मा से कहा था कि तुम भी चलो न वहाँ जहाँ चाचाजी रहने लगे हैं तो उन्होंने मान लिया है और चाचा जी, इस बार हम रेल से नहीं हवाई जहाज से उड़कर आएँगे और दो-तीन घण्टे में ही आपके पास पहुँच जायँगे। बस, तब तुम हमको गाड़ी पर घुमाने ले चलना और वहाँ बड़े-बड़े खिलौने, रेलगाड़ी, हवाई जहाज, सब हमको ख़रीद देना। फिर हम और तुम मिल कर इन खिलौनों से खलेंगे और टॉफ़ी खाएँगे और मिठाई रसगुल्ला और रबड़ी, मलाई सब खाएँगे और चाचा जी आपको भी खिलाएँगे। बस, अब फिर ! अच्छा···आ···। फिर पैर छूता हूँ। आशीर्वाद दो, कहो, खुश रहो···अच्छा, बस !"

जब फ़ोन से यह सब सारी बातें हो गईं तो मैं वहाँ से उठकर जो शील के पास गया तो मैं क्या देखता हूँ कि वह रामू से कह रही है—"देखो रामू, हमारी पाठशाला में ५२ लड़कियाँ हैं और २० बच्चे। इस प्रकार ७२ 'डिशेज' बनेंगी ! दो-दो मिठाइयों की, दो-दो नमकीन की और एक-एक गिलास दूध की। यह सब सामान आज तैयार हो जाना चाहिए। दावत का समय मैंने छै बजे शाम का रक्खा है। मिठाइयों का इन्तजाम मैं कर लूँगी, लेकिन पकौड़ी और बैंगनी ये दो चीजें तो तुम्ही को बनानी पड़ेंगी। समोसे और बालसेव भी बाजार से आ जायगी। और देखो, तुम्हारे यहाँ प्लेट्स तो काफ़ी हैं हीं, ग्लास शायद कुछ कम पड़ें तो ऐसा करो कि रुचिनाथ बाबू के यहाँ से ले आना। मैं अभी फ़ोन पर कहे देती हूँ। और इसके बाद रात को रुचिनाथ बाबू, रुचिता देवी और बेबी किरण हमारे यहाँ खाना खाएँगे। हो सकता है कि अविनाश बाबू भी आ जायँ। मगर अभी तय नहीं है। ख़ैर, अगर तुम अकेले यह सब सामान तैयार न कर सको, तो रुचिनाथ बाबू के 'कुक' को भी बुला लो।"

रामू बोला—"सब कर लूँगा आप चिन्ता न करें।"

इसी समय एक पुष्पगुच्छ के स्टैण्ड को बगल में पड़ा देख शैल ने झिड़कते हुए कहा—"मने सुबह तुमसे क्या कहा था? तुमने अभी तक इसे हटाया क्यों नहीं! यह लापरवाही मुझे पसन्द नहीं! फ़ौरन हटाओ···और हाँ, देखो, बँगले की पूरी सफ़ाई हो जानी चाहिए। आज नहीं। क्योंकि तुम्हारे पास काम है। लेकिन कल ज़रूर हो जानी चाहिए!—दोपहर से पहले! समझे? गिरीश बाबू आने वाले हैं!"

"जी, बहुत अच्छा! सब काम हो जायगा, देवीजी!"

मैं चित्रलिखित-सा खड़ा-खड़ा यह सब देख रहा था और सुन रहा था। भावना में डूबा-डूबा, खोया-खोया-सा मैं अपने कमरे मे आ गया और कुर्सी के बदले पलँग पर आकर चुपचाप, लेट गया। दस मिनट बाद में क्या देखता हूँ कि शैल मेरे पास कुर्सी डाल कर आ बैठी और मैं आँखें मूँदे यथावत लेटा रहा। जान पड़ता है, शैल समझ गई कि मैं सो नहीं रहा हूँ, इसलिए वह बोली—"ओ सोनेवाले पथिक अब जाग पड़ो! नहीं तो बादल खिड़की के रास्ते से भीतर घुस आएँगे और पानी की बौछार से तुम्हारे कपड़े तर-बतर हो जाएँगे। तुम्हें सरदी लगेगी और तुम ठंडक से सी-सी करने लगोगे और तब तुम्हारे अड़ौसी-पड़ौसी, जीवन साथी दुःखी होंगे! मार्ग बहुत बड़ा है। पथ बड़ा चौड़ा है। साथियों की आगे और पीछे कमी नहीं है, लेकिन जो तुम्हारा कोई अपना निज का साथी भी है, वह उस भीड़ में सबके सामने तो तुमको अपने बदन से चिपका लेने का साहस करेगा नहीं, और लज्जा भी उसमें होनी स्वाभाविक है। इसलिए वह दूर दूर की ही आत्मीयता प्रकट कर सकेगा। इसका तुम बुरा न मानना। देखो पथिक उठो, नहीं तो जैसा मैं कह रही हूँ, वैसा होकर रहेगा।"

और शैल का इतना कहना था कि मैंने देखा—खिड़की खुली है

और सामने की शैल हरी-भरी उपत्यका पर धूप आकर खिलखिला कर हँस रही है। वायु तेज़ी के साथ खिड़की में घुसती हुई अपने साथ पानी की बौछार भी लेती आई है। ऊपर पड़ा हुआ शाल पानी की बूंदों से तर हो गया है और शैल दरवाजे के पास खड़ी-खड़ी मुस्करा रही है।



: २१ :

दो दिन बाद भाभी और मुन्ना को लेकर भाई साहब आ गए। शैल और हम दोनों नीचे बस-स्टैण्ड पर पहुँच गए थे। सामने पड़ते ही मुन्ना मेरे पैरों में लिपट गया। मैंने उसे गोद में उठा लिया। दोनों हाथों की मिट्ठी ली और जब मैं उसे उतारने लगा तो शैल ने उसे गोद में ले लिया। मैंने भइया और भाभी के चरणों की रज मस्तक से लगा ली। इसके पूर्व जब मैं मुन्ना को प्यार कर रहा था, तब शैल ने भी भइया और भाभी के चरण छुए। शैल बहुत पुलकित थी और उसकी आँखों में आनन्दाश्रु छलछला आए थे। थोड़ी देर में हम सब बँगले पर आ गए। आते ही हमने देखा कि पाठशाला के बच्चे एक पंक्ति में खड़े गा रहे थे:

'मंगल-स्वागत, मंगल-गान'

इस दृश्य को देख कर भइया और भाभी बहुत प्रभावित हुए। भइया ने कहा—"इन बच्चों ने आज हमारा जो स्वागत किया है, वह मेरा अपना उतना नहीं है, जितना भारतीय संस्कृति और परम्परा के पावन उद्घोष का है। इसका सारा श्रेय शैलकुमारी को है, जिसके पवित्र स्नेह का मैंने निरन्तर अनुभव किया है। मुझे पूरी आशा है, कि यह पाठशाला स्थायी रूप से अपना यह कार्यक्रम निरन्तर गतिशील रक्खेगी और उत्तरोत्तर उन्नति करती हुई एक दिन एक महाविद्यालय का रूप धारण कर लेगी।" इसके बाद शैलकुमारी ने भइया के आशीर्वाद की गुरुता को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए घोषणा की—"तुम सबको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि दादाजी ने इण्टरवल के समय सदा बच्चों को पाव-पावभर दूध नित्य पिलाने की व्यवस्था कर दी है। और इसका शुभारम्भ आज से ही हो रहा है।" इनका यह प्रसाद प्राप्त कर हम वास्तव में बहुत गौरवान्वित हुए हैं।"

यह सारा आयोजन शैल ने मुझसे गुप्त रक्खा था, इसलिए मुझे आशातीत आनन्द मिला। नाना कल्पनाओं में डूबा हुआ मैं बिलकुल ही मूक बन गया था। दोपहर को हम सब जब एक साथ भोजन पर बैठे तो भाभी ने कहा—"हमारी जिन्दगी में ऐसा भी अवसर आएगा, जब मैं ऐसी देवरानी पा जाऊँगी, जो व्यवस्था के क्षेत्र में मुझसे कहीं अधिक कुशल होगी, यहाँ तक तो मैं सोच ही न सकती थी।" अब भइया बोले—"मैं जब पिछली बार सतीश के कारण मुन्ना का जन्म-दिन मनाने के लिए यहाँ आया था, तब मैं शैल जैसी आचारवान नारी को अपने इतने निकट पा जाने की कल्पना भी न कर सका था।"

इतने में मोर बोल उठा। भाभी बोलीं—"मुन्ना देखो, तुमने सुना ? कौन बोला ?"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"मोर"

भाभी ने कहा—"मोर मीन्स माइन"''मतलब यह है कि वह बोल रहा है, हम लोगों की इन बातों को सुन कर जो मेरा है—मेरा बन चुका है।"

शैल मुस्कराई। सिर से खिसकती साड़ी को पुनः यथास्थान स्थापित कर बाएँ हाथ की अँगुलियों से उसकी किनारी को वक्ष पर ले आकर वह बोली—"सब आप लोगों के आशीर्वाद का, मंगल-कामनाओं का प्रतिफल है। इसमें मेरा तो कहीं कुछ है नहीं।"

जिस समय शैल यह बात कह रही थी, उस समय यकायक मेरी दृष्टि उस पर जा पहुँची। मैं जो कुछ कहना चाहता था, जो कुछ मेरे मन में आ रहा था, वह जहाँ-का-तहाँ स्थिर होकर बैठ गया। क्योंकि तभी भइया ने कह दिया—"सतीश तो अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए यहाँ आया था।" और इसके बाद भाभी बोल उठीं—"और मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हो रही है कि उसने स्वास्थ्य के साथ-साथ अपने आपको भी सुधार लिया है।"

भाभी का इतना कहना था कि मैं झट पानी पीकर वहाँ से चलने लगा। शैल ने अपनी दृष्टि नीची कर ली और बड़ी मुश्किल से वह अपने प्रकृत हास को रोक सकी। मुझे यकायक उठता देखकर भइया बोल उठे—"बैठो, बैठो, सतीश! मैं देख रहा हूँ कि तुम अपना 'रोल' बहुत अच्छा अदा कर रहे हो। अच्छी बात है। हम अब इस विषय की बात तुम्हारे सामने नहीं करेंगे।"

लेकिन भाभी बोल उठीं—"तुम भले ही न करो, मगर मैं तो चूकूँगी नहीं। कितने दिनों के बाद तो यह सौभाग्य मिला है।"

इतने में मुन्ना बोल उठा—"अम्मा, अब हम उनके पास बैठ कर खाएँगे।" यह संकेत शैल की ओर था और वह इस बात को सुन कर आनन्दविह्वल हो उठी। रामू भोजन परोस रहा था। शैल बोली—"एक डिश खीर और तो लाना। मुन्ना खीर खाएगा।"

इतने में मुन्ना बोल उठा—"न, न, अलग से मत लाओ। हम तो साथ ही में खाएँगे।" और वह शैल की पीठ से जाकर लटक गया। दोनों हाथ उसने शैल की गर्दन के नीचे डाल दिए और बोला—"बोलो, बोलो, तुम मुझे साथ खिलाओगी?"

शैल ने उसको अपने पास बिठा लिया और पुलकित होकर उत्तर दिया—"मैं अपने मुन्ना को रोज अपने साथ खिलाऊँगी।" और इतना कहती हुई शैल चम्मच को पानी से धोकर, प्लेट से खीर लेती हुई, मुन्ना के मुँह में जो डालने लगी, तो मोर फिर बोल उठा। भाभी बोलीं—"देखो, मोर फिर बोला।"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"मोर मौन्स माइन!" और उसका यह कहना था कि भाभी और भइया हँस पड़े—शैल भी। अब भाभी बोलीं—"देखो शैल, यह तुमको तंग करेगा। खेल में और बातों में उलझाए रहेगा। नतीजा यह होगा कि तुम ठीक तरह से भोजन भी न कर पाओगी। इसलिए तुम इसको हमारे पास भेज दो।" और

इसके बाद वे बोलीं—"मुन्ना, इधर आ जाओ, भइया! चाची को तंग नहीं करते हैं!"

मुन्ना आश्चर्य से भाभी की ओर इकटक देख कर रह गया। इतने में रामू ने पूछा—"खीर और लाऊँ?"

भइया बोले—"सतीश को दो।"

मैंने कह दिया—"नहीं, नहीं, नहीं! मेरा पेट भर गया। अब मैं नहीं लूँगा।"

भाभी बोल उठीं—"आज ये दोनों-के-दोनों पेट भर खाना भी न खाएँगे। खा लो सतीश, खा लो, आज की इस खीर का बड़ा महत्त्व है। जीवन तुम्हारा खीर की तरह रुचिकर और मधुर व्यतीत हो, यही मेरी आकांक्षा है।"

अब मैं एक दम से उठ कर चल दिया और थोड़े अन्तर से लगे 'वाश-बेसिन' में हाथ-मुँह जो धोने लगा तो शैल ने कह दिया—"अरे रामू, वो फल वाली 'डिश' तो रह ही गई! तू बड़ा भोंदू है। बातों में मुझे ख्याल नहीं आया और तूने वह 'डिश' ही गोल कर दी!" और इसके बाद उसने भइया की ओर देखते हुए कहा—"दादा बात यह है कि खाना खाने के बाद हम लोग फलादि दूसरे रूप में जाकर लेते हैं। मगर नीचे मैदान के शहरों में भोजन के साथ ही लेने की प्रथा है, यह भूल इसी लिए हो गई।"

रामू फलों की 'डिश' सबके आगे रखने लगा। भइया बोले—"यह 'डिश' अब तुम सतीश को बैठक में जाकर दे आना।" मगर फलवाली 'डिश' जब मेरे सामने आई तो मैंने उसे ढक कर रखवा दिया और कहा—"अब इसको तुम मुझे चार बजे देना। इस वक्त मैं नहीं खाऊँगा।"

बहुत दिन से मेरा डायरी लिखना छूट गया है। इसलिए जब भाभी और भइया आराम करने लगे और मुन्ना सो गया, तब मैं डायरी लिखने

लगा :

"सभी दिन एक से नहीं जाते ! कभी दुख और क्लेश; कभी सुख और आनन्द; सबेरे कुछ, सन्ध्या को और कुछ; रात को सोने से पहले मन पर उतरनेवाले प्रभावों में और भी बहुत कुछ ! जब सोचता हूँ कि इन विभिन्न अवस्थाओं में भी मनुष्य तो एक ही रहता है, पर परिस्थितियों के नाना चक्र उसे अपने ढंग से घुमाते, भगाते, नचाते और रुलाते रहते हैं।...कितनी यात्रा तय कर आया हूँ, कितनी अभी शेष है, नहीं जानता ! स्वप्न कितने जीवन में चरितार्थ हो पाते हैं और कितने मार्ग में अधूरे ही छूट जाते हैं, कौन जानता है ! जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी हमसे कुछ कह ही जाती है।—भले ही हम उसके आन्तरिक मर्म को ठीक समय पर ग्रहण न कर पाएँ !...फलों की वह तश्तरी जो मैंने चार बजे चाय के साथ देने के लिए अलग रखवा दी थी, शैल ने उसे उस समय, बेकार समझ कर, माली की छोकरी सुन्दरिया को दे दी थी।...जो भाग वास्तव में मेरे लिए निकला था, वह शायद नियति की दृष्टि में, न्यायतः मेरा था नहीं ! इसीलिए मैं उसे प्राप्त करने से भी वंचित रह गया !

"आज और भी एक बात हुई। अविनाश ने भइया से एकान्त में भेंट की। लगभग दो घण्टे वह उनसे बातें करता रहा और उसने उनको यह स्पष्ट बता दिया कि 'सिविल-मैरिज' करने के लिए मैं मना नहीं करता, पर उस दशा में श्रीमती विश्वास अपनी जायदाद का कोई भाग न्यायतः न पा सकेंगी। इसके लिए उचित तो यह होगा कि जिस सम्पत्ति पर उनका इस समय पूरा अधिकार है, उसको वे जल्दी-से-जल्दी बेच डालें। यह बात मैं आपके हित में कह रहा हूँ और सच्ची बात तो यह है कि यह विचार ही मेरे मन में उत्पन्न न होता अगर आप हमारे साथ सहयोग करके सम्मिलित और संगठित रूप से विमल विश्वास को बेदाग छुड़ाने का वचन न देते।

"इस विषय को जितनी दूर तक सोचता हूँ, यही सही जान पड़ता है कि यह सारा जगत एकमात्र व्यावसायिक सिद्धान्त पर बना हुआ है। 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' का ही चारों ओर प्रभाव दिखलाई पड़ता है।—और यह बात तब और भी प्रामाणिक बन जाती है, जब मैं यह देखता हूँ कि अगर शैल ने मुन्ना के नाम 'विल' करने की बात न कही होती, तो भाभी के मन में मेरे इस पवित्र लग्न-बन्धन का विचार ही कदाचित न उत्पन्न होता। यहाँ मैं भाभी के ऊपर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगा रहा हूँ। मैं तो केवल उस विचारसरणि की ओर संकेत कर रहा हूँ जो सर्वथा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है।

"अब सब लोग सो गए हैं और रात के बारह बज रहे हैं। मेरे मन में आता है कि जरा शैल को टटोलूँ जाकर, कि उसे नींद आ रही है या नहीं!"



: ३२ :

सोचता तो मैं यही था कि अब विमल विश्वास से कभी नहीं मिलूँगा; पर मनुष्य तो केवल सोच ही सकता है। उसके विचार और निश्चय के ऊपर भी एक महत शक्ति है, जो उसके कर्म पर नियन्त्रण रखती है। जिस समय शैल को खाने के साथ विमल विश्वास ने कोई विष दे दिया था, उसके बाद जब वह हॉस्पिटल में मरणासन्न अवस्था में पड़ी हुई थी, अपराधी को अधिकार से अधिक दण्ड दिलाना ही हम लोगों का एक कर्तव्य हो गया था; किन्तु आज की परिस्थिति बिलकुल भिन्न हो गई है। विमल विश्वास इस दण्ड से यदि छुटकारा नहीं पाता, तो शैल कहीं आत्महत्या न करले, क्योंकि वह अपने ऊपर इस तरह का लाँच्छन लाना कभी पसन्द न करेगी कि वैभव और भोग के प्रलोभन में पड़कर उसने अपने देवर को जेल में पहुँचा दिया। और तब वह अपना पुनर्विवाह भी किसी प्रकार स्वीकार नहीं करेगी। भले ही उसका जीवन मरुभूमि बन जाय! मानता हूँ कि मुक्त कराने के इस कार्य के साथ हम सबकी सांसारिकता का ही विशेष महत्त्व है। किन्तु यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो दो-तीन प्राणियों का जीवन ही बिलकुल व्यर्थ हो जाता है। शैल के साथ मेरे मन का जो योगायोग है, उसको ध्यान से हटा भी दूँ तो इधर शैल और उधर विमल, इन दोनों का जीवन विपत्तिमय तो हो ही जाता है। साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने की लालसा आज जैसी बलवती जान पड़ती है, वह सदा इसी प्रकार शक्ति का पुञ्ज बनी रहेगी, इसको कौन कह सकता है? शैल की सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि उसने अपने आपको जीवन में उठने वाली आँधियों से बचा कर रक्खा है। उसका एक त्याग है और उसके इस त्याग का कम-से-कम मेरे लिए बड़ा महत्त्व है। यह महत्त्व उस समय और भी महान् हो जाता है जब नींद न आनेवाली उस रात में

भी उसने अपने उज्ज्वल आचार-धर्म का ही परिचय दिया है। मुझे पक्का विश्वास है, कि प्रफुल्लबाबू स्विट्ज़रलैण्ड की ओर प्रस्थान कभी न करते यदि वह अपने कठोर संयम का निर्वाह न करती। मेरे आने से एक दिन पूर्व उसने अविनाश को जो दिल्ली भाग जाने के लिए विवश किया था, मैं जानता हूँ, वह भी उसके संयम का ही परिणाम था। रह गई मेरी बात, सो वही तो मुझे यह सब सोचने के लिए विवश कर रही है। मैं उन परिस्थितियों से अपने आपको कैसे पृथक कर सकता हूँ, जिनके साथ मेरे जीवन का रागात्मक सम्बन्ध है। अगर वह दोषी है, तो दोषी मैं भी हूँ। यही बात मेरे लिए यदि दुर्बलता की है, तो उसके लिए भी है। मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि मैंने हूँ, उसे उन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से बचाया है। अगर मैंने बचाया है, तो उसने भी मुझे बचाया है। संयम की रक्षा में हम दोनों का समानरूप से अधिकार है। और इसीलिए वह मेरे अभिमान और गौरव की वस्तु है।

विचारों की इसी टकराहट ने मुझे विमल विश्वास से मिलने के लिए विवश कर दिया। मैं उससे मिला और प्रेम से मिला। विमल विश्वास वास्तव में बहुत दुखी था, पश्चात्ताप से उसका सिर, उसका मस्तक ऊपर उठता न था। उसने अपना मनोभाव अपना दुःख बहुत थोड़े शब्दों में प्रकट किया। हिन्दी वह शुद्ध बोल नहीं पाता था, इसलिए उसने अंगरेजी में जो कुछ कहा उसका आशय यह था : मैंने जो कुछ किया, धन के लोभ में किया। मुझे उसका बहुत दुःख है। आप जिस तरह चाहें, मेरे साथ व्यवहार कर सकते हैं। आपने जो कुछ किया, वह आपके लिए बिलकुल उचित था। मुझे इसके लिए आपसे कोई शिकायत नहीं। शिकायत मुझे अपने से है, लेकिन सवाल यह है कि अब मैं उस पाप से बच ही कैसे सकता हूँ? जेल में दस-पाँच बरस के लिए मैं चला भी जाऊँ, या अगर मैं मर भी जाऊँ, तो क्या आपको और मेरी भाभी को कोई दुःख न होगा? क्या सुख, शान्ति के साथ

आप लोग अपना जीवन बिता सकेंगे ? आप यह न समझिए कि केवल स्वार्थ के भाव से मैं ऐसी बात कह रहा हूँ ! आप यह भी न समझिए कि अब चूँकि मैं मजबूर हूं, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ । मुझे भाभी से जो शिकायत रही है, वह यही तो थी कि उनका मुझसे अलग होकर यहाँ रहना हमारे परिवार की मर्यादा के विरुद्ध है । पर, जिन कारणों से वे मुझसे अलग रहना चाहती थीं, उनके सम्बन्ध में मुझको पूरा-पूरा ज्ञान भी तो न था । दुनिया जो कुछ कहती है, जो सन्देह करती है, मैं उसके प्रभाव से बच ही कैसे सकता था ? इधर मुझको जो यहाँ रहने और बराबर आने-जाने का अवसर मिला, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उसकी बदनामी करनेवाले वही लोग हैं, जिनको भाभी ने अपनी सम्मान-रक्षा के नाम पर लात मार कर ठुकरा दिया है । मैं आपसे पूछता हूँ कि इन बातों का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मुझे इस घटना से पूर्व मिला ही कब था ? आदमी अपने समाज को देख कर चलता है । मैं भी सुनी-सुनाई बातों के आधार पर चलने लगा हूँ । बस, इसी का मुझे दुःख है और यही मेरी उस प्रतिक्रिया का मूल कारण है जो आज पाप बन गई है । मैं साफ़ कहना चाहता हूँ कि अगर भाभी अब अपना विवाह नहीं कर लेतीं, तो उनका मेरे साथ ही मर जाना अच्छा है । मैं उस परिवार का एकमात्र उत्तराधिकारी हूँ, जिसकी नारी सम्मान साथ जीती है और सम्मान के साथ मरती [redacted] । अन्त में मुझे एक ही बात का सुख है और गौरव भी है कि पाप होते हुए भी इस घटना ने उनके पवित्र रूप का मुझे परिचय दिया है ।—और इसी घटना ने आप जैसे मर्यादा-शील व्यक्ति को मुझसे मिलाने का अवसर दिया है ।···अगर आप भाभी के साथ 'सिविल मैरिज' करलें, तो मुझे फिर कोई शिकायत न होगी, चाहे इस दण्ड से मुझे छुटकारा मिले, चाहे न भी मिले । विवाह का सारा खर्च मैं अपनी ओर से उठाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ ।

एक बात और है, और उसे मैं बिलकुल साफ़ कर देना चाहता हूँ कि ब्याह कर लेने के बाद न्याय तो मेरी जायदाद की एक पाई भी उनको नहीं दे सकता, मगर मैं अपनी जायदाद का, अपने भाई के हिस्से का आधा भाग उन्हें ब्याह से पहले ही दे दूँगा, चाहे वह 'कैश' ले-लें, चाहे 'काइण्ड' में ! और मैं इसकी लिखा-पढ़ी के लिए अभी, इसी समय, तैयार हूँ ! बतलाइए अब मेरे लिए आप क्या कहते हैं ?"

उसका यह वक्तव्य समाप्त हुआ ही था कि जिस कमरे में वह बैठा हुआ था, उसके विभाजन की खिड़की यकायक खुल गई और मैंने देखा कि मेरे सामने खड़ा हुआ अविनाश बोल उठा—"वाह ! विमल बाबू, आपने अपनी बात जिस सुन्दर ढंग से रक्खी है, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ ! अब आपको और कुछ कहने की जरूरत नहीं है। सतीशबाबू से इस सम्बन्ध में हमारी काफ़ी बातचीत हो चुकी है। अब मैं यही चाहता हूँ कि आप लोग प्रेम से हाथ मिला लें और निश्चित कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ें !"

अविनाश की बात समाप्त होते ही भाई साहब तुरन्त वहाँ आ गए और कुर्सी ग्रहण करते हुए बोले—"आपने अभी इस मामले में जो बातें कहीं उन्हें मैं चिक के बाहर खड़ा हुआ सुन चुका हूँ और उनसे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आपकी राय में दोष आपका नहीं, परिस्थितियों का है ! यह बात सही है, यह भले ही विवाद का विषय हो, किन्तु आपने जिस भावना का परिचय दिया है, उससे मैं सहमत हूँ। पहले हम अपराध के विषय में आपका मूल-भाव जान लें और तब आगे बढ़ें तो अधिक उत्तम होगा !"

विमलबाबू बोले—"एग्रीड !"

भाई साहब ने पूछा—"तो आपका इरादा यह बिलकुल पक्का था कि भाभी को आज समाप्त कर डालना है। और उसका कारण यह था कि आपको उनके चरित्र पर पूरा सन्देह था। बस यही बात

थी न ?"

"ओ एस, ओ एस, दैट इज राइट !"

"तो आप यह मानते हैं कि भाभी को मार डालने के बाद आप पूरी तरह बच जाएँगे, इसका भी आपने पूरा प्रबन्ध कर लिया था ?"

"ऑं, बात टीक ऐ !"

"तो इसके लिए आपने पहले से सब-इंसपेक्टर पुलिस और चीफ़ इन्चार्ज ऑफ द हॉस्पिटल को भी अपने साथ मिला लिया था ?"

"बात तो ये भी टीक ऐ···बट दिस इज ए कन्फ़ेशन इन अदर वर्ड्स···बिफ़ोर द ऑर्क बिशप।"

इस पर भाई साहब कुछ मुस्कराए और बोले—"आपको बुरा लगता हो, तो इस तरह के प्रश्न मैं आपसे न करूँ ? लेकिन एक बात मैं आपसे कह देना चाहता हूँ साफ़-साफ़ कि जो आदमी किसी की हत्या इसलिए करता है कि इसके द्वारा मेरे खानदान की बदनामी होती है, उससे मैं यह पूछना चाहता हूँ कि उसी आदमी को मरवा डालने में उसके खानदान की बदनामी नहीं होती ? आप समझते हैं कि उसकी कीर्ति बढ़ जाती है ? मतलब यह है···" भइया ने जरा नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—"कि अपनी नैतिक रक्षा के लिए किसी व्यक्ति से अपना निकट सम्बन्ध बना लेना आपकी दृष्टि में पाप है और उसकी हत्या कर डालना पुण्य है ? ख़ूब विमलबाबू आपकी हिम्मत की मैं दाद देता हूँ ! अच्छा, ठीक है, अब एक बात बताइए, कि यह भाई साहब की मृत्यु होने के बाद भी जो आपने अब तक अपना विवाह नहीं किया, इसमें आपका क्या इरादा रहा है ?"

"सो यू आर डाउटिंग माई नोबुल कैरियर ! डू यू थिंक दैट आई वाज ऐन ऐडमायरर आफ़ माई ओन भाभी ? स्ट्रेंज !"

भाई साहब विमल विश्वास के इस उत्तर पर हँस पड़े और बोले—"आप क्या हैं और क्या नहीं हैं, यह मैं कुछ नहीं जानता, लेकिन एक

बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि भाई साहब का शान्ति-संस्कार कर लेने के बाद किसी दिन क्या आपने अपनी भाभी के साथ एक ही थाली में भोजन किया था ?"

भाई साहब के इस प्रश्न ने विमल विश्वास के चेहरे पर एक कालिमा-सी पोत दी और वे बिलकुल अप्रतिभ हो गए, और बोले—"हू कैन डेयर टु से लाइक दिस ? आय विल किल हिम !"

उसी क्षण भाई साहब ने सामने रक्खी टेबिल की घण्टी पर अँगुली रख दी और रामू तत्काल भीतर आ गया।

तब उन्होंने रामू से पूछा—"अभी कुमार साहब ने मुझको बतलाया कि भाभी मुझको सदा से बहुत प्यार करती रही हैं।"

इतने में विमल विश्वास बोल उठे—"मैंने तो ऐसा नेंई कहा, आप जूट क्यूँ बोलटा ऐ ?"

भाई साहब ने तपाक से और कुछ ज़ोर से भी जवाब दिया—"चुप रहिए, जब मैं आपसे पूछूँ तब जवाब दीजिएगा ! हाँ राम, इनका कहना है कि भाभी तो बहुत पहले से हमको चाहती रही हैं। यहाँ तक कि हम लोग एक ही थाली में खाते रहे हैं। तुम सच-सच बतलाओ, यह बात सही है ?"

रामू इस परिवार का बहुत पुराना नौकर है। वह भइया के इस प्रश्न पर बहुत सिटपिटा गया। तब भइया ने कहा—"देखो, रामू ! तुमने एक चौपाई सुनी है कि 'हित अनहित पशु-पक्षी जाना' ?"

रामू के मुँह से निकल गया—"सुनी है, सरकार !"

अब भइया बोले—"तो तुम इतना समझ लो रामू कि अगर इन्होंने तुमको जवाब भी दे दिया, तो मेरे यहाँ भी तुम बहुत सुखी रहोगे। अब यह बताओ कि क्या ऐसा कभी हुआ है ?"

रामू के मुँह से निकल गया—"सरकार ! ठीक ही कहते हैं !"

अब भइया ने कहा—"बस, एक बात मैं तुमसे और पूछना चाहता

हूँ ! जिस दिन तुमने इन दोनों को एक थाली में खाना खाते देखा था, उसके दूसरे ही दिन विमलबाबू यहाँ से चले गए थे ?"

रामू ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"नहीं सरकार, दूसरे दिन नहीं, तीसरे दिन···।"

"अच्छा" भाई साहब बोले—"ठीक है, पर अभी इस बात के साथ मिली हुई एक और बात छूटी जा रही है, वह यह कि उस रात श्रीमती विश्वास और इन विमल विश्वास के बीच कोई कहा-सुनी, दंगा-फ़साद, लड़ाई-झगड़ा और हाथापाई भी हुई थी ?"

इतने में विमल विश्वास उठ कर खड़े हो गए और उत्तेजना के स्वर में बोल उठे—"आय एम नाट सपोज्ड टु हियर ऑल दीज़ रबिश थिंग्ज़ ! यू कैन डू एनी थिंग यू लाइक बट फॉर गाड सेक डोण्ट ट्राई टु एक्सपोज़ दीज़ वेरी सीक्रेट्स आफ़ माई कैरेक्टर !"

इस पर रामू कुछ कहने ही जा रहा था कि विमल विश्वास ने झट से आगे बढ़ कर रामू के मुँह पर जोर का एक तमाचा जड़ दिया और साथ ही कह दिया—"बदमाश ! दुष्ट ! पाजी ! गदा ! हज्जा मेरे सामने से, निकल जा कमरे से ! कबी जो इदर आया, तो गला गोट दूँगा।"

भाई साहब उठ कर खड़े हो गए और अविनाश की ओर देखते हुए बोले—"कहिए, अविनाश बाबू, क्या ख्याल है आपका ! यही वह आदमी है जो अभी यह कह रहा था कि श्रीमती विश्वास 'लूज़ कैरेक्टर' की नारी है, अब मैं आपही से पूछना चाहता हूँ कि चरित्र-दोष इस शैतान में है या श्रीमती विश्वास में ! आप तो इसके बड़े हिमायती बनते हैं ! आप चाहते हैं कि ऐसे आदमी को क्षमा कर दिया जाय ? देख लिया आपने सारा तमाशा ! मैं ऐसे आदमी को क्षमा करने के बिलकुल पक्ष में नहीं हूँ।"

अविनाश भी उठकर खड़ा हो गया और सिर नीचा किए हुए बहुत

धीरे से बोला—"ख़ैर, जो कुछ भी हुआ, उस पर अब परदा डालिए और जो परिस्थिति सामने है, उसको सुलझाने की कोशिश कीजिए।"

भाई साहब ने इस पर उत्तर देते हुए कहा—"कोशिश समाप्त हो गई। मेरे मनोराज्य में ऐसे आदमी के लिए क्षमा नहीं है। अब इस सम्बन्ध में कोई बात न होगी। जाइए अपना काम देखिए!" और उनके इस कथन के बाद में उनके पीछे-पीछे चला आया। भइया के इस रुख पर मैं भी काँप उठा था और सच बात तो यह है कि मैं उनके इस कठोर व्यवहार पर मन-ही-मन बड़े गर्व का अनुभव कर रहा था। अविनाश बाबू विमल विश्वास के कमरे में रुक गए थे और भइया शैल के पास पहुँचते ही बोले तो कुछ नहीं, पर यकायक हँस पड़े और शैल की ओर देख कर बोले—"सुनो शैल, तुम्हारे काम की बात है।"

शैल बोली—"दादा, मैं तो आपके सामने बच्ची हूँ, इसलिए आपकी प्रत्येक बात को मैं आज्ञा और उपदेश मानती हूँ, और मानती रहूँगी।"

इसके उत्तर में भइया ने कहा—"मैं तुमसे केवल एक बात कहना चाहता था और वह यह कि अगर मेरे कोई बहन होती, बेटी होती, तो आज मैं उसको भी उतना ही प्यार करता, जितना अब तुमको करने लगा हूँ। आज विमल बाबू की बात-चीत से तुम्हारे जिस पवित्र रूप का परिचय मिला है, उसकी मैं सराहना करता हूँ। मुझे आशा है, कि मैं तुमको आगे भी सदा इसी भाव से प्यार करता रहूँगा! ... अरे सतीश, जाओ देखो, खाना तैयार हो गया हो, तो तुम लोग सब खा पी लो। मैं तो सिर्फ़ दूध लूँगा।"

शैल बोल उठी—"दादा, यों तो आपकी व्यवस्था में मैं कोई हेर-फेर करने का साहस नहीं करती, लेकिन मैंने आज ताहरी बनवाई है और मैं सोचती हूँ कि आप थोड़ी-सी ले लें, तो बड़ा अच्छा हो।" इतने में मैंने देखा—भाभी आ रही हैं और मुन्ना उनका हाथ पकड़े हुए कह रहा है—"हम सब खा लेंगे!"

भाभी पूछ रही हैं—"तुम सब खा डालोगे और चाचा जी को नहीं खिलाओगे ?"

तो मुन्ना जवाब देता है—"चाचा जी तो हमको मिठाई ही ज्यादा खिलाते हैं और फिर साथ में वह भी खाने लगते हैं। चावल, आलू, नमकीन खाते हुए हमने उनको कभी देखा नहीं !"

इस पर भाभी हँसती-हँसती भीतर आ गईं और भइया से बोलीं—"शैल ने आज ताहरी बहुत अच्छी बनवाई है। मुन्ना तारीफ़ कर रहा है। पर तुमसे क्या कहूँ ? तुम तो हमारी बात कभी मानते ही नहीं।"

इतने में भइया तो कुछ नहीं बोले, लेकिन शैल बोल उठी—"दीदी, पहले भले ही न खाते रहे हों, मगर आज तो दादा को मैं थोड़ी सी तहरी खिला के ही मानूँगी। अब दीदी एक बात सुनकर तुमको बड़ी ईर्ष्या होगी।"

भाभी बोल उठीं—"ईर्ष्या ? तुम क्या कह रही हो शैल ?"

तब शैल ने उत्तर दिया—"ईर्ष्या की ही बात है दीदी ! दादा ने अभी कहा है कि अगर मेरी कोई छोटी बहन होती या मेरी जितनी उमर की कोई लड़की ही होती, तो मैं इतना ही प्यार उसको भी करता, जितना अब तुमको करता हूँ, तो अब मेरे लिए उनके मन में तो बहुत बड़ा प्यार पैदा हो गया है। बोलो, क्या अब भी तुम मेरे भाग्य से ईर्ष्या नहीं करोगी ?"

अब भाभी बोल उठीं—"मुझको तो भूख लगी है। इसलिए तुम और सतीश और वे जल्दी खाना खा लो, तो फिर मेरी भी बारी आ जाय !"

शैल ने हँस कर उत्तर में कह दिया—"मगर हम लोगों के साथ बैठकर क्या तुम खाना न खाओगी ?"

इस पर भाभी हँस पड़ीं और मेरी ओर देखने लगीं। तब मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी तो भइया की छोड़ी थाली में ही सदा खाना

खाती रही हूं।"

मेरा इतना कहना था कि शैल फ़र्श पर बैठ गई और भाभी के पैरों की ओर हाथ बढ़ाती हुई बोली—"तब आओ दीदी, मैं तुम्हारे चरणों की रज से अपने भाग्य का गौरव बढ़ा लूं।" और इतना कहकर शैल ने सचमुच भाभी के पैर छू लिए।



: ३३ :

"यह सब कुछ नहीं, अब तो बहस उन्हीं आधारों पर होगी जो इस घटना के तथ्यों को काट-काट कर बिखेर देंगे !" रुचिनाथ बाबू कह रहे थे कि कुछ सोचते हुए भाई साहब ने कहा—"हूँ, तो अब मेरी बात सुन लीजिए। डी० एस० पी० साहब ने जब हॉस्पिटल में जाँच की थी, तब उन्होंने रक्त के बहाए जाने का क्या प्रमाण पाया था ?"

इस पर एक मौन।

"और मान लीजिए, उन्होंने ऐसा कोई प्रमाण पाया भी हो तो, इससे क्या होता है, हॉस्पिटल है ! घावों का धोना, आपरेशन, लाल दवाओं का धोवन आदि !" भाई साहब ने कहा—"इसलिए यह सब सोचना बेकार है। और इस बात का क्या सबूत है कि शैल को जहर ही दिया गया ? डाक्टर साहब अपने बयान में कहते हैं कि उनके पेट में एक फोड़ा था और जब शैल उसका भयानक दर्द सहन न कर सकी, तो उसने कोई ऐसी दवा खा ली जिससे उसका वह फोड़ा भीतर-ही-भीतर फूट गया। और इसी से पेशाब के रास्ते से वह बह गया। रह गई बेहोशी, सो यूँ भी वह काफ़ी दुर्बल है और आप जानते हैं कि कमज़ोर आदमी जब कोई झटका खा जाता है, तो मामूलीतौर से ही उसे मूर्छा आ जाती है।"

रुचिनाथ बाबू बोले—"यह भी सही है, मगर एक कागज़ पर जो पाउडर मिला है, उसकी मेडिकल-रिपोर्ट तो यह कहती है कि वह 'प्वायजन' था और उससे फ़ौरन ही पेट में जख़म हो गया होगा। इस सम्भावना के लिए आपके पास क्या जवाब है ?"

भाई साहब बोले—"इधर देखिए, रुचिनाथ बाबू, सम्भावना की तो बात कीजिए मत। कोई पक्की बात हो, तो बताइए। पाउडरवाला कागज़ जब परीक्षा करके देखा गया, तो क्या उससे सिद्ध हो गया कि क्या वह 'प्वायजन' था ? सम्भावना तो इस बात की भी है कि पाउडर

का वह कागज हवा के वेग से, आँधी से, कहीं बाहर से भी उड़ता उड़ता भीतर चला आया हो। आपको अगर विश्वास न हो तो इस बँगले के सारे दरवाजे एक बार खोलवा दीजिए और फिर सबेरे मुआइना करने के लिए मेरे साथ आ जाइए।"

रुचिनाथ बाबू बोले—"बात तो आप कुछ सही कह रहे हैं।"

"कुछ नहीं साहब, बिलकुल सही कह रहा हूँ ! मैं हमेशा सही बात ही कहता हूँ !" भाई साहब बोले—"अच्छा साहब नौकरों के बयानों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि खाना खाने से पहले दोनों में काफ़ी लड़ाई हो चुकी थी। यहाँ तक कि गाली-गलौज भी उनके कान में पड़ा था, तब क्या ऐसा नहीं हो सकता कि विमल विश्वास से चिढ़ कर उसने स्वयं ही कोई ऐसा प्रयोग कर डाला हो ! क्या कहते हैं आप ?"

रुचिनाथ बाबू कुछ सोचने लगे—"मगर यह बात तो शैल के ख़िलाफ़ जाती है।"

भाई साहब ने उत्तर दिया—"बला से, शैल के ख़िलाफ़ तो कोई मुकदमा है नहीं। मुकदमा तो विमल विश्वास के ख़िलाफ़ है ! और हमारा तो यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम विमल विश्वास के अपराध में कोई बड़ा सन्देह उत्पन्न कर दें।"

"हाँ, यह भी आप ठीक कहते हैं !"—रुचिनाथ बाबू बोले।

"अच्छा।" भाई साहब बोले—"और सुनिए, झगड़ा हो जाने के बाद शैल का विमल विश्वास के विरोध में कोई भी चार्ज लगाना क्या उसकी प्रतिहिंसा के लिए स्वाभाविक नहीं है ? आप यह साबित नहीं कर सके कि जहर किसने दिया। आप यह भी साबित नहीं कर सके कि किस किस्म का जहर दिया और आप यह भी नहीं साबित कर सके कि रक्तश्राव को शान्त करने के लिए डाक्टर ने जो 'प्रिस्क्रिप्शन' दिया, वह जहर को निर्मूल करने के लिए था, वह तो वास्तव में 'ब्लीडिंग' बन्द करने के लिए था। और भी एक बात है कि न तो यह साबित है कि

कि शेल के पेट का कोई भाग कट जाने से 'ब्लीडिंग' हुई है, न यह साबित है कि उनके पेट में कोई बच्चा था, जिसके गिराने के कारण 'ब्लीडिंग' हुई है, न आप यह साबित कर सके कि फोड़े के फूट जाने के कारण 'ब्लीडिंग' हुई है, फिर आखिर 'ब्लीडिंग' हुई कैसे ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि 'ब्लीडिंग हुई ही नहीं ! सब 'फ़ार्स' है । और जो विमल विश्वास अपनी भाभी से लड़ाई-भिड़ाई करता है, वह इतना बेवकूफ़ है कि कुछ ही घण्टों के बाद वह उसको 'प्वायज़न' दे देगा ? बात कुछ आपके समझ में आती है ?"

रुचिनाथ बाबू बोले—"हाँ ऐसा तो जरा कम ही मुमकिन है ।"

"कम, आप इसे कम कहते हैं ? अरे साहब, यह बिलकुल नामुमकिन है !" भाई साहब बोले—"और एक नई बात सुनिए । आज मुझको अभी मालूम हुआ है कि विमल साहब अपनी भाभी पर तबीयत भी रखते थे । ऐसी हालत में जबकि उनकी हैसियत एक प्रेमी की हो जाती है, तब अपनी उसी प्रेमिका को, जिसको आगे चलकर वह 'वाइफ़' के रूप में 'एडाप्ट' कर लेने की पूरी-पूरी कोशिश में लगे हुए हैं, तब वह इतने अन्धे हैं कि उसको जहर पिला देंगे ? आपकी समझ में आता है कुछ ?"

रुचिनाथ बाबू बोले—"क्या बताऊँ गिरीश बाबू, अगर आपके नाम का कहीं से कोई 'लॉ' का सर्टिफ़िकेट मिल जाय, तो आपकी शुमार नामी वकीलों में होते देर न लगे ।"

"जाने दीजिए, इस बेकार की बात को ।" अब भाई साहब ने आगे कहा—"पहली बार मैं बम्बई गया था, तो एक फ़िल्मी प्रोड्यूसर साहब ने भी यही फ़रमाया था कि अगर आप मुझको साल भर का भी टाइम दे दें, और आप मेरे साथ रह सकें, तो मैं आपको (चुटकी बजाते हुए उन्होंने कहा) यूँ, चुटकियों में डाइरेक्टर, बना दूँ !—और बताऊँ ? एक डाइरेक्टर साहब संयोग से मेरे मित्र भी हैं । उनका कहना यह है

कि मैं अपनी अगली ही 'पिक्चर' में आपको 'हीरो' का 'चान्स' दे सकता हूँ।—बोलिए मंजूर है ? मगर शर्त यह है कि 'एग्रीमेण्ट' के अनुसार आपको जो बीस हजार की रकम मिलेगी, वह सब मेरी होगी। कुछ समझ में आ रहा है ?"

रुचिनाथ बाबू मुस्कराने लगे। बोले—"खैर, अब मुझे इस बात पर पूरा भरोसा हो गया कि इस केस की अपील का जो मसविदा मैं बनाऊँगा वह अवश्य ही अपील के 'फ़ेवर' में जाएगा और यह मसविदा मैं आपको तीन दिन के अन्दर—(ड्यूली टाइप्ड)—दे दूँगा।"

भइय बोले—"अच्छी बात है।"

इधर ये बातें चल रही थीं और इसके बाद मैं जो कमरे से बाहर निकल कर बिमल के कमरे की ओर बढ़ा, तो क्या देखता हूँ कि वह चारपाई पर लेटा हुआ रो रहा है। अविनाश उसके पास बैठा है और विमल द्रवित वाणी में कह रहा है—"ही हैज़ पेण्टेड ए वेरी डार्क ब्लेक इंक आन माई फ़ेस ! एण्ड ही हैज़ फुल्ली इस्प्वायल्ड माई करेक्टर एंड कैरियर ऐज़ वेल ! आय विल डाई पाज़िटिवली टुनाइट !"

और अविनाश टेबिल पर रक्खे हुए पेग को गट···गट गले के नीचे उतारता हुआ कह रहा था—"तुम पागल हो गए हो बिलकुल। तुम उनके नेचर को समझते नहीं हो—बिलकुल। एक बार तुमको उनके पैरों पर सिर रख देना चाहिए था और बस तुम्हारा बेड़ा पार हो जाता। मगर तुम तो हो उल्लू, जो अब भी अपनी शेखी नहीं छोड़ रहे हो। लो, इसी बात पर यह पेग चढ़ा तो लो प्यारे और चलो अभी हमारे साथ ! मिनटों में म तुम्हारा काम बनाए देता हूँ। लो पियो···अरे पी भी ले···एस···एस···अब चल दो अभी ! और देखो रूमाल से मुँह साफ़ कर लो। मगर ठहरो, यह पान खाओ और यह सौंफ़ लो ! मगर तुम्हारे जैसे भोचप्पा मुँह के लिए दो पान में होगा क्या ? लो, दो पान और ले लो, चलो···"

और इस प्रकार जब अवि… विमल को मेरे कमरे में ले आया तो रुचिनाथ बाबू कह रहे थे "… आप जायदाद में एक पाई चाहते हैं, न इस 'मैरिज' के सिलसि… डावरी' या खर्चे की मद में टका लेना चाहते हैं और इतने पर … आप विमल विश्वास को बेदाग़ मुक्त करा देने का पूरा विश्वास दिला रहे हैं, तब तो आप सचमुच आदमी नहीं, देवता हैं ?"

इतने में अविनाश अन्दर आ गया और विमल विश्वास सचमुच भइया के पैरों में औंधा गिर पड़ा। भइया ने फ़ौरन उसको उठा लिया और प्रसन्न मुद्रा में बोले—"बहुत ज्यादा चढ़ा ली है आज शायद तुमने ! ख़ैर, कोई बात नहीं ! जाओ, मैंने तुमको क्षमा किया !"

विमल विश्वास—"यू आर ए वेरी काइण्ड हार्टेड एण्ड मर्सीफुल मैन रादर लाइक गॉड टु मी प्लीज़ सेव माई लाइफ़ एण्ड गिव मी शैडो ऑफ़ योर पायस हैण्ड। आय शैल बी ग्रेटफुल टु यू फ़ार होल ऑफ़ माई लाइफ़ !"

भाई साहब मुस्करा उठे और बोले—"अच्छा, अच्छा, जाओ, मौज करो। मगर अब कभी भी मेरे सामने पीकर न आना।…जाओ, अविनाश ले जाओ। तुमसे भी मुझे कुछ कहना है, पर आज नहीं, कल कहूँगा।"

जब विमल विश्वास और अविनाश दोनों चले गए, तो शैल आकर बोली—"आप लोगों का यह नाटक कभी ख़तम भी होगा ?"

भइया बोल उठे—"देखो शैल, नाटक तो यह अब उस दिन ख़तम होगा, जब तुम्हारे सिर पर पड़ी हुई यह साड़ी कुछ थोड़ी और मस्तक पर आकर पहली बार का अवगुण्ठन बन जायगी।"

शैल अपनी मुस्कराहट न रोक सकी और सिर पर पड़ी हुई साड़ी को थोड़ा आगे खिसकाती हुई भइया के सामने आकर उनके चरण छूने लगी और उस समय मालूम नहीं क्यों मैंने भी उसके साथ ही भइया के

पैर छू लिए।

इस समय भइया के दोनों हाथ हम दोनों के सिर के ऊपर थे और भाभी दरवाज़े के पास खड़ी होकर आशीर्वाद दे रही थीं—"जुग जुग जिए यह जोड़ी। लाओ, मिठाई खिलाओ, इसी बात पर।" और मुन्ना बोल उठा—"चाचा जी, बहुत बहुत ढेर-सी मिठाइयाँ अम्मा ने मँगवा ली हैं और अम्मा कहती हैं कि यह सब कल सबेरे बाँट दी जायँगी, दस बजे।..."

और इसके ठीक साल भर बाद हम कानपुर के 'सिविल-मैरिज' रजिस्ट्रेशन 'आफ़िस' के अन्दर जा बैठे। उस समय हमारे आगे तो भाभी, भइया और मुन्ना था और पीछे अनेक मित्र! सड़क पर बैण्ड बज रहा था। गाड़ी फूलों से सुसज्जित थी और नगर के शत-शत नागरिक हमारे स्वागत के लिए खड़े हुए थे।



: ३४ :

कथा, जीवन के बीच में उत्पन्न होनेवाली प्रवृत्तियों और उनकी अकल्पित किन्तु स्वाभाविक गहराइयों की; कथा मनोभावों के स्थिर—अस्थिर मन्तव्यों और संकल्पों के स्तर-स्तर के चढ़ाव-उतार की; और कथा सम्भावित भविष्य के असम्भावित रूप, छवि, सौंदर्य और उसकी निष्पन्नता की ! यह वर्ष भी बीत गया। अविनाश और रुचिनाथ बाबू के सतत प्रयत्नों और भाई साहब के आत्मीय सम्बन्धों के प्रभाव से विमल विश्वास बिलकुल अपने हो गए ! भाई साहब ने पहले ही कह दिया था कि ऐसा होकर रहेगा। जब-जब विमल विश्वास असफलताओं की आशंका से आतंकित हो-होकर दुखी हो उठता, तब-तब एक भइया का ही आश्वासन उसको सन्तोष देता था।

इसमें एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी सम्मिलित था। अभियोग के दौरान में कभी किसी अवसर पर रुपया कम हो जाता अथवा बैंक से ही रुपया निकालने में देर हो जाने के कारण काम रुकता जान पड़ता, तब भाई साहब तुरन्त उसकी पूर्ति कर देते थे। पर उसके बाद जब विमल विश्वास रुपया ले आते और भइया को देने लगते, तो वे उसे वापस कभी न लेते। सदा उनका यही उत्तर रहता—"ठीक है; रक्खो, रक्खो ! समझ लो कि मुझे मिल गया।" भइया के इस व्यवहार को देखकर विमल विश्वास का सारा अहंकार और दर्प मोम की तरह पिघल-पिघल कर आँखों के रास्ते से आँसू की तरह बह गया था। वैभव और पैसे के पीछे घोर से घोर पाप करनेवाला व्यक्ति यह समझ ही न सकता था कि पैसे के महत्व की इस दुनिया में ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है, जिसके आगे पैसे के लोभ और मोह का कोई मूल्य ही न हो। रात-दिन वह भाई साहब की महिमा के गीत गाया करता था।

विमल के इस परिवर्तन में अविनाश का हाथ पहले तो भूमिका

रूप में ही आया था, सो भी नीतिवश। क्योंकि उसने यही कहा था—"अपना काम निकालने के लिए जो आदमी गधे को भी अपना बाप नहीं बनाता, वह स्वयं भी गधे का बच्चा होता है! फिर गिरीश बाबू तो महा मानव हैं! इसलिए जब तक तुमको दण्ड से मुक्ति न मिल जाय, तब तक तो तुमको उनके चरण धोकर पीते ही रहना चाहिए। बराबर! उसके बाद तुम चाहे जो कुछ करना।" और विमल के समुदाय में ऐसे ही लोगों की अधिकता थी। श्रद्धा और विश्वास के स्थायित्व और अस्थायित्व का उनके आगे कोई विशेष महत्व न था। किन्तु जब विमल भइया के सम्पर्क में आया, तो उसने अनुभव किया—कि मैं तो बिलकुल अँधेरे में था और धीरे-धीरे वह भइया का वास्तविक भक्त बन गया था।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि अविनाश का जीवन भी अब बदल गया था। एक बार जब वह एक होटल में ठहरा हुआ था, तो वहाँ एक घटना हो गई। मैनेजर एक सिंधी था और वह अपनी तीसरी पत्नी के साथ होटल के ही एक भाग में रहा करता था। उसका स्वभाव तो वैसे विशेष बुरा न था, किन्तु उसको शराब पीने की बड़ी बुरी आदत पड़ गई थी। वह जब बहुत पी लेता तब अपनी उस नवभार्या के सम्बन्ध की ऐसी बातें बकने लगता, जो स्वयं उसी की मर्यादा के सर्वथा विरुद्ध पड़ती थीं। अविनाश उन बातों को सुनकर कुछ बहक गया और वह उस होटल में दस-पाँच दिन के लिए कुछ और अधिक ठहर गया। इसका परिणाम स्वयं अविनाश के लिए भी असह्य हो उठा। पहले तो मैनेजर की उस नवभार्या ने उससे मित्रता कर ली; परन्तु एक दिन जब उसे यह मालूम हो गया कि अविनाश आज बैंक से रुपया निकाल कर लाया है और यह रुपया उसका अपना नहीं है, क्योंकि अविनाश वह रुपया विमल विश्वास के लिए लेने आया था तब उसी रात को मैनेजर की उस नवपत्नी ने अपने स्वामी के साथ-

साथ अविनाश को बहुत गहरी शराब पिला दी। जब ये दोनों-के-दोनों एक ही रूम में बेहोश, अंटाचित्त पड़े हुए थे, तब वह किसी नौकर को साथ लेकर सदा के लिए भाग गई। वह कहाँ गई, इसका कुछ पता नहीं चला।

सबेरा हुआ और अविनाश को ऐसा मालूम हुआ कि सूर्यास्त हो गया है। उसके सामने अँधेरा छा गया। कल मुकदमे की पेशी थी विमल विश्वास को अपने बैरिस्टर को रुचिनाथ के द्वारा एक हज़ार रुपया देना था और साथ में यह भी तय था कि अगर बहस पूरी न हुई तो दूसरे दिन भी एक हज़ार रुपया पुनः देना पड़ेगा। इस प्रकार दो हज़ार रुपए यह और पाँच सौ रुपए ऊपरी ख़र्च के, कुल मिलाकर ढ़ाई हज़ार रुपए अविनाश ने अपनी शराब-ख़ोरी के परिणामस्वरूप स्वाहा कर दिए थे। जब अविनाश ने यह सारा हाल मुझको बताया, तब मैंने साफ़ जवाब दे दिया—"मैं कुछ नहीं जानता; तुमने जैसा किया है, वैसा भोगो।"

उसने कहा—"तुम मुझसे रुक्का लिखवा लो और कहीं से भी रुपए का प्रबन्ध कर दो, मगर शर्त यह है कि विमल विश्वास को इसका बिलकुल पता न चल पाए।"

मैंने इस बार भी उससे साफ़-ही-साफ़ कह दिया—"मैं तुम्हारे रुक्के पर विश्वास नहीं करता। क्योंकि मैं किसी शराबी पर विश्वास नहीं करता।"

अब अविनाश रो पड़ा। समय की बात कि यह सारी बातें भइया ने खिड़की पर पड़ी हुई चिक की ओट में खड़े-खड़े सुन लीं। जब अविनाश रो-रो कर गिड़गिड़ाते हुए बोला—"मुझे बचा लो सतीशबाबू! मुझे सिर्फ़ इस बार बचा लो, नहीं तो मैं मर जाऊँगा!" कुछ ऐसी बात हुई कि मुझे क्रोध आ गया और मेरे मुँह से निकल गया—"मैं अख़बार पढ़ते समय केवल एक समाचार पढ़ने के लिए आज अनेक वर्षों से लालायित रहता हूँ और वह यह है कि अब हिन्दुस्तान में एक भी

शराबी का अस्तित्व नहीं रह गया है। इसलिए तुम अभी मर जाओ, तो मुझे बड़ा सुख मिलेगा। जाओ, मरो जाके, निकलो मेरे कमरे से! मुझे शराबियों की शकलों से नफ़रत हो गई है। निर्लज्ज कहीं का! कमीना! रात-दिन इन लोगों के ये किस्से सुन-सुन कर नाक में दम आ गया है। अब तू जाता है कि नहीं यहाँ से?"

मैं बहुत क्रोध में था और उसे जूते की नोंक से ठोकर मारने ही वाला था कि इसी समय चिक का परदा उठा और भइया ने प्रवेश करते हुए कह दिया—"ये तुमने क्या गुलगपाड़ा मचा रक्खा है?"

मैं अभी मुँह खोल भी न पाया था कि अविनाश ने अपनी सारी दुःख-कथा विस्तारपूर्वक भइया को सुना दी। वह फ़र्श पर लोटता हुआ भइया के पैरों पर मत्था पटकने लगा। उसके शब्द थे—"मेरी लाज बचाओ, बचाओ, बचाओ, भइया···तुम सबकी रक्षा करते हो, तो मेरी भी करो, करो, करो!" बस, उसका इतना ही मर्म-निवेदन भइया के हृदय में पैठ गया और वे बोले—"तुम अपनी माँ की लाज की शपथ लेकर आज प्रतिज्ञा करो कि अब कभी शराब नहीं पियोगे और साथ में उन लोगों से भी अपना सम्बन्ध पृथक कर लोगे जो शराबी हैं। चाहे वे तुम्हारे सगे सम्बन्धी हों, अथवा इस राज्य के सत्ताधारी प्रभु और उनके

अविनाश ने प्रतिज्ञा की और उसकी प्रतिज्ञा केवल मौखिक न थी, लिखित थी और जिस में इस घटना के उल्लेख के साथ-साथ ढाई हज़ार रुपए नक़द लेने की स्वीकृति भी थी।

भइया ने रुपए 'सेफ़' से निकाल कर दे दिए और मुझसे कह दिया —"तुम इसके साथ जाओ। देखो, बहुत सावधानी के साथ जाना।" बस उस दिन से अविनाश भी भइया का भक्त बन गया। इस प्रकार शैल का अपना निज का ही जीवन नहीं, उसके इर्द-गिर्द का सारा वातावरण भी अब शुद्ध और परिष्कृत बन गया था।

शैल के साथ केवल एक बात पर भइया का तो नहीं, पर मेरा मत-भेद अब भी बना हुआ था। शैल की दृष्टि से वह वैधानिक था, किन्तु मेरी दृष्टि से भावुकतापूर्ण ! शैल का कहना था "मैं मसूरी का बँगला बेच डालूँगी।" क्योंकि विवाह होने के बाद फिर उस पर उसका कोई अधिकार न रह जायगा। परन्तु मैं इसके पक्ष में नहीं था। मैं लोक-लाज से तो डरता ही था। मैं यह सहन नहीं कर सकता था कि मेरे ही मित्र मुझसे यह कहने का अवसर पाएँ कि तुम्हारी 'वाइफ़' के पास भी रुपए की कौन कमी है ? मसूरी का बँगला बेच कर उसने जो एक लाख रुपया बैंक में जमा कर रक्खा है, उसका सूद ही तुम्हारे खर्च के लिए काफ़ी है। मुझे इसीलिए इस पर आपत्ति थी। पत्नी की सम्पत्ति पर मैं किसी प्रकार का अधिकार नहीं चाहता। वह उसके अपने उपयोग की वस्तु है। यह बात दूसरी है कि कोई भी पतिप्राणा पत्नी अपने उपयोग को पति से पृथक नहीं मानती, किन्तु यह एक ऐसा प्रसंग था कि मैं शैल के साथ जबरदस्ती तो कर नहीं सकता था। मेरे इस मन्तव्य में एक अभिप्राय और था और वह यह कि मसूरी में शैल का एक बँगला, अगर किसी प्रकार बना रह जाय, तो अच्छा ही होगा। हमारे बीच में अविनाश का मस्तिष्क इन मामलों में बहुत तेज़ था। भइया का अनुगत हो जाने के कारण वह अब सब प्रकार से हमारा बन गया था। उसने कहा—"बहुत मामूली-सी बात है। बँगला का बँगला बना रहेगा और तुम्हारी टेक भी रह जायगी।" उसने सुझाया कि बस एक स्टैम्प पेपर मँगवाना पड़ेगा और उसकी रजिस्ट्री करवानी पड़ेगी और शैल को भइया के नाम 'बयनामा' लिख देना पड़ेगा। बात कुछ मुझको जँच गई और 'बयनामा' शैल ने विधिवत भइया के नाम कर दिया। पर यह बात तब तक भइया को नहीं बतलाई गई, जब तक लिखा पढ़ी नहीं हो गई ! अन्त में जब रजिस्ट्री कराने का समय आया, तब भइया को सब कुछ बतलाना ही पड़ा। पर उसका परिणाम यह हुआ कि भइया ने कहा—

"मैं अपनी छोटी भाभी की कोई सम्पत्ति इस प्रकार हरण नहीं करूँगा। मैं यह एक लाख रुपया शैल को दूँगा और शैल को लेना पड़ेगा।"

अब शैल बुलाई गई। भइया बोले—"तुमने यह क्या किया शैल ?"

शैल ने संकोच से नतमुखी होकर उत्तर दिया—"इसमें करने की क्या बात है दद्दा ! मैं जब तुम्हारी हो चुकी हूँ, तब मेरी कोई सम्पत्ति तुमसे अलग रह सकती है ?"

भइया ने उत्तर दिया—"मगर अनुज-बधू के रूप में तुम मेरे लिए बहन और बेटी के समान हो। इसलिए तुम्हारी सम्पत्ति को मैं छू भी नहीं सकता। तुम्हें यह रुपया अपने नाम से बैंक में जमा करना पड़ेगा।"

शैल ने उत्तर दिया—"अब मेरे अपने नाम का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। मेरा कुछ भी अपना अलग से नहीं है। ऐसा ही है, तो मैं यह रुपया मुन्ना के नाम से जमा किए देती हूँ, लाइए दीजिए··· !"

भइया उठ कर खड़े हो गए और बोले—"ऐसा हो नहीं सकता शैल, मेरी आज्ञा तुम को माननी ही होगी !"

यह सब बातें मेरे सामने हो ही रही थीं, इसलिए मैं शैल से कुछ कह न सका। शैल को भइया की आज्ञा के सामने झुकना पड़ा और तब मैं भी कोई विरोध न कर सका। अन्त में बँगले के बयनामे का रजिस्ट्रेशन भी हो गया !

बहुत दिनों से मैंने डायरी को नहीं छुआ था, पर अब मुझे उठाना ही पड़ा। क्योंकि इस घटना के साथ एक घटना का और भी सम्बन्ध है। सम्बन्ध इसलिए है कि कुछ मिनटों का ही अन्तर पड़ा था। तारीख़ एक थी, दिन एक था और समय भी एक ही था। जिस समय रजिस्ट्री में हस्ताक्षर हो रहे थे, उसी समय विमल विश्वास को दण्ड से मुक्त होने का 'जजमेण्ट' सुनाया गया था। दुनिया के लिए उसका कोई

महत्व न हो, किन्तु मेरे लिए तो उसका बड़ा महत्व है। सृष्टि, वैचित्र्य के इतिहास में मैं इसको भी स्थान देता हूँ! एक ओर विमल विश्वास अपने पाप कर्म का प्रायश्चित्त पूरा करता और दंड से मुक्ति पाता है, दूसरी ओर शैल बैंक में एक लाख रुपए से नया एकाउन्ट खोलती है और मैं सोचता रह जाता हूँ, यह दोनों घटनाएँ परस्पर विरोधी होने पर भी ऐसा अद्वैत क्यों रखती हैं? क्या कोई ऐसी बात है कि जैसे संसार के समस्त समुद्रों का जल आपस मे घुला-मिला रह कर सदा ही एकात्मभाव बनाए रखता है, वैसे ही व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन का आनन्द भी क्या अलग-अलग रह कर वास्तव में मिश्रित और एकरस ही बन जाता है? जबकि एक व्यक्ति का आनन्द इस संसार में दूसरे का आनन्द नहीं होता! क्योंकि प्रायः वह दूसरे का दुःख होता है, कष्ट होता है। इसी दुनिया में मैं नित्य देखता हूँ, नित्य सुनता हूँ कि शिशु जन्म लेते क्षण कहने लगता है, बोल उठता है, विस्मय के साथ—"मैं कहाँ आ गया, मैं कहाँ आ गया?" और उसकी माँ मृत्यु के घाट उतर कर, चाहे मूकभाव से ही सही, कह उठती है—"मैं कहाँ जा रही हूँ, यह मैं नहीं जानती, लेकिन मैं जा रही हूँ, मैं जा रही हूँ!"



: ३५ :

छिपाने योग्य बात हो, तो उसको छिपाऊँ भी; लेकिन जो जीवन का अगाध दुःख है, उसको कैसे छिपाऊँ ? आनन्द हो, सौख्य हो, तो उसे पचा भी डालूँ, लेकिन जो वेदना मन की अपार है, उसे कैसे पचाऊँ ? इसलिए आज उसे कहे ही डालता हूँ !

इन पंक्तियों का सम्बन्ध एक केवल निज के जीवन के साथ ही होता, तो भी इन्हें न लिखता, लेकिन जो पीड़ा सार्वजनीन है, सार्वभौमिक है और सर्व कालीन है, उसे मैं छिपा नहीं सकता ! शैल के साथ मेरा विवाह हो गया। कई दिन तक सम्बन्धियों और मित्रों, परिचितों और व्यवहारियों, सार्वजनिक क्षत्र के अधिनायकों और राजकीय अधिकारियों के अलग-अलग प्रीति-भोज चलते रहे। बैण्ड और शहनाई ही नहीं, संगीत समारोह हुए और सजधज के साथ नाटक भी खेले गए। इन सबके बीच शैल का हास-विलास भी चलता रहा। दिन भर और रात को भी नौ-दस बजे तक शैल फूली-फूली फिरती रही। शामियानों, तम्बुओं, कमरों, आँगन और दालानों, छत और छज्जों पर शैल के उत्फुल्ल आनन की शोभा नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, घर भर में डोलने फिरने के नव-नव प्रकारों से भरे दृश्य हँसी और मनोविनोद के छींटे वह सुनती और सँभालती रही और मैंने भी उसको अपना बना कर जो आनन्द मन्दाकिनी अपने जीवन में प्रवाहित होते देखी, उसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। किन्तु इन सबके बाद जब आमोद-प्रमोद की बाढ़ समाप्त हुई और मेरी जीवन सरिता समतल पर आकर साधारणरूप से बहने लगी, तो एक दिन शैल को न जाने क्या हो गया ! मैं ज्यों ही रात को इधर-उधर से घूम कर नौ-दस बजे लौटा, तो घर में प्रवेश करते ही भाभी ने बतलाया—"अरे सतीश, जरा बहू के पास तो जाकर देख, आज उसकी

तबीयत बहुत ख़राब है।"

भाभी की इस बात को सुनकर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे नियति ने तान कर मेरी कनपटी पर एक चाटा जमा दिया है। मैं तुरन्त शैल के पास जा पहुँचा। वह पलँग पर चुपचाप पड़ी हुई थी। बायाँ हाथ उसका आधे मस्तक और एक आँख पर था। सुवासित केश-गुच्छ अब बिखर गया था और वह अपने शरीर के ऊपर एक मुलायम तूश हुए थी। कमरे के दरवाज़े सब बन्द थे। केवल मुख्य द्वार का एक पट और रोशनदान खुले हुए थे। एक खिड़की भी खुली थी, जो दूसरे कमरे से सम्बन्धित थी। सिर की ओर जो खि की बन्द थी, उसका एक किवाड़ अधखुला था। वहाँ धप बत्ती मन्द-मन्द धूम्र शिखाओं के साथ सौरभ बिखेर रही थी। उस नीरव रजनी में पलँग पर चुपचाप पड़ी शैल पिछले सप्ताह की चहल-पहल और मृदुल गुञ्जन का आभास जैसे अब तक दे रही थी।

उसके पास ही मेरा पलँग भी बिछा हुआ था और विगत रातों की अनेक पावन स्मृतियाँ अपनी दृश्यात्मक सत्ताओं को अब तक मेरे मानस पर मूर्तिमान कर उठती थीं। मैं पलँग के ऊपर ही उसके पास बैठ गया और मैंने उससे पूछा—"कैसी तबियत है शैल?"

शैल, बहुत धीरे-धीरे, एक एक शब्द रुक-रुक कर कह रही थी—"तबीयत अभी तक जरूर गड़बड़ थी, पर अब बिलकुल ठीक हो गई है!...मैं कुछ जानती न थी।...और बहुत-सी बातें तो मैं भूल ही गई थी।...ऐसी बातें जो भूलने की नहीं होतीं! मगर...अब...वे...स...ब...इकट्ठी...होकर...मुझे...फिर...याद...हो ... आई ... हैं! मगर...मुझे...किसी...से...कोई...उलहना...नहीं है। ... मगर...मुझको...कुछ हो...जाय, तो...तुम...दुखी न होना!"

शैल का इतना कहना था कि मैंने उसके उसी हाथ को अपने दाहने हाथ में थाम लिया, जो अब तक उसके मत्थे पर टिका हुआ था।

मुझे ऐसा मालूम हुआ, वास्तव में ज्वर बहुत अधिक है। इसलिए उसके कथन में निराशा बोल रही है। मैं शैल को उसी दशा में छोड़ कर तुरन्त फ़ोन पर जा पहुँचा और डाक्टर दास से कह दिया—"देखिए, दास बाबू ! आप कृपा करके तुरन्त चले आइए ! शैल की तबीयत थोड़ी नहीं, बहुत गड़बड़ है ! यहाँ तक कि 'डिलीरियम'-सा मुझे तो मालूम पड़ता है।"

उन्होंने उत्तर दिया—"आप चिन्ता मत कीजिए। मैं इस समय एक ऑपरेशन करने को बिलकुल तैयार हूँ। और मरीज़ के पास जा ही रहा हूँ। मुझे दस मिनट से ज्यादा इसमें नहीं लगेंगे और मैं तुरन्त चल दूँगा।"

डॉक्टर साहब के इस उत्तर को सुनकर मेरा कलेजा धक् से हो गया। मेरे मन में आया कि क्यों न मैं उनसे यह कह दूँ कि डॉक्टर साहब आप इस ऑपरेशन को भी छोड़ दीजिए और जो पैसा आप चाहेंगे, मैं दे दूँगा; मगर तुरन्त मुझे ध्यान आ गया कि हम सब भगवान् के आजानु बाहुओं की छाया के नीचे रहते और पलते हैं। इसलिए मानवता की रक्षा के नाम पर मैं उस रोगी का अधिकार नहीं छीनूँगा।—और 'रिसीवर' मैंने यथास्थान रख दिया।

मैं शैल के पास लौट आया। मैंने उसे सन्तोष देते हुए कहा—"मैंने डॉक्टर साहब को बुलाया है। वह आ रहे हैं। तुम्हारी तबीयत ठीक हो जायगी मिनटों में। चिन्ता मत करो, धीरज रक्खो !"

मेरी बात सुन कर शैल पहले मुस्कराई फिर गम्भीर हो गई। मैं फिर उसके पास ही पलँग पर बैठ गया। इतने में भाभी आ गईं और मैं उठ कर खड़ा हो गया और अलग कुर्सी पड़ी थी, उस पर बैठ गया। भाभी ने कहा—"बैठो रहो, बैठे रहो, संकोच मत करो !" और भाभी फिर उसी स्थान पर, उसी जगह बैठ गईं, जहाँ मैं पहले बैठा हुआ था।

भाभी ने पूछा—"अब कैसा जी है शैल ?"

शैल की आँखें चढ़ी हुई थीं और उसका दायाँ हाथ मस्तक पर रक्खा हुआ था। वह बोली—"अब धीरे-धीरे जी ठीक होता जा रहा है; मैंने उन्हें बहुत समझाया है, बहुत विनय की है, चरणों में सिर रख कर रात की रात मैं रोती रही हूँ···मगर देखो, वह देखो, वो दूर खड़े हुए मुझसे कह रहे हैं कि तुम अब श्रीमती विश्वास नहीं हो, अब तो तुम श्रीमती अविश्वास हो। इसलिए दीदी, तुम मेरे कहने-सुनने का बुरा न मानना और जब मैं चली जाऊँ, तो मुन्ना को भी यह न बताना कि मैं कहाँ चली गई हूँ। तुम उससे कह देना कि मैं मसूरी चली गई हूँ और मैं फिर आ जाऊँगी ! दद्दा कहाँ गए हैं ? क्या वे मुझे आशीर्वाद नहीं देंगे ? कोई दौड़ो, कोई बुलाओ उनको ! जल्दी करो ! यात्रा में देर नहीं की जाती ! ···अरे···यह मैं क्या देखती हूँ ? दीदी, जब तुम मेरे सामने रो पड़ी हो, तब मेरे परोक्ष में अपने जी को कैसे सँभालोगी ? अरे, दद्दा को बुलाओ दीदी, जल्दी करो !"

शैल की इन बातों का भाभी पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह कमरे से बाहर चली गई और मैं सोचने लगा कि इनको बाहर भेज देने के लिए ही शैल ने ऐसा प्रयोग किया है। इसलिए मुझे थोड़ी प्रसन्नता हुई। पर भाभी का बाहर जाना था कि शैल बोली—"देखो सतीश बाबू, मेरे प्रियतम, तुम एक दिन के लिए भी, एक क्षण के लिए भी, दुखी न होना ! तुम यहाँ आओ, मेरे पास बैठो।" मैं इतनी जल्दी सब सोच भी न पाता था, जितनी जल्दी शैल एक के बाद दूसरी बात कह डालती थी। कभी वह पैर पटकती, कभी वह हाथ ही मत्थे पर दे मारती और कभी बड़ी शक्ति के साथ उठ कर भाग जाने की भी चेष्टा करती। एक बार जब वह उठ कर बैठ गई और खड़ी होने को हुई और साथ ही बोली—"मुझे जाने दो, मुझे जाने दो, पकड़ो मत,

हट जाओ, मेरे सामने से शरम करो, शरम करो, देखो वह सामने खड़े खड़े हैं ! क्या कहेंगे वे अपने मन में ? जो कुछ अब तक उन्होंने कह डाला है, कलंक के वे धब्बे ही···ई···मैं नहीं धो पाऊँगी···एक, दो,··· तीन,···चार,···सात जन्म तक !" और इसके बाद जब मैंने उसे लेटा दिया, तो उसकी आँखें झप गईं ! अब मेरी आँखों के सामने से परदा हट चुका था। सारी स्थिति मेरी समझ में आ गयी थी। मैं उस समय ऐसी परिस्थिति में नहीं था कि आँसू मेरी आँखों में आ सकते। कोई रह-रह कर मेरे भीतर से बोल उठता था—"शैल ठीक कहती है ! क्योंकि वह एक पतिप्राणा नारी है। मिस्टर विश्वास उसको बहुत चाहते रहे होंगे ! इतना अधिक, जितना मैं भी नहीं चाह सका। इसी-लिए आज उसकी पवित्र अन्तरात्मा क्रन्दन कर उठी है।" अब मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि विवाह के लिए उसके मन में, लोभ और मोह उत्पन्न करके मैंने कोई बड़ा पाप कर डाला है। पश्चिमी सभ्यता के जाल में फँसकर हम आदर्शों से कितने दूर जा पहुँचे हैं ? विधवा-विवाह का ढिंढोरा पीटनेवाले, समाज के महन्त और मुखिया आकर आज मेरी शैल को देखें और उससे पूछें—"कहाँ है वह यौन-लिप्सा और बुभुक्षा, जिसकी तृप्ति के वे निरन्तर नारे लगाया करते हैं ?"

अब मुझे मालम हुआ कि शैल की अंतरात्मा में जिस देवी का निवास था, उसके साथ मैंने कितना अन्याय और अपकार किया है ! मैं तो वास्तव में उसे समझ ही नहीं सका

इतने में भइया को लेकर भाभी आ पहुँची। उधर शैल ने भी आँखें खोल दीं !—और वह फिर चीत्कार कर उठी—"द···द्दा···! दी···दी···! आ···ग···ए ? मुन्ना खेल रहा होगा ? उसे खेलने ही दो !"

मैंने लक्ष किया, शैल कोई वाक्य बहुत धीरे से कहती है और कोई बहुत जोर से ! भावनाएँ उसके भीतर से इतनी जल्दी-जल्दी निकलती

हैं कि वह उन्हें सँभाल नहीं पाती। कोई-कोई वाक्य तो वह बहुत रुक-रुक कर कहती थी। इतने में वह बोल उठी—"मुन्ना का जब विवाह हो, तब तुम यह मेरा आधा रुपया उसको दे देना और आधा उसकी बहू को। मगर लाओ अभी मैं हस्ताक्षर कर सकती हूँ! हे प्रभू! जब मैं हस्ताक्षर करने बैठूँ, तो मेरे हाथ पर तुम अपना वही हाथ रख देना, जो सदा तुमने मेरे सिर पर रक्खा है! अरे, चेक बुक लाओ दद्दा! नहीं दीदी, वह तो तुम्हारे पास है! लाओ, जल्दी करो, जल्दी करो!"

शैल का इतना कहना था कि मुझे जान पड़ा, भइया को भी सन्देह हो गया है। उन्होंने भाभी को संकेत किया और भाभी तुरन्त चेक-बुक ले आईं।

शैल ने दो चेकों पर हम सब लोगों के देखते-देखते हस्ताक्षर कर दिए। उसका हाथ जरा भी कम्पित नहीं हुआ। और इसके बाद वह बोली—"अब तुम मुझे आशीर्वाद दो दद्दा! कुछ ऐसा, कि जिनके साथ मैंने विश्वासघात किया है, वे अब तो मेरा विश्वास कर लें! अरे··· आज मैं यह क्या देख रही हूँ?···आपकी आँखों में और आँसू? आप तो देवता हैं! ठहरिए, मैं आपके आँसू पोछ देती हूँ! मैं भगवान से प्रार्थना करूँगी कि मैं तुरन्त मुन्ना की बहन बन कर दीदी की कोख में जन्म लूँ! और देखो दद्दा, मैं तुम्हारे छोटे भइया को अब तुमको और दीदी को सौंपे जा रही हूँ! मैं अब जा रही हूँ!" और इतना कहते-कहते शैल फिर अचेत हो गई! हाँ उसकी आँखों की कोरों से आँसू ढुलक जाते थे।

इतने में डाक्टर दास आ गए। आते-आते उन्होंने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें। अभी सब ठीक हाजायगा।" और उन्होंने तुरन्त शैल का टेम्परेचर लिया। स्टेथसकोप का भी प्रयोग किया। तुरन्त एक इन्जेक्शन दिया।

इसके बाद, क्षण भर के लिए, उसने फिर आँखें खोल दीं। कुछ ऐसी बात हुई कि उस समय मैं बिलकुल शैल के सामने पड़ गया और उसके मुँह से निकल गया—"तुम मेरी ओर क्या देखते हो? अब तुमको देने के लिए मेरे पास कुछ भी बाकी नहीं रहा! दीदी तुमको तो मालूम है? मैंने अपना कुछ भी तुमसे नहीं छिपाया है, दद्दा तुम इस बात को अधिक समझ सकोगे, कि जो कुछ मुझे देना था, वह सब भी मैं दे चुकी। अब मेरे पास कुछ भी 'देय' नहीं रह गया है। मैं ख़ाली हाथ आई थी और ख़ाली हाथ जा रही हूँ। लाओ दद्दा, अपने पैर यहाँ रख दो, मैं उनकी रज अन्तिम बार अपने मस्तक से लगा लूँ!···हाँ अब दीदी तुम भी मुझे अवसर दो, मेरे सिर पर हाथ रक्खो। एक बार और मुझे गले लगा लो!" और भाभी ने जब उसे कण्ठ से लगाया, तो वे अपने आँसू न सँभाल सकीं।

मैं देख रहा था कि मेरा सर्वस्व मेरे सामने से जा रहा है, मेरा प्राण मुझसे विलग हो रहा है। लेकिन मुझको जान कुछ ऐसा पड़ा, मानो मैं एक नाटक देख रहा हूँ, यद्यपि नाटक मेरी ही जीवन-कथा का है।

डाक्टर और वैद्यों का ताँता लगा रहा। वे आते और लम्बी साँस लेकर चले जाते। डाक्टर दास पहले लगभग एक घण्टे तक मौन रहे। जब बारह का समय हो गया, तब वे बोले—"मेरी जिन्दगी में इस टाइप का यह पहला केस है। आज तक इतना 'हाई टेम्परेचर' मैंने किसी मरीज़ में नहीं पाया। आपको मालूम नहीं, शैल का टेम्परेचर इस वक्त 'हण्ड्रेड एण्ड फ़ाइव' है। जिस वक्त मैं आया था, उस वक्त तो 'हण्ड्रेड एण्ड नाइन' था। बरफ़ का प्रयोग इसी तरह जारी रखिए।" थोड़ी देर बाद जब उन्होंने फिर टेम्परेचर लिया तो वह एक सौ दो पर उतर आया मगर शैल का बोलना तो अब सदा के लिए बन्द हो चुका था। यद्यपि कभी-कभी मेरे मन में एक आशा-दीपक अब भी

जग उठता था—'ऐसा कैसे हो सकता है कि शैल इतनी जल्दी इस जगत से विदा हो जाय ?'

रात बीतने को हुई। वह रात स्वयं भी जैसे मृत्यु की भयंकर छाया से कम्पित होकर सिसकियाँ भरती रही ! वह ऐसी भयानक रात थी कि उसका जब कभी स्मरण आता है, तो मेरे शरीर का रोम-रोम दहल उठता है और मेरा प्राण हिल जाता है। यद्यपि मैं यही सोचता रहता हूँ कि शैल का पूरा परिचय तो मुझे उसी दिन मिला था। उसका जीवन भी जो बात मुझसे नहीं कह सका था, वह मृत्यु की घड़ियों ने, निमेषमात्र में, कह डाली थी। आज भी मैं यही अनुभव करता हूँ कि शैल मरी नहीं है, इसी संसार में कहीं छिपी बैठी है। केवल मेरे पास वे आँखें नहीं हैं, जिनके द्वारा मैं उसे देख सकूँ ! आज भी रात्रिकी नीरवता में जब दूर, बहुत दूर कहीं से करुण संगीत की कोई स्वर-लहरी आकर मेरे कानों से टकराती है, तो जान पड़ता है—यह मेरी शैल का ही स्वर है !···वह मरी नहीं···किसी नीरव, निर्जन और अदृश्य प्रान्त में अब भी गा रही है···रात दिन वह गाती ही रहती है···!

उसके बाद फिर अपने आप, धीरे-धीरे, एक, दो, तीन, दस दिन बाद सब कुछ वैधानिकरूप से हुआ और होता रहा। संसार का क्रम जो ठहरा। दुख के दिन भी आदमी हँस-हँस कर काट देता है।

अन्त में तेरहवें दिन मैंने इस घटना का एक 'क्ल्यू' पा लिया। इसी कमरे में जहाँ शैल उस दिन प्रलाप कर रही थी, उसमें एक उसका एकान्त—निजी कक्ष था, जिसमें वह वस्त्र बदलती और शृंगार करती थी। उसी में मिस्टर विश्वास का एक बड़ा तैलचित्र लगा हुआ था। पहले तो उस पर झीने कागज का एक परदा पड़ा रहता था, पर आज झीना कागज नीचे फटा पड़ा था। उसके अन्दर प्रवेश करने पर पहले तो मैं उस चित्र को एक टक देखता रह गया, पर फिर मेरे मन में

आया, इसी चित्र के बहाने शैल की पवित्र अन्तरात्मा का प्राण डोल गया था। इसी के आघात को वह सहन न कर पाई थी। सच है, मनुष्य स्वयं नहीं जानता कि किस समय उसी के जीवन का छिपा हुआ कोना उसके समक्ष इतना मूर्तिमान और सप्राण हो उठेगा कि वह अपनी ही भावनाओं के दारुण आघात से मर्माहत हो, मृत्यु के गहन गह्वर में डूब जायगा, समा जायगा।

मैंने जब यह डायरी प्रारम्भ की थी, तब मेरे जीवन में एक तूफ़ान आ गया था। आज भी तूफ़ान आ गया है। दिशाएँ बवण्डर से धूमिल होकर भारी एवं बोझिल हो उठी हैं। विषाद की एक कालिमा-सी गगन के मुख पर, लिप-पुत कर, धीरे-धीरे, गहरी होती जा रही है?

आया, इसी चित्र के बहाने शैल की पवित्र अन्तरात्मा का प्राण डोल गया था। इसी के आघात को वह सहन न कर पाई थी। सच है, मनुष्य स्वयं नहीं जानता कि किस समय उसी के जीवन का छिपा हुआ कोना उसके समक्ष इतना मूर्तिमान और सप्राण हो उठेगा कि वह अपनी ही भावनाओं के दारुण आघात से मर्माहत हो, मृत्यु के गहन गह्वर में डूब जायगा, समा जायगा।

मैंने जब यह डायरी प्रारम्भ की थी, तब मेरे जीवन में एक तूफ़ान आ गया था। आज भी तूफ़ान आ गया है। दिशाएँ बवण्डर से धूमिल होकर भारी एवं बोझिल हो उठी हैं। विषाद की एक कालिमा-सी गगन के मुख पर, लिप-पुत कर, धीरे-धीरे, गहरी होती जा रही है?

